लेखक

स्वतन्त्रता के बाद जिन उदीयमान लेखकों ने हिन्दी जगत् में पदार्पन किया है, जो नये भाव, नई शैली एवं नवीन कथानकों द्वारा मानव वृत्तियों की अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखते है, उनमें इस पुस्तक के लेखक भी एक है। उपन्यासकार के रूप में कुछ समय पहले ही आप हमारे सामन आये है। आप की प्रथम कृति 'पत्थर और पानी' का हिन्दी जगत् में सर्वत्र स्वागत हुआ है। आपकी लेखनी अपनी गति से आगे बढ़ती जा रही है। अब तक आपकी जो चन्द रचनाएँ सामने आई है, निःसन्देह हिन्दी कथा-साहित्य को आगे ले जाने वाली है।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की चौथी कृति है। यह एक बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास है। 'मल्ल-बन्धुल के पराक्रम तथा कर्त्तव्योन्मुख अमरगाथा को लेकर, इसकी सृष्टि हुई है। उपन्यास की नायिका 'मल्लिका' स्त्रियोचित सौंद', सौजन्य, संवेदना, कर्तव्यपरायणता की प्रतिमूर्ति है। धर्मपरायणता और सहिष्णुता में आप का चरित्र अद्वितीय है। महात्मा गौतम बुद्ध की प्रतिछाया में 'मल्लिका' का अपूर्व चरित्र हमारे समक्ष आता है।

लेखक अपनी साधना के बल पर एक न एक दिन अवश्य प्रमुख स्थान पायेंगे और उनकी कृतियाँ हिन्दी कथा साहित्य में अवश्य गौरान्वित होंगी।

मल्ल-मल्लिका

(सांस्कृतिक-ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक
यादवचन्द्र जैन एम. ए.

भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा, दिल्ली ।

दो शब्द

प्रेम की देवी मल्लिका और उसके मन का मीत मल्ल-बन्धुल जिनके नैसर्गिक स्नेह की वह अजस्र धारा दाम्पत्य जीवन में समान रूपेण प्रवाहित होती रही उसी भाँति जिस भाँति प्रणय की ज्योत्स्ना में—दो मन इठला कर आतुरता में उमड़ पड़ते हैं—समर्पण की विजय-श्री का आलिंगन करने।

यों रूप और यौवन की ज्योतित अनास्था में वासना का कोड़ा लिए कोशल के राजकुमार विड्डभ की भाँति प्रणय-अनुराग का मृग-चर्म ओढे न जाने कितने जीव मिलते हैं सर्वत्र—व्यक्ति और समाज के अभिशाप-रूप—नैतिकता को क्षण-क्षण मसलते हुए।

हाँ एकांगी-प्रेम की एक विशेष स्थिति है। प्रकट में वह अमान्य भले ही हो, परन्तु वह है अकल्पित। अधिकांश उस गरलता को चुप भी जाते हैं, किन्तु नैराश्य जब ध्वस्त करने पर आ जाय, सब कुछ, आत्मीयता भी—राजकुमार विड्डभ की भाँति—तो ईर्षा, द्वेष, संघर्ष, अनाचार, हिंसा, अनीति क्यों न पनपे ?

यही क्यों, नारी का वह सुलभ रूप—मद, दम्भ, अहंकार, वासना, अतृप्ति, ईर्षा की अचेतनता क्यों न विग्रह और विनाश करके ही शान्त हो ?

और व्यक्ति की अधिकार-लिप्सा; काम-तृषा, दुर्बुद्धि की जड़ता, क्यों न रक्तपात करे ? क्यों न राज्यों को अशान्त करे; जन-जन को प्रताड़ित करे ?

और इस सबसे ग्रस्त-व्यस्त-त्रस्त—उस युग विशेष के महाजन पदों मगध, कोशल, वैशाली, वत्स आदि के शान्ति-प्रभु तथागत भगवान् बुद्ध

का वैराग्य-सम्मोहन एवं उनकी अनन्य अनुशीला मल्लिका तथा वीर-प्रवर, मल्ल, बन्धुल और तत्काल के समाज की एक झलक "मल्ल-मल्लिका" में प्रस्फुरित कर मैंने तद्गत सभ्यता; संस्कृति, रीति-नीति, आचार-विचार और अन्ततः आत्म चेतना में स्वर्गिक-प्रेम की मान्यता, के दिग्दर्शन की चेष्टा की है। उस प्रेम की आस्था में कहीं थोथापन नहीं है, न कहीं निम्नता अथवा कलुष। वह आत्म-निष्ठा है—पारलौकिक।

"मल्ल-मल्लिका" एक ऐतिहासिक उपन्यास है। बौद्धयुगीन इतिहास के अध्ययन-अनुशीलन में मुझे मल्लिका का वृत्त अत्यधिक प्रिय लगा। विशेषतः उसके जीवन का वह अद्वितीय चारित्रिक सौरभ जब वह तथागत के आतिथ्य काल में पति का मृत्यु-समाचार सुन कर भी सुमेरु-सी अचल बनी रहती है। कर्तव्योन्मुख साथ ही मल्ल-बन्धुल के पराक्रम की वे अमर-गाथायें जो आज साहित्य की प्रेरणा-मात्र हैं।

अस्तु साहित्यिक क्षेत्र में मेरी यह कृति आदर प्राप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कानपुर }
१९५६ }

—यादवचन्द्र जैन

१

वय:सन्धि की सीमायें पार हो आई थीं। यौवन की अरुणाई—तरुणाई के भोले-भाले, भटके से नयन दूर कुछ झाँकते और सकुचाकर लौट आते। यौवन का अटूट भार—अपार मद अंग-अंग में भरकर सलज्ज मौन को थपथपा रहा था। उन काजल-सी काली-काली पुतलियों के चतुर्दिक् घिरे श्वेत कुंडलों में खिंच आये रतनारे डोरे नस-नस में स्फुरण प्रकट कर स्वयं में लीन हो रहे थे। वह कर्पूर-गात—आह्लाद भरा—अनुराग भरा, प्रत्येक को मोह लेता था।

किन्तु उसमें शील-सौजन्य की माप यौवन-मद के भार से भी गुरुतर थी! विवेक की सतर्क प्रभावना में उलझा—वह मांसल रूप—देखने में उच्छृंखल किन्तु पूर्ण संयत था। वस्तुतः अबोधता की वह परिधि अभी ज्यों-की-त्यों—घिरी, खिंची···मन-मानस को आश्वस्त किये हुए थी।

चम्पई कलियों-सी मुस्कराहट में, हल्के गुलाब से कमल-नयनों सहित केशर की सुरभि-सा महकता गात जब मान-सम्मान भरकर डोलता तो प्रतीत होता एक रूप की सारी निधि एकत्र हो आई है।

और जब उन उभरी सी, तन्द्रिल पलकों में पराग-रस भर आता तो व्यक्त होता मल्लिका में किन्नरि-सौन्दर्य साकार हो आया है। चतुर शिल्पी द्वारा विरचित वह सौम्य-शान्त प्रतिमा देखकर प्रतीत होता देखते ही रहें। किन्तु मल्लिका का विनत भाव देखकर संयम असंयम को चोट दिये रहता।

कोशल में मल्लिका के अलौकिक रूप की चर्चा जन-जन में थी। किन्तु मल्लिका विवश थी! मन्द-पवन के डोलन सहित जब उसके स्वरूप की चर्चा यों प्रसारित होती जाती तो वह क्या करे? किन्तु उस प्रसार में भी व्यवहार की सीमाओं में उसने उस यौवन को कसकर जकड़ रक्खा था!

वस्तुतः मल्लिका में न यौवन का अतिरेक था न स्वरूप का मद। फलतः वह नीरस थी वैसा कदापि न था। वह बड़ी सरस और बड़ी सरल थी किन्तु उसी प्रकार अपने कौमार्य के प्रति वह पूर्णतः सजग थी!

श्रावस्ती के अभिजातवंशीय किशोर—अपने प्रणयनिवेदन में कभी नहीं हिचके किन्तु मल्लिका का निष्कंटक रूप उन शूलों के मध्य भी पुष्पित-विकसित हो रहा था। वह स्व में लीन रहती। उसकी निराकुलता उस सबसे पूर्ण उदासीन थी।

× × ×

मल्लिका के प्रसाधन एवं वेश-विन्यास में सर्वदा आकर्षक लालित्य रहता! उसके चतुराई से गूँथे केशों में दो मुक्तालड़ियाँ सदैव झलका करतीं और पीछे पुष्प-किरीट—अर्ध चन्द्राकार—शोभा व्यक्त करता हुआ सुरभि उँडेलता। कर्ण-फूलों से चमकती प्रदीप्ति में—चम्पा के फूलों-सा पीत-श्वेत गात्र द्विगुणित सौन्दर्य बिखेरता। उसके स्वस्थ कंधों पर लहराता हुआ झीना उत्तरीय और उसके नीचे—पीछे मेरुदण्ड पर कसा नीलाभ कंचुक-वस्त्र, सम्मुख वक्ष की ओर फैलकर—नवयौवन-भारोन्नत-सुचिक्करण वर्तुलों को और उभारता। पुष्ट वक्ष के नीचे मांसल नितम्बों के मध्य में डमरूमध्य के समान क्षीण कटि पर स्वर्ण की एक मेखला, रत्नजटित नीवीबंध से कटि, नितम्ब के मध्य और अधोभाग की परिक्रमा कर उनको वर्तुलाकार और सुस्पष्ट करती रहती। उसका शाटक मयूरपुच्छ के रूप में फैलकर आलक्ता-रंजित पैरों की मन्दगति में उत्साह भरता था।

बहुधा मल्लिका के मुख पर भी झीने रेशम का दुकूल पड़ा रहता था। दुकूल हटाने पर जो रूप-चन्द्रिका प्रकट होती तो स्वभावतः प्राकृतिक आकांक्षा को लालायित करती किन्तु मल्लिका की शालीन भावाभिव्यक्ति से समक्ष की वह लालसा मर्यादा की सीमाओं में ही अवरोध पा जाती। अपितु अनेक अवसरों पर रूप के आखेटक—श्रावस्ती के अनेक रसज्ञ सामन्त कुमार, श्रेष्ठि कुमार, एवं अन्य—आखेट को देखकर

असंयम की प्रत्यंचा चढ़ा दौड़ते प्रतीत होते, किन्तु चौकड़ी भरते मल्लिका के उन सुविशाल नेत्रों की तीक्ष्ण परिधि के आगे बढ़ आने का साहस किसी को न हो पाता।

इसी सब में मल्लिका निर्बन्ध-स्वच्छन्द हिरणी-सी श्रावस्ती के आम्र-काननों, पुष्प-वाटिकाओं, राजप्रासाद में अपनी माता सहित घूमती-फिरती। उसमें उत्साह और उल्लास आकंठ उमगा रहता था।

× × ×

उस काल कौशाम्बी नरेश प्रसेनजित की राजधानी श्रावस्ती सम्पन्नता, विलास, ऐश्वर्य, धन, वैभव से परिपूर्ण थी! श्रावस्ती में समस्त जम्बू द्वीप की सम्पदाओं का अगम समागम था। श्रावस्ती में अनाथपिण्डक सुदत्त एवं मृगार जैसे धनकुबेर अपनी अतुल सम्पदा सहित दिक्-दिगन्त में प्रसिद्ध थे।

वस्तुतः श्रावस्ती उन दिनों जम्बूद्वीप का सर्वाधिक वैभवसम्पन्न व प्रसिद्ध नगर था। कौशल के राज्यान्तर्गत वाराणसी व साकेत—ये दो बड़े-बड़े नगर भी अपनी समृद्धि की गरिमा में परम प्रसिद्ध थे। श्रावस्ती के पूर्व साकेत ही कोशल की राजधानी रही थी किन्तु इधर श्रावस्ती को ही वह सम्मान प्राप्त था।

यों साकेत का प्रभुत्व भी कम न था क्योंकि वह उत्तरा पथ के प्रशस्त महाजनपथ पर थी एवं चारों दिशाओं के सार्थवाह साकेत होकर ही आने-जाने व व्यापार-वाणिज्य करते थे। उनके लिए साकेत होकर जल-थल दोनों ही मार्ग उपयुक्त थे।

ये सार्थ जम्बूदीप तक ही सीमित न थे। ताम्रलिप्त के मार्ग से बंगाल की खाड़ी और मरुकच्छ तथा सूर्पारक के मार्ग से अरबसागर के गहन जल को पारकर सुदूर द्वीपों में जा-जा कर धन-सम्पदा का विस्तार करते थे। महिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा से साकेत होकर श्रावस्ती पहुँचा जा सकता था। इस प्रकार श्रावस्ती का सम्बन्ध भारत के सभी प्रमुख नगरों से स्थापित था। पहाड़ की तराई के किनारे से राजगृह के

लिए—श्रावस्ती से मार्ग जाता था। इस मार्ग में कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, वैशाली, पाटलिपुत्र व नालन्द पड़ते थे। सार्थवाह विदेह होकर गान्धार तक, मगध होकर सौवीर तक, मरुकच्छ से बर्मा तक और दक्षिण होकर बेबीलोन, फारस तक एवं चीन के लिए चम्पा होकर आते-जाते थे। इस शृंखला में भारत का सम्बन्ध विश्व के कोने-कोने से था।

गंगा में सहजाति तक तथा यमुना में कौशाम्बी तक बड़ी-बड़ी नौकायें चला करती थीं जिनके द्वारा यात्री एवं व्यापार-वाणिज्य-सामग्री का आवागमन होता था।

श्रावस्ती में अनेक चत्वर थे जिनमें रेशम, मलमल, कारचोबी, मखमल कम्मल के व्यापारी थे। जौहरी व सर्राफ रात-दिन जवाहरात, स्वर्ण व स्वर्णाभरणों का व्यवसाय कर धन-सम्पत्ति का प्रसार अथवा संकोच करते थे। हाथीदाँत की बनी अच्छी-अच्छी कलात्मक वस्तुएं विक्रयार्थ रहती थीं।

उच्चस्थ सामन्तों, सेट्ठियों, श्रमणों एवं श्रोत्रीय ब्राह्मणों से श्रावस्ती भरी पड़ी थी। कुलों और जातियों में ब्राह्मणों एवं क्षत्रिय सामन्तों का उच्च स्थान था। इनके बाद सेट्ठिजन आते थे जो व्यापार-वाणिज्य के प्रसार सहित अपार धन-सम्पत्ति का प्रसार करते थे।

इसके अतिरिक्त दास, रसोइये, उपमर्दक, हलवाई, नाई, माली, धोबी, जुलाहे, कुम्हार, मुत्सद्दी एवं कर्मकर भी थे। चमड़े का व्यापार भी होता था। कर्मकर धातु, पत्थर और लकड़ी आदि का अच्छा काम करते थे। हाथीदाँत के बड़े सुन्दर कारीगर भी थे। रंगाई वाले, चित्रकार एवं मूर्तिकार भी अधिक संख्या में थे।

पूँजीवाद का युग था। सामन्त, ब्राह्मण एवं सेट्ठिजन दस प्रतिशत थे जो शेष नब्बे प्रतिशत की कमाई का उपभोग करते थे। इनमें बीस प्रतिशत दास-दासियाँ ही थीं जिनका समाज में कोई अस्तित्व ही न था।

जनसाधारण—राजाओं एवं सामन्तों के निरर्थक युद्धों में कटता-मरता रहता था। युवकों की सैनिक भर्ती निरन्तर होती रहती थी।

सुन्दरी-युवती—कन्यायें इन सामन्तों एवं उनके ऊपर महाराजाओंके अन्तःपुरों में दासियों, उप-पत्नियों के रूप में बलात् रक्खी जाती थीं।

कोशलेश प्रसेनजित की ऐसी महानगरी श्रावस्ती में समृद्धि, वैभवों विलास, धन, सम्पदा का जहाँ अटूट भाण्डार था वहीं तरुणियों की अपार रूप-राशि विद्यमान थी। आर्य व यवन रमणियों में एक से एक रूपवती, एक से एक कोमलांगिनियाँ—होड़ में एक दूसरे पर आरोपित रहती थीं। किसी सामाजिक उत्सव, सम्मेलन अथवा समारोह में नारियों का रूप-वैभव, अलंकरण, प्रसाधन, वेश-विन्यास, वेष-भूषा देखकर प्रतीत होता कि इन्द्रपुरी की किन्नरियों का रूप क्या श्रावस्ती से भी अधिक होगा?

इन्हीं में कौमार्या, यौवन-रूप भारोन्नत मल्लिका—नवविकसित कलिका की सी मदिर गन्ध लिये सर्वत्र चर्चा का कारण थी। तरुण-रूपसियाँ अपनी ईर्षालु प्रकृति सहित दृष्टि से जब मल्लिका को आँकतीं तो अपने में कुछ हलकापन पातीं।

मल्लिका की सौन्दर्य-चर्चा के साथ-साथ उसके संगीत, उसके नृत्य एवं उसकी चित्रकला भी सर्वत्र विख्यात थी।

इस काल में सामाजिक रीति-व्यवस्थानुसार स्त्रियों का यथेष्ट आदर था। वे पुरुषों के सहगामी हो त्यौहारों, उत्सवों, सार्वजनिक समारोहों आदि में स्वच्छन्दतापूर्वक भाग लेती थीं। किन्तु मल्लिका की कीर्ति इस सबसे पृथक् रहकर भी फैली हुई थी।

× × ×

यह वह आयु थी—जब सरल-अबोध यौवन वासना के शून्य से भी अपरिचित था। जब भरा-पुरा-भोला किन्तु मदभरा यौवन—कोमल किसलय-सा, नन्हे पौदे पर उगा भर था। उस नरमाई में उसने सांसारिक अन्धड़, ताप, शीत, पतझड़ के अनुभव को कौन कहे, उनका आभास भी न माना था! वसन्त में, कोमल कोपलें जैसे प्रस्फुटित भर हो आई थीं! पराग था किन्तु उसकी अनभिज्ञ अठखेलियाँ—प्रतीक्षा में, अलस-सरलता लिये, मृग-शावक-सी काँपती आँखों में झाँक भर रही थीं! और वह

कौमार्य अपनी तेजस्विता में गर्वित हो निर्द्वन्द्व झूमता था। भय, त्रास, आवेश, आवेग ज्यों अनचाही भावी में मुँह बन्द किये सो रहे थे।

उस यौवन की शालीनता में, स्वरूप की विनम्रता में चन्द्रिका सी खिली-खिली मल्लिका का आवागमन राजप्रासाद में भी था। वहाँ राज-महिषियाँ उसे आदर-सत्कार के भाव सहित स्नेह करतीं, दुलरातीं। कभी उसके रूप पर व्यंग करतीं; कभी उसके यौवन को चिटकाने का प्रयास करतीं। इसमें वे रस लेतीं, आनन्द लेतीं किन्तु मल्लिका मुस्कराकर रह जाती। वह उनसे गम्भीर वार्ता करती। दर्शन, आध्यात्म, इतिहास तत्त्वों पर विवेचन करती। सभी में मल्लिका की विद्वत्ता पर आस्था सहित आदर विद्यमान था।

इस सब व्यस्तता में भी मल्लिका की एकान्तप्रियता का अत्यधिक प्रभाव उस पर था। वह अपने अलिन्द में बैठकर, मौनस्थ हो, एकाकिनी हो, विलम्ब तक शून्य में केन्द्रित रहती। वह अपने बाल-अतीत को तो क्या; गहन वर्तमान एवं महत्त्वपूर्ण भविष्य को अपने कल्पना-लोक में उतारा करती। संसार की पाठ्य-पुस्तक को पग-पग पर पढ़ते चलने का जैसे उसने स्वभाव बनाया था और तब दिवस के अन्तराय में वह उस सब पर मनन व विवेचन कर मस्तिष्क के भार को हलका कर लेती।

इस प्रकार मल्लिका के वे दिवस जीवन-पथ पर अग्रसर प्राणी को सतर्क भाव से निहार रहे थे।

तक्षशिला विश्वविद्यालय उस समय सारे भारत का प्रमुख शिक्षा एवं संस्कृति का केन्द्र था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में विदेशी विद्यार्थी भी अध्ययनार्थ अच्छी संख्या में रहते थे ! ये विदेशी विद्यार्थी भारतीयों के साथ—उनकी संस्कृति, नीति, दर्शन, राजनीति, आध्यात्म, धार्मिक प्रवृत्तियाँ, विज्ञान, चित्र-कला, शिल्प-कला, वास्तुकला—का यथेष्ट अध्ययन करते थे।

उपरोक्त विषयों के साथ-साथ तक्षशिला कला का भी सुप्रसिद्ध केन्द्र था। संगीत एवं नृत्य की उत्कृष्ट शिक्षा के द्वारा विद्यार्थी एवं विद्यार्थिनियाँ स्वेच्छानुसार तत्सम्बन्धी ज्ञान-संवर्धन एवं क्रियात्मक अध्ययन प्राप्त करती थीं। किन्तु तक्षशिला विश्वविद्यालय के अन्तर्गत एक महिला आश्रम था—छात्रायें वहीं प्रवास कर पठन-पाठन करती थीं। उनका समस्त प्रबन्ध पृथक् रूप में ही था।

इसके अतिरिक्त राजनीति, न्याय, युद्ध-विद्या, अस्त्र-शस्त्र विद्या, धर्मशास्त्र, पुराण एवं वेदवेदांग पठनार्थ देश-देशान्तर से आये सैकड़ों विद्यार्थियों में अनेक राज्यों के राजकुमार भी थे जो उस महान् गुरुकुल में समान भाव से रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे।

एक पृथक् विभाग आयुर्वेद का था जहाँ अष्टांग-आयुर्वेद की पूर्ण शिक्षा, शल्य-तन्त्र, जीवाणु विज्ञान, युद्ध से आहत सैनिकों की शीघ्र-परिचर्या के क्रियात्मक अध्ययन का पूर्ण प्रबन्ध था। उस काल में आयुर्वेद-विज्ञान अपने चरम उत्कर्ष पर था।

सैनिक शिक्षालय में धनुष-बाण, खड्ग, भाले, युद्ध-कृत-रचना, अश्वा-रोहण, मल्ल-युद्ध, रथों की दौड़ एवं नाना प्रकार के युद्ध-संचालन की शिक्षा का सर्वोच्च प्रबन्ध था। विशेषत: इस शिक्षालय में उस समय के

भावी सम्राटों, सेनापतियों, दुर्जेय वीरों, तेजस्वी सैनिकों आदि का अच्छा समूह एकत्र रहता था।

प्रातःकाल से ही स्नातक कार्यरत हो जाते। ब्राह्मण-वर्ग पूजा-पाठ से निवृत्त हो, मस्तक पर खौर लगाये, चन्दन-अक्षत के रोचने किये, मुँह से वेद-मन्त्र उच्चारित करते इधर-उधर व्यस्त घूमते। इनमें द्विज की परिभाषा यज्ञोपवीत दूर से झलकता होता। वयस्क ब्राह्मण स्वर्ण के तार से कढ़े रेशमी उष्णीश सरों में बाँधे रहते। उनके कण्ठ व भुजदण्डों पर मालायें व रुद्राक्ष लटकते रहते। उनके श्वेत गात पर उच्च कंधों से लटकते उत्तरीयों के नीचे अन्तरवासक चिपके रहते। काष्ठ-पादत्राणों से खट्पट् करते वे यज्ञशाला से, आयुर्वेद विद्यालय—कोई न्याय-शास्त्र शिक्षालय, कोई वेद-वेदांग पाठशाला—कोई धर्म-नीति, तर्क-नीति, शास्त्रार्थ-चातुर्य के हेतु तत्सम्बन्धी भवनों की ओर उन्मुख दीखते रहते।

क्षत्रिय-कुल-किशोर अपनी भव्य वेशभूषा व ऐंठे हुए श्मश्रु फरफराते विशेषतः सैनिक-शिक्षालय की ओर से आते-जाते दिखाई पड़ते।

इसी प्रकार गान्धार, यवन, फारस, चीन, जापान, कम्बोडिया आदि देशों के विद्यार्थी—अपनी देशज आकृतियों एवं वेशभूषा में यत्र-तत्र विचरण करते। भारत के सुदूर प्रान्तों में—काश्मीर, लंका, बर्मा, आदि के विद्यार्थी भी अध्ययन में रत होते।

वह अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अपने में विभिन्नता को आत्मसात् किये रहकर एक आर्यत्व एवं आचार्यत्व के अधीन शिक्षा का सर्वव्यापी केन्द्र बना हुआ था।

स्नातकों के रहन-सहन, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा का सारा प्रबन्ध विश्वविद्यालय कोष से होता था। विश्वविद्यालय जहाँ एक ओर अपार शिक्षा का केन्द्र था वहाँ अतुल धन-राशि का भी स्वामी था। समस्त भारतीय नरेश एवं धन-कुबेर अपने देश की शिक्षा-संस्था के भांडार को दान-दाक्षिण्य से परिपूर्ण किये रहते थे। विश्वविद्यालय के हेतु अमाप भूमि दान में मिली थी जिसकी आय भी विश्वविद्यालय के कोष में

आती थी।

× × ×

यहीं विश्वविद्यालय से दूरस्थ घने जंगलों में एक दिवस एक तरुण अपने अश्व को दौड़ाता चला आ रहा था। वन की अधिक गहराई में पैठकर एक स्थान पर उसने अपना अश्व रोक दिया। अश्व से उतरते-उतरते उसे लगा कि वह थककर चूर हो गया है किन्तु अश्व की तीव्र श्वासोच्छ्वास गति देखकर एक ओर जहाँ उसमें दया का संचार हुआ वहीं दूसरी ओर वह उत्साह से भर गया।

सामने ही एक बारहसिंगा मरणासन्न पड़ा हुआ था। निकट जाकर तरुण ने ज्योंही उसके पैर में बिंधे बाण को छुआ कि एक कड़कता स्वर उस निस्तब्धता में गूँज गया—"राजकुमार सावधान! यह आखेट मेरा है।"

निमिष-मात्र में राजकुमार का हाथ बाण से दूर हट गया और उसने घूमकर देखा—निकट ही एक अश्वारोही अपने अश्व को रोक कर उस पर से उतर पड़ने को उद्यत है।

राजकुमार के व्यक्तित्व में राज-परिवार की कान्ति, कोमलता एवं उत्तेजना प्रकट हो रही थी किन्तु दूसरे तरुण के बलिष्ठ व्यक्तित्व से बल ही बल फूटा पड़ रहा था।

तुरन्त उससे भी तीव्र स्वर में राजकुमार प्रसेनजित ने ललकारा—"बन्धुल! यह आखेट मेरा है।"

"इसका निर्णय····?"

"हमारी खड्ग देगी।" कहकर तुरन्त प्रसेनजित ने अपनी तलवार खींच ली।

हास की सरल मुद्रा में बन्धुल ने तुरन्त अपने कर्कश भुजदण्डों के प्रवाह में तलवार का वार रोका और तब दोनों युवकों की खड्ग-झंकार वन में गूँजने लगी। दस-बीस हाथ इधर-उधर हुए ही थे कि हास्य की तीव्रता के साथ बन्धुल ने प्रसेनजित की तलवार अदृश्य दूरी पर फेंक दी।

प्रसेनजित हतप्रभ बन्धुल को देखता रह गया।

"और अब लो प्रसेनजित ! देखो यह मेरा बाण है अथवा तुम्हारा," कहते हुए बन्धुल ने पशु के शरीर से बाण खींचकर प्रसेनजित की ओर कर दिया।

"मैं लज्जित हूँ, मित्र," कहते हुए जैसे सराहना की प्रदीप्ति से प्रसेनजित के नेत्र चमक आये।

"बन्धुल उठाओ इसे," पुनः कहते हुए राजकुमार ने अपना अश्व व्यवस्थित किया और उस पर चढ़कर बन्धुल की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया।

बन्धुल ने पशु को अश्व पर लादा और स्वयं भी उस पर सवार होकर प्रसेनजित के निकट बढ़ आया।

दोनों ही सहपाठी—सहयोग में साथ-साथ चल पड़े। अल्प मौन के अनन्तर प्रसेनजित ने प्रारम्भ किया—"तुम्हारे कौशल की मैं अन्तर से प्रशंसा करता हूँ।"

"मेरा सौभाग्य है, राजकुमार !"

"आज से हम सहपाठी ही नहीं अभिन्न मित्र भी हुए मल्ल-बन्धुल।"

"वह भी मेरा सौभाग्य होगा—राजकुमार !"

× × ×

तक्षशिला में वार्षिकोत्सव था। सभी स्नातकों ने मिलकर विश्व-विद्यालय के भवनों को बन्दनवारों, आम्र-मंजरियों, पुष्प-गुच्छों, कादली-स्तम्भों, तोरणों से सजाया था।

अपने-अपने विभागीय-विद्यालयों में पृथक्-पृथक् विद्यार्थियों ने पृथक्-पृथक् समारोहों का आयोजन किया था। लगभग एक सप्ताह तक वार्षिकोत्सव की व्यस्तता बनी रही।

कवि-समारोह, संगीत-गोष्ठियाँ, राजनीतिक गोष्ठियाँ, व्याख्यान-प्रतियोगितायें, व्याख्यानमालायें आदि-आदि कार्यक्रम सम्पन्न होते रहे।

न्याय, दर्शन, आध्यात्म, नीति, धर्म आदि पर तर्कपूर्ण विवेचन, वाद-विवाद, विविध मत-मतान्तरों के अनुसार शास्त्रार्थ होते रहे।

विनोद सम्मेलन एवं परिहास सम्मेलन आदि में भी विद्यार्थियों ने सोल्लास भाग लिया।

सैनिक समारोह का विशेष आयोजन किया गया। विश्वविद्यालय के लगभग डेढ़ सहस्र विद्यार्थियों ने—एकत्र होकर, सैनिक विद्यालय के छात्रों के धनुष-बाणों के कौतुक, दौड़-भाग के खेल; व्यूह-रचना की विशिष्ट क्रिया; मल्ल-युद्ध; हाथी, अश्वों का युद्ध; पदाति सेना के युद्ध, खड्ग प्रतियोगिता; भालों के युद्ध का प्रदर्शन; शारीरिक व्यायाम; विभिन्न प्रकार से युद्ध-संचालन के संक्षिप्त स्वरूप को—देखा

इस उत्तेजक एवं रोमांचकारी प्रदर्शन का प्रभाव यथेष्ट था। इन सभी प्रदर्शनों में मल्ल-बन्धुल का सर्वोच्च स्थान था। युद्ध-संचालन; युद्ध-व्यूह रचना; मल्य-युद्ध; खड्ग व भालों की लड़ाई आदि सभी में बन्धुल सर्वश्रेष्ठ सैनिक घोषित किया गया था।

अन्तिम दिवस दीक्षान्त समारोह का था। इसमें पारितोषिक वितरण, उपाधि वितरण, दीक्षान्त भाषण आदि के कार्यक्रम सम्मिलित थे।

दीक्षान्त समारोह के लिए एक बृहत् पंडाल का निर्माण किया गया था। सैंकड़ों मजदूरों ने परिश्रम करके विश्वविद्यालय के मुख्य-कला-भवन के सम्मुख की विस्तृत भूमि में उसे बनाया था।

इस विशेष अवसर पर महिलाश्रम की शिक्षिकाओं एवं छात्राओं ने भी भाग लिया।

विश्वविद्यालय के प्रधानाचार्य वयोवृद्ध मुनि वाहुलाश्व ने सभापति का आसन ग्रहण किया। पंडाल अध्यापकों, अध्यापिकाओं, छात्राओं एवं डेढ़ सहस्र छात्रों के अतिरिक्त दर्शकों से परिपूर्ण था।

कुलपति मुनि बाहुलाश्व अति गम्भीर मुद्रा में बैठे अपनी श्वेत-केश-राशि से दर्शकों का आकर्षण एवं उनकी विनय हठात् प्राप्त कर रहे थे।

एवं यह समारोह निश्चित ही एक अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव प्रतीत हो

रहा था । देश-विदेश के विभिन्न विद्यार्थी अपनी आकर्षक आकृतियों एवं वेशों में मिल-जुलकर बैठे थे । इनमें अनेक विदेशी छात्र अत्यन्त गम्भीर मुद्राओं में बैठे दीक्षान्त समारोह का कार्यक्रम देख रहे थे । भारत में आकर इस विशाल विश्वविद्यालय में उन्होंने भारतीय संस्कृति, साहित्य, सभ्यता, नीति, रीति, दर्शन, आध्यात्म, धर्म, विज्ञान, आयुर्विज्ञान आदि आदि की शिक्षा ग्रहण की थी और अब एक दीर्घकाल के परिश्रम के अनन्तर अपनी-अपनी जन्मभूमि को जाने के लिए उनके मन लालायित थे । तक्षशिला विश्वविद्यालय में रहकर जो मान, सम्मान, आतिथ्य, बन्धुत्व प्राप्त किया था उससे वे आश्वस्त थे । अब मैत्री-सुख को छोड़कर जाते हुए उनके मन भरे-भरे से प्रतीत हो रहे थे ।

अन्ततः उपाधि-वितरण कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । विभिन्न विद्यालयों के अधिष्ठाताओं ने क्रमानुसार अपने-अपने शिक्षालयों के विशेषता प्राप्त विद्यार्थियों को उपाधि प्राप्ति के लिए एक-एक करके आमन्त्रित किया । दीर्घकाल तक उपाधि-वितरण-क्रिया सम्पन्न होती रही ।

सैनिक-विद्यालय के सर्वोच्च पुरस्कार मल्लबन्धुल को प्राप्त हुए । अनेक बार बन्धुल का नाम पुकारा जाता और तब वह जाकर अपना विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त कर प्रफुल्लित होता ।

× × ×

इस प्रकार तक्षशिला विद्यालय का वर्ष समाप्त हुआ । अपनी-अपनी अवधि समाप्त कर सभी स्वगृहों की ओर जाने लगे ।

प्रसेनजित व बन्धुल भी अपनी अवधि समाप्त कर जा रहे थे ।

आज ये दोनों अभिन्न मित्र थे ।

"कोशल के राज्य-सिंहासन की प्राप्ति पर मैं तुम्हें बुलाऊँगा, बन्धुल ! तुम्हें आना होगा, मित्र ! और तब तुम्हें सेनापति का पद स्वीकार करना होगा, मल्ल !" कहते-कहते प्रसेनजित का गला भर आया ।

"मैं निश्चित आऊँगा—प्रसेनजित !"

३

तक्षशिला में अपनी शिक्षा-दीक्षा समाप्त कर अपने शौर्य और पराक्रम का दिग्दर्शन कर, अपने सरल स्वभाव से सभी को विमोहित कर, अपने कान्तियुक्त एवं बलिष्ठ शरीर को अनुकरण व आदर्श का केन्द्र बनाये रखकर—मल्ल-बन्धुल—परम प्रसन्न हो—पावा पहुँचा !

मल्ल-बन्धुल पावा के मल्ल-सामंत का कुमार था। पावा-आगमन पर सभी ने उसका यथेष्ट स्वागत-सत्कार कर गर्व का अनुभव किया। बन्धुल के तेजस्वी विद्यार्थी जीवन की चर्चा उसके पठन-काल में ही कीतिरूप में सर्वत्र प्रसारित हो चुकी थी।

तक्षशिला में दस वर्ष तक रहकर मल्ल-बंधुल को जो कीर्ति प्राप्त हुई थी उसका यशोगान केवल पावा में ही नहीं अपितु दूर-दूर हो रहा था। वस्तुतः तक्षशिला एक ऐसा केन्द्र था ही जहाँ सब ओर के विद्यार्थी प्रकाश पाते थे। उसी आधार पर वह प्रचार सर्वत्र ही था।

उद्भव एवं विकास के अन्तर में ईर्षा का वास रहता है। जो कारण अभ्युदय के होते हैं वे ही अन्ततः ईर्षा व प्रतिद्वन्द्विता के बन जाते हैं। प्रतिद्वन्द्विता तो सबल होती है किन्तु ईर्षा की गति अधम होती है।

अस्तु, घर आकर मल्ल-बंधुल सर्वप्रिय बनता चला गया। सभी उसका सम्मान करते थे।

गणपति ने भी मल्ल-बंधुल के शौर्य-पराक्रम से प्रभावित हो उसे अपने पास बुलाया और थोड़ा-थोड़ा राज-कार्य देखना प्रारम्भ करने को कहा ! बंधुल इससे अत्यन्त हर्षित हुआ।

× × ×

प्राचीन भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। ये प्रत्येक राज्य 'जनपद' कहलाते थे। धीरे-धीरे एक राज्य ने दूसरे को आक्रान्त कर विजय प्राप्त की और अपने राज्य का विस्तार किया। यह साम्राज्य-विस्तार ही कई

छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर 'महाजनपद' बनाता गया।

ये महाजन पद ईसापूर्व आठवीं शताब्दी से लेकर लगभग तीन-चार सौ वर्ष तक अपकर्ष-उत्कर्ष सहित बने रहे।

इस प्रकार के जनपदों में भारत के सोलह जनपद—शक्तिशाली व प्रसिद्ध थे। इनमें अंग, मगध; काशी, कोशल; वृजि, मल्ल; चेदि, वत्स; कुरु, पाञ्चाल; मत्स्य, शूरसेन; अश्मक, अवन्ति एवं गान्धार, कम्बोज अत्यन्त प्रभावशाली महाजनपद थे।

मल्ल संघ भी एक शक्तिशाली जनपद था। मल्लों की दो राजधानियाँ थीं—कुशीनारा तथा पावा।

तत्कालीन राजनैतिक संघर्षों में मल्ल-जनपद की स्थिति भी विशेष उल्लेखनीय रही। मल्ल अच्छे योद्धा थे। इनका सुव्यवस्थित राज्य था किन्तु युद्धों में जय-पराजय प्राप्त करते ये थकते जा रहे थे। इधर मल्ल-बंधुल के शौर्यपराक्रम को देखकर उनमें पुनः जागरण हो रहा था।

तक्षशिला से जब मल्ल-बंधुल आने लगा तो गुरुपद ने कहा था—"यह पराक्रमी आयुष्मान अपनी जन्मभूमि को जा रहा है। समस्त हस्त-लाघव, राजकौशल और नीतिरीति सीखकर मल्लों की यह गौरव-वृद्धि करेगा।"

और वास्तव में बंधुल के आगमन से कुशीनारा एवं पावा के जन-पद-क्षेत्र में उसकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती गई। गणपति ने राज-काज के अनेक गुरुतर भार उसको दिये, जिनको उसने अपने कौशल से सफलता-पूर्वक सम्पन्न किया।

अस्तु, मल्ल-बंधुल इस प्रकार कर्म-क्षेत्र में अवतरित हो रहा था।

४

प्रसेनजित का पिता कोशल-नरेश महाकोशल अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी राजा था। उसने अपने राज्य में काशी सदृश प्रमुख जन-पद को हस्तगत कर लिया था।

महाकोशल के अनन्तर कोशल पर प्रसेनजित का शासन प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में प्रसेनजित ने कूटनीति, कौशल एवं पराक्रम से राज्य का संचालन किया। उसने अपने पिता के अनुरूप ही दिग्विजय की पताका को फहराए रक्खा। वह इतना चतुर व कूटनीतिज्ञ था कि उसने मगध-राज बिम्बसार से अपनी बहन कोशलदेवी का विवाह केवल इसलिए कर दिया कि मगध ऐसे शक्तिशाली जनपद को बिना अपने अनुरूप किये उसके साम्राज्य-विस्तार का स्वप्न परिपूर्ण न होगा। इस प्रकार मगध व कोशल में मित्रता भी हो गई।

किन्तु आगे चलकर प्रसेनजित अत्यन्त विलासी हो गया। वास्तव में उन दिनों कोशल के प्रसेनजित एवं मगध के श्रेणिक बिम्बसार दोनों ने ही समस्त जम्बूद्वीप पर अधिकार करके चक्रवर्ती होने के स्वप्न देख रक्खे थे।

अस्तु, प्रसेनजित ने राज्य-विस्तार के नाम पर राज्य-विस्तार भी किया और प्रचलन के अनुसार पराजित राज्य की राजकुमारी से विवाह भी। इस प्रकार जहाँ एक ओर प्रसेनजिन के राज्य की सीमाओं का विस्तार हुआ वहां दूसरी ओर उसके राज-महालय का अन्तःपुर रानियों से संवर्धित होता रहा।

इसी परिवर्धन एवं विस्तार में एक समय प्रसेनजित ने निकटवर्ती शाक्यों पर आक्रमण कर दिया। प्रसेनजित के प्रभाव के समक्ष वे न टिक सके और परास्त हुए। पराजय पर प्रसेनजित ने परम्परा के अनुसार राज-कन्या से विवाह की माँग की।

वस्तुत: शाक्य प्रसेनजित से अत्यन्त घृणा करते थे। वे उसे निम्न स्तर का व्यक्ति मानते थे। उनका कथन था कि यह अत्यन्त कामुक एवं विलासी है। एक माली की लड़की को राजमहिषी बनाये हुए है। इसके अन्तःपुर में कोई कुलीन रानी है ही नहीं। यह यथार्थता भी थी।

वास्तव में तत्कालीन राजाओं की स्थिति इस दिशा में निम्नतर थी। वे बहुविवाह ही नहीं करते थे अपितु अपनी वासना और लोलुपता में दासियों एवं निम्नकुल की स्त्रियों को बलात् तृप्ति का साधन बनाते थे।

प्रसेनजित भी इसी कोटि का शासक था।

अत: शाक्यों ने मन्त्रणा कर कूट और छलपूर्वक—अपनी राजकुमारी के स्थान पर एक सामन्त द्वारा दासी से उत्पन्न नीच कुल की कन्या से प्रसेनजित का विवाह कर दिया।

× × ×

शक्तिमती सुन्दर थी, कुशल थी, राजनीति, कूटनीति में सबल थी एवं प्रसेनजित को वशीभूत करने के गुण भी उसमें यथेष्ट थे।

इसी शक्तिमती का पुत्र विड्डभ कोशल के युवराज-पद पर आसीन था। विड्डभ उच्छृंखल प्रकृति का राजकुमार था।

विड्डभ की दृष्टि मल्लिका पर पड़ी। वह मल्लिका के रूप-यौवन पर आसक्त हो गया। अन्तःपुर में आते-जाते वह मल्लिका को निरन्तर देखा करता था। इधर अपनी आसक्ति में वह उतावला था किन्तु उसका साहस कुछ प्रकट करने का नहीं हो रहा था।

राज-महालय की सीढ़ियों, अलिन्दों एवं अन्तरकक्षों में जाते-आते विड्डभ ने मल्लिका का अनेक बार पीछा भी किया किन्तु मल्लिका की तीक्ष्णता के समक्ष उसकी उच्छृंखलता दबती चली गई।

मल्लिका ने भी अनुभव किया कि राजकुमार उसके रूप-यौवन की ओर खिंच रहा है। वस्तुत: मल्लिका उस काल भी प्रणय-अनुराग की कंटकाकीर्ण वीथियों से अनभिज्ञ थी। अपनी नारी-शक्ति के प्रभाव से शून्य थी। प्रथम तो उसने राजकुमार के उस क्रिया-कलाप को सरल-

भाव से अनुभव कर उदासीनता अपना ली किन्तु प्रतिदिन के उस व्यवहार से वह क्षुब्ध हो गई और अन्ततः उसने प्रासाद में जाना-आना बन्द कर दिया।

"माँ, आज मल्लिका नहीं आई ?"

"हाँ, तू जो उसके पीछे बावला बना घूमता है। और वह है जो आँख उठाकर भी नहीं देखती। कुछ कह दिया होगा तभी नहीं आई," शक्तिमती ने तरुण राजकुमार से ममता भरे स्वर में कहा।

"किसी दासी को भेजकर उसे बुलवाइए, न।"

"अच्छा, बुलाऊँगी। तो आज भाले के कितने हाथ चलाये। गुरुपद की सेवा में गया था, न।"

"हाँ, माँ आज उन्होंने युद्ध-कौशल पर भाषण किया था। आज शस्त्र-संचालन स्थगित था, माँ !"

"तो जाओ, महल में ही उपसेनापति जमदग्नि को लेकर कुछ हस्त-लाघव के हाथ सीखो।"

"किन्तु मल्लिका···।"

"आ जायगी !"

अनुराग का अंकुर पनपे तो कुछ उपजता ही है। विड्डभ में मल्लिका के प्रति रागमयी भावना सजग होती चली गई। वास्तव में वह अनुरक्त था। इधर मल्लिका ने शक्तिमती के निमन्त्रण पर पुनः आवागमन प्रारम्भ कर दिया किन्तु अब विड्डभ पूर्ण व्यवस्थित रहता था। एक दृष्टि में वह उसे देखता अवश्य था किन्तु अपने आगार में आकर मौन हो बैठा रहता था। जब तक मल्लिका प्रासाद में रहती—विड्डभ उत्कंठित बना रहता था।

और मल्लिका सरल भाव से आती। अपने स्वरूप का प्रभाव प्रासाद की वायु में छोड़कर चली जाती।

मल्लिका के जाने के पश्चात् भी विड्डुभ उसी ओर निहारता रहता जिधर से मल्लिका जाती और तब हताश हो अपनी स्वर्ण-पीठ पर आ बैठता। तब प्रासाद में मल्लिका से सुरभित वायु विड्डुभ के निकट आकर उसे उष्ण बनाती।

इधर स्वाध्याय के एकान्त क्षणों में मल्लिका ने प्रणय-अनुराग की नाना कथायें, घटनायें, उनके सुख-दुःख की अवस्थायें देखी-पढ़ीं। उन स्नेह प्रक्रियाओं के प्रसंग आने पर उसके शरीर में भी उद्रेक, स्फुरण, रोमांच हो आता। इस नवीन परिवर्तन से वह काँप जाती। किन्तु अब उसका अनुभव बढ़ने लगा। अब उसने एकान्त में सोचा क्यों कोई पुरुष स्त्री के साहचर्य की कामना करता है। क्यों वे एक दूसरे पर आरोपित रहते हैं। क्यों···क्यों विड्डुभ उसके पीछे-पीछे भागा करता था और उसे बुरा लगता था। किन्तु अब, इधर वह संयत हो गया है। वह अब पहले की भाँति उद्दण्ड-प्रदर्शन नहीं करता···किन्तु उससे क्या ? होगा ! और मल्लिका अपने चित्त की एकाग्रता को कहीं व्यस्त करने की चेष्टा करती।

संध्या-वंदन का समय समाप्त हो चुका था। श्रावस्ती के नागरिक—नर-नारियाँ—देवालय में आरती के हेतु आ जा रहे थे। श्रावस्ती के इस भव्य देवालय की शोभा अपार थी। सम्पूर्ण देवालय का बाहरी भाग लाल पत्थर का बना हुआ था जो दूर से एक दुर्ग-सदृश प्रतीत होता था। देवालय का अन्तर्भाग धवल-स्वच्छ-संगमर्मर का था। इसमें अनेक कक्ष व छोटे-बड़े दालान थे। एक अत्यन्त विशाल सभा-मण्डप था जिसमें १०१ भारी-भारी खम्भे थे जो श्वेत संगमर्मर के बने हुए थे, जिनके ऊपर सभा-मण्डप की छत टिकी हुई थी। मन्दिर भर में सैंकड़ों घंटे लटक रहे थे जो दर्शनार्थी प्रतिपल बजाया करते। कभी-कभी सब घंटे एक साथ बज जाते जिससे ध्वनियाँ गूँज-गूँजकर देवालय के पत्थरों से टकरातीं—पुरुष-

स्त्रियों के हृदयों से टकरातीं और पावन-आराधना को प्रकट करतीं।

मन्दिर में हर समय ही सौ-दो-सौ दर्शनार्थी एवं भक्तजन बने ही रहते थे। किन्तु सायंकाल, आरती के समय तो जनसमूह उमड़ पड़ता था। कोई फूलों के गुच्छे लिये, अनेक गेंदे, गुलाब, चम्पा, केतकी की मालायें लिये, कुछ चाँदी-सोने के पात्रों में कर्पूर लिये; स्त्रियाँ घृत के पात्र लिये अपने स्वच्छ परिधानों में—आकर्षक वेश-भूषा में इधर-उधर—ठट्ट के ठट्ठ घूमते फिरते। उस काल देवालय वैभव-उल्लास-हर्ष एवं पवित्रता का भव्य केन्द्र प्रतीत होता।

स्थान-स्थान पर लोग आसनों पर बैठे मन्त्रोच्चारण करते रहते। अनेक पुरुष ध्यानस्थ हो मौन-आराधना का सुख लूटते। चहल-पहल, व्यस्तता, घंटे-घड़ियालों के स्वरों से देवालय हिल उठता। स्त्री-पुरुषों की फुसफुसाहट—स्फुट-वार्ता-पूजा-मन्त्रों के प्रकाश से—सब मिलाकर बड़ी मनोरम ध्वनियाँ प्रकट होतीं।

वह पूजा का स्थान था। वह आरती-अर्चना-वन्दना का केन्द्र था। लोग वहाँ अपना सुख-दुःख भूलकर आते। लोग वहाँ अपना सुख-दुःख लेकर आते। लोग वहाँ आकर अपनी सब कुछ कह जाते—सुना जाते! प्रार्थना कर जाते! भविष्य के मन्तव्य बना जाते! देवालय की वही व्यस्तता है। वही पवित्रता है। वही विशालता है। मान्यता का वह चिरंतन स्थान है।

एक से एक सुघर-सलोनी सुकुमारियाँ, श्रावस्ती की एक से एक सौन्दर्य-देवियाँ, कोमलांगिनियाँ, आर्य-रमणियाँ, अपने गौरवर्ण में—अपने अलंकरणों को झलकातीं—रंग-बिरंगे वेशों की होड़ में—हृदयों की दौड़ में—अजेय-सी, अभेद्य-सी—परम धार्मिक आस्था लिये, एकाग्र हो मन्दिर की सीढ़ियों को अपने हलके-फुलके पैरों की गुलाबी-कोमलता से दाबती चढ़ती-उतरती थीं।

पुरुष रेशमी साफे बाँधे—सोने के तार खिंचे अंगरखे धारण किये, कानों, कंठ, भुजा व कलाइयों में स्वर्ण-रत्न आभूषण धारण किये, अपने

भव्य व्यक्तित्व में, गौरवर्ण में—चन्दन-अक्षत के टीके लगाये, अपनी लम्बी-ऊंची नाक के नीचे गुल्लेदार मूँछें फरफराते देवस्थान में आकर वन्दन-अर्चन में व्यस्त हो जाते। व्यापार-वाणिज्य की व्यस्तता के पश्चात् आरती के उन क्षणों में उन्हें जैसे पूर्ण विश्राम प्राप्त हो जाता ! अनेक सेष्ठिजन, सामन्त, अभिजातवर्गीय युवक बहुमूल्य वस्त्रों-आभूषणों से सज्जित हो—जनसमूह में समान-भाव से घूमते-फिरते।

आज भी—सदैव की भाँति देवालय में अत्यधिक चहल-पहल हो रही थी। पूजार्थी मन्दिर में आ-जा रहे थे। कुछ सभामण्डप में बैठे ध्यानस्थ थे अथवा वार्तालाप कर रहे थे। कुछ नर-नारी मन्दिर के पृष्ठ-भाग में बने विशाल-ताल के चारों ओर घूम-फिर कर आनन्द मना रहे थे। इस ताल के चारों ओर संगमरमर की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। बहुत लोग उन्हीं पर चारों ओर बैठे वार्तालाप में मग्न थे। कोई पति-पत्नी अथवा प्रेमी-युगल भी एकान्त पा प्रेम की पावन रीतियों का निर्वाह कर रहे थे।

मन्दिर व तालाब का यह भाग मशालों के प्रकाश से आलोकित हो रहा था। घंटों की गूँज और आरती के मन्त्रों से सभा-मण्डप उत्साहित हो रहा था। तभी मल्लिका—मन्द पग टेकती—हाथ में आरती का थाल संजोये देवालय की सीढ़ियों पर चढ़ी—बढ़ी। देव-प्रतिमा के समक्ष गई। अपनी अर्चना वहाँ अर्पित की। दीप आलोकित किया। प्रसाद पाया और लौट पड़ी। सखियाँ मिल जायंगी—विलम्ब होगा। उनसे पीछा छुड़ाना कठिन हो जायगा। वे उसे वार्तालाप में व्यस्त कर लेंगी। कोई सम्भव है—प्रयत्न करके अपने निवास पर ही खींच ले जाय—अतः वह सदैव ही अपने से— दबी-दबी, सबसे बची-बची किनारे से लौटने का प्रयत्न करती किन्तु नित्य ही ऐसा कुछ हो ही जाता कि वह उलझ जाती।

और आज वह विशेष प्रसन्न थी कि सर खपाने से बच गई। कोई नहीं मिला, साथ ही एक अभाव भी लग रहा था कि कोई नहीं मिला।

अप्राप्य की लालसा से मानव-हृदय कुलबुलाया करता है। तभी मल्लिका ने उतरते हुए सीढ़ियों पर पहला पग टिकाया कि समक्ष से राजकुमार विड्डभ अपने सैनिक वेश में--मल्लिका की सीढ़ी से तीसरी सीढ़ी पर दिखाई दिया। अनायास दृष्टियाँ चार हो गईं। मल्लिका ने दृष्टि के उस कौतुक को तुरन्त परिवर्तित कर दृष्टि का द्वितीय निक्षेप अन्यत्र केन्द्रित किया। विड्डभ १-२-३ क्षण तक मल्लिका की रूप-सुधा का पान करता रहा। उसके साथ दो अंग-रक्षक भी उसके साथ पीछे अटके खड़े रहे। तभी मल्लिका कतराकर नीचे उतरती चली गई। विवशता में विड्डभ देवालय के सभा-मण्डप की ओर बढ़ चला।

उसने अपने चरों द्वारा ज्ञात किया था कि मल्लिका नित्य संध्या समय देवालय में आरती के हेतु जाती है। तभी आज वह यथासमय वहाँ पहुँचा। मन से मानकर चला था। अतः समक्ष ही मल्लिका दिख गई। राजकुमार को देवालय में देखकर अन्य जनों में कौतूहल की लहर दौड़ गई। "राजकुमार" "राजकुमार" "युवराज"—लगभग सभी स्त्रियों एवं पुरुषों के मुखों पर था।

किन्तु विड्डभ—इधर-उधर देखे बिना सीधे देव-प्रतिमा के समक्ष तक गया। नमित भाव से पलक मूँदकर उसने मल्लिका की कामना की और पुनः शीघ्रता में मल्लिका को देख पाने की उद्विग्नता में लौट पड़ा। मन्दिर के भव्य-प्रवेश द्वार पर प्रतीक्षा में खड़े अंगरक्षकों में से एक ने उसकी तलवार उसकी कटि पर बाँध दी जिसे वह मन्दिर जाते समय उतारकर सैनिक को दे गया था।

उसकी शीघ्र गति को जन-समूह एकाग्रता व आश्चर्य से देखता रहा। अनेक अनुमान, वहाँ व्यक्तियों में प्रवेश करते रहे और उस शीघ्रता में विड्डभ ने देखा—मल्लिका पीछे सरोवर की ओर बढ़ रही है।

पुलक-मन से विड्डभ भी उधर बढ़ चला। चिरकाल से अन्तरङ्ग में दबी प्रणय-निवेदन की साध को प्रकट करने का आज उसने सर्वाधिक उपयुक्त अवसर जाना।

देवालय से बाहर आकर मल्लिका के हृदय में न जाने कैसा सा—एक विचित्र-सा उद्रेक—प्रवेश कर गया। उस विभ्रम में उसके मन में—अनायास, यों ही, सरोवर की किसी सीढ़ी पर बैठकर एकान्त-सुख-लाभ की कामना जग आई और वह उस ओर बढ़ गई!

जब तक विडुभ मल्लिका के निकट पहुँचा मल्लिका एक स्वच्छन्द स्थान पर बैठ चुकी थी। उसकी मोहक दृष्टि सरोवर के जल पर आसक्त थी। उस काल सरोवर में—मशालों की प्रतिच्छाया पड़ रही थी। सरोवर—शान्त, सुस्थिर था। प्रतीत हो रहा था वह अति-गहन रात्रि की प्रतीक्षा कर रहा है जब संसार की निमग्नता में वह प्रकृति-नटी से प्रणय-लीला रचाता हो। सरोवर अत्यन्त गहरा था। उसमें न लोग स्नान करते थे न उसका जल ही उपयोग में लाते थे। हाँ, देवालय की प्रतिमाओं पर अर्पित करने के पश्चात् जो पुष्प दर्शनार्थी बचा लाते थे उन्हें वे सरोवर की पवित्रता पर अर्पित कर देते थे। देवालय की आयु के साथ सरोवर भी बूढ़ा हो गया था फिर भी उसमें तेजस्विता उसी प्रकार चिर-नवीन थी।

मल्लिका की विचारधारा में दो-चार लहरें ही इधर-उधर डोली होंगी कि उसके कर्ण-रन्ध्रों में स्वनाम का स्वर गूँजा—"मल्लिका—।" उसे वह आकाशवाणी-सा भासित हुआ। ऐसा अनेक अवसरों पर होता है—लगता है कोई पुकार रहा है किन्तु कहीं कोई नहीं होता। जैसे अपने प्रति सराहना की वह विशेष स्थिति होती है। तो, मल्लिका ने विचार किया—'उसे वहाँ यों कौन पुकारेगा?' तब उसने यह मानकर सन्तोष किया उसकी कोई परिचिता—जिससे बचकर आज वह निकल आई थी—यहाँ भी घिर आई। उसने तब प्रसन्नता मानी अच्छा है—हँस बोल कर बातें करेंगे।

और उसने अपनी दृष्टी घुमाकर देखा—समक्ष राजकुमार विडुभ—विमोहन में उसके रूप को आत्मसात् कर रहा था। प्रथम उद्रेक में मल्लिका सहम गई। अपितु उसमें आत्म का यथेष्ट बल बाल्यकाल से

ही था। उसमें व्यवहार-निर्वाह की भी यथेष्ट मान्यता थी।

तभी उसके कानों में पुन: स्वर गूँजा—"मल्लिका····"

ओ ! राज कुमार····।" अनायास मल्लिका के मुख से निकल गया और मल्लिका ने अपनी सलज्ज-दृष्टि राजकुमार के निकट की भूमि पर टिका ली।

तब तक विडुभ मल्लिका के निकट—निश्चिन्तभाव से बैठ गया।

मल्लिका को समक्ष का सरोवर विलीन होता प्रतीत हुआ। संगमर्मर की दुग्ध-धवल सीढ़ियाँ—काली-काली-अन्तर्धान-सी होती प्रतीत हुईं ! केवल उसे लगा—दर्शनार्थियों के अपार समूह की दृष्टियाँ उस मशाल के आलोक में—उधर ही देख रही हैं। उसे लगा—यह पुरुष का—राजपुरुष का कैसा दु:साहस है ? क्या नारी भी कभी वैसा साहस कर सकती है ? क्या···

तभी व्यवहार में···सम्मान में····मल्लिका ने प्रकट किया—"कहिये राजकुमार !" मल्लिका के स्वर में एक तीव्रता थी, एक तीक्ष्णता थी, एक व्यंग था, तिरस्कार भी था।

तब वहाँ पूर्ण निस्तब्धता बिखर गई। मल्लिका को बारम्बार लग रहा था—आस-पास या दूर जो भी स्त्री-पुरुष बैठे हैं—केवल उसको ही देख रहे हैं।

विडुभ का साहस वहाँ तक जिस तीव्रता में बढ़ आया था उसके अनन्तर ज्यों विलीन होगया। अब उसने अपनी स्थिति का निरीक्षण किया। जैसे उसकी वाक्-शक्ति विलुप्त हो गई है। जैसे···वह सोच गया यदि व्यवहार से मल्लिका रुष्ट हो गई तो भविष्य का मार्ग भी वाक्शक्ति की ही भाँति विलुप्त हो जावेगा। अन्तत: वह कुछ भी न बोल पाया।

मल्लिका का रक्त-चाप तीव्रतर हो रहा था अपितु उसने प्रयत्न कर साहस-संचार की चेष्टा बनाये रक्खी। जब विलम्ब तक कोई वार्ता न हुई तो मल्लिका ने ही प्रारम्भ किया—"मुझ विनीत को क्या आज्ञा है, युवराज ?"

विडुभ निरन्तर सरोवर के जल की शान्त-स्थिरता में अपनी उच्छृं-खलता धोता रहा।

मल्लिका विचार रही थी—'विचित्र व्यक्ति है। विचित्र स्थिति है।' तभी हृदयगति की उस तीव्रता में—पुरुष के उस प्राथमिक-संसर्ग में स्फुरण की एक नवीनता मल्लिका में पैठ गई। मल्लिका एक पल को सोच गई—क्या! अपनी स्नेहमय व्यवहार-वार्ता से वह इस युवक, सुन्दर स्वस्थ राजकुमार को प्रोत्साहित करे? तो, वह स्नेहमय क्या और वह वार्ता कैसी? उसको तो कुछ अनुभव नहीं। तो, उसने ध्यान किया—इस युवा-कुमार में जब इतना साहस विद्यमान है तो उसे सम्भवतः आगामी अनुभव की नीतिज्ञता होगी। किन्तु—मल्लिका का मस्तिष्क यह निरन्तर कहता रहा—कितना अनुचित है? कैसा दुस्साहस है? ऐसे किसी तरुणी के प्रति वैसा दुर्व्यवहार कैसा अपराध है? तो यह राज-कुमार की स्थिति का दुर्लाभ है अथवा प्रकृति-विशेष की अमर्यादा···?

और तब मल्लिका का विद्वान-मस्तिष्क जागृत हुआ। तर्क-वितर्क किंचित् विलीन हुआ! कुछ भी हो—नीति एवं विवेक से इस स्थिति का निराकरण न्यूनतम क्षणों में हो इस हेतु मल्लिका ने प्रकट किया—"आज्ञा हो तो मैं जाऊँ, राजकुमार···!"

सहसा जैसे राजकुमार के सोये शरीर, मन व मस्तिष्क में विद्युत् का संचार, किसी ने किया हो। मल्लिका जा रही है—इस चेतना ने उसे विवश किया कि वह कुछ कहे किन्तु फिर भी कुछ प्रकट न हो पाया केवल एक शब्द पुनः प्रकट होगया—"मल्लिका···।"

"जी, कहिये।"

और पुनः मौन····

तब मल्लिका ने कहा—"राजकुमार—आप किस स्थिति में हैं? मुझ से क्या चाहते हैं? इसके पूर्व भी आप आगे बढ़े। आपके ओंठों तक कुछ आया और रुक गया····तो आज आप स्पष्टतः कुछ प्रकट करें···।"

"मल्लिका···मैं, मल्लिका····।"

"कहिये—कहिये···।"

"तुम्हारी स्नेह-दृष्टि की कामना करता हूँ।"

"मेरी दृष्टि कटु तो नहीं···।" कहकर मल्लिका कुछ मुस्करा दी। जैसे विडुभ क्या चाहता है अब वह जान गई है। नर-नारी का क्या नाता है—आज उसे प्रथम बार ज्ञात हो गया है।

"मल्लिका····।"

"ठीक है युवराज—कोशल के भावी अधिराज····मैं कृतकृत्य हुई! मेरे प्रणय-अनुराग की शिशु-कामना भी अभी दुग्ध-धवल है। उस पर अभी तक दृष्टियाँ तो सहस्रों पड़ चुकी हैं किन्तु प्रभाव किंचित् भी नहीं हो पाया है। आपका अबोध प्रणय-निवेदन भी, मुझे लगता है—स्वाभाविक, सहज व सरल है। मैं उसे कलुषमय रूप में मानूँगी ही नहीं—सोचूँगी ही नहीं। समय और परिस्थितियाँ—मानव को गति व प्रेरणा देती हैं—यदि वैसा सम्भव हो सका तो···तो···।" कहते-कहते मल्लिका में जैसे एक अन्तर्ज्योति प्रकाशित हो आई। वह साहस कर एक श्वास में सब कुछ कह गई।

"मल्लिका···मैं सच तुम पर आश्रित हो गया हूँ। यह मेरे मन की वास्तविक स्थिति है। वह निरीहता है, उसमें सच-सच कोई पापमय कलुष नहीं है। और अपने व्यवहार की इस अमर्यादा की मैं क्षमा चाहता हूँ। बोलो—तुम तक मेरी बात कैसे पहुँच पाती?" विडुभ में अब तक यथेष्ट बल आचुका था व मल्लिका के कथन ने उसे प्रोत्साहन भी पर्याप्त मात्रा में प्रदान किया था।

"मैं···आपकी स्थिति की सराहना करती हूँ! आप ··।"

निमिषमात्र में विडुभ ने मल्लिका की कोमल कलाई को पकड़ लिया। मल्लिका उस स्थिति से सर्वथा अनभिज्ञ थी। वह काँप गई! सरलता से उसने विडुभ का हाथ हटा दिया और कहा—"तो राजकुमार, मुझे आज्ञा दीजिये! मैं जाऊँगी। मुझे क्षमा करें।"

और मल्लिका तुरन्त उठी और एक ओर चल दी।

विडुभ सरोवर के निकट बैठा रहा ! उसने सोचा—'मूर्खता की। सम्भवतः वार्तालाप करते रहते तो साहचर्य का सुख विलम्ब तक मिल जाता। किन्तु···। मल्लिका प्राप्त होगी'—इस पूर्णाशा में सहर्ष वह उठा और अंगरक्षकों की ओर बढ़ आया।

५

"हः, अविवेकी एवं उच्छृंखल लड़के की माँग पर मैं साम्राज्य उसे सौंप दूँ, मगध-महामात्य···।"

"राज-परिवार में चलने वाली दुर्विनीति की ओर संकेत मात्र कर रहा हूँ, महाराज !"

"अजात की उद्दण्डताओं में उसकी माता चेलना की अदूरदर्शिता की प्रतिच्छाया विद्यमान है, वर्षकार।"

"इतना ही नहीं—सम्राज्ञी चेलना देवी पर भी कुमन्त्रणायें प्रभाव डाल रही हैं," मगध महामात्य वर्षकार ने अपने विशाल मस्तक पर तीन बल डालते हुए कहा।

"अभिप्राय स्पष्ट करो महामात्य !"—मगध सम्राट् बिम्बसार ने उत्तेजित होकर कहा।

"ईर्षा और दम्भ व्यक्ति को अनाचार की ओर उन्मुख करते हैं। स्वेच्छाचारिता, महत्त्वाकांक्षा एवं पदलिप्सा व्यक्ति का विवेक नष्ट कर देते हैं—सम्राट् ! महामात्य बुद्ध के प्रति द्वेष; अपनी गुरुपद की प्राप्ति; धर्म में भी एकच्छत्र शासन की कामना; राजनीति में भी प्रसार की विडम्बना ने देवदत्त को अन्धा बना रक्खा है, देव ! और सम्राज्ञी चेलना देवी पर देवदत्त के धर्म, दुर्विनीति एवं कुमन्त्रणाओं का यथेष्ट प्रभाव पड़ रहा है।" उस काल के राजनीति-प्रवर, मगध के महामात्य वयस्य वर्षकार ने सम्राट् बिम्बसार से गम्भीरतापूर्वक व्यक्त किया।

सम्राट् बिम्बसार अपनी स्वर्ण-पीठिका पर बैठे विचारों में निमग्न थे। उनकी दृष्टि समक्ष शून्य में केन्द्रित थी व कर्ण परम-वैभवशाली मगध साम्राज्य के महामात्य के गहन तथ्य को सुनकर मस्तिष्क को समझा रहे थे। महामात्य के कथन पर सम्राट् बिम्बसार के समक्ष अपने पुत्र युवराज अजातशत्रु एवं रानी चेलना के चित्र तैरने लगे !

उस समय बिम्बसार एवं वर्षकार मन्त्रणा-कक्ष में पूर्ण एकान्तिक थे। बिम्बसार को लग रहा था नारी के समक्ष यह सम्राट्-पद भी कभी कितना हेय है। चेलना के समक्ष की विवशता से सम्राट् बिम्बसार का मन-मानस जहाँ एक ओर प्रकंपित था वहीं सम्राट् एवं मगध साम्राज्य का अस्तित्व भी थर्रा रहा था।

× × ×

तत्कालीन जनपदों में मगध साम्राज्य परम प्रभावशाली, वैभवसम्पन्न प्रबल एवं सुदृढ़ था। मगध की राजधानी राजगृह अपनी उन्नति के परम उत्कर्ष पर थी। राजगृह उदयगिरि, सोनगिरि, खण्डगिरि, रत्नगिरि एवं विपुलांचल नामक पञ्च पहाड़ियों से घिरा हुआ था। ये पञ्च-पहाड़ियाँ राजगृह की स्वाभाविक प्राचीर बनी हुई थीं। इन पञ्च पहाड़ियों से घिरी राजगृह की बस्ती में वैभव, विलास, उल्लास, उमड़ा पड़ता था।

मागध नागरिकों में शिक्षा, कला, संगीत एवं संस्कृति के प्रति पूर्ण आस्था थी। मगध के युवक प्रबल योद्धा थे।

एक समय जब मगध की राजधानी गिरिव्रज थी—लिच्छवि मगध पर निरन्तर आक्रमण करते रहते थे। तदनन्तर लिच्छवि-राजकुमारी चेलना का बिम्बसार से विवाह हो जाने पर दोनों राज्यों में महत्त्वपूर्ण मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया।

सम्राट् बिम्बसार के अन्तःपुर में नन्दश्री, कोशल-राजकुमारी—कोशल देवी, लिच्छवि-राजकुमारी चेलना एवं केरल-राजकुमारी ये चार रानियाँ थीं। इस प्रकार बिम्बसार ने तत्कालीन भारत के प्रमुख राज्यों से विवाह-सम्पर्क स्थापित कर अपने राज्य की नींवें अत्यन्त सुदृढ़ बनाई थीं।

मगध में लगभग ८० हज़ार ग्राम लगे हुए थे तथा मगध राज्य का विस्तार लगभग तीन सौ योजन था। ऐसे समृद्धिशाली साम्राज्य के शासक रूप में सम्राट् बिम्बसार बड़े प्रतापी शासक थे।

बिम्बसार बड़ी सरल एवं सौम्य प्रकृति के थे। वे महात्मा बुद्ध के

अनन्य उपासक एवं परम भक्त थे।

किन्तु सर्व-सुख-प्राप्ति के साथ-साथ वे संसार के सर्वाधिक दुःखी पति थे। लिच्छवि-राजकुमारी चेलना में लिच्छवि रक्त-प्रवाह की बड़ी ठसक थी। इस पर उसे भावी राज-माता होने का सौभाग्य प्राप्त था। उसका पुत्र कुणिक—युवराज अजातशत्रु—मगध का भावी शासक था। अतः वह बिम्बसार की अन्य रानियों से जहाँ एक ओर ईर्षा करती थी वहाँ वह बिम्बसार की अवहेलना करने में भी किंचित् न रुकती थी। कोशल की राजकुमारी—रानी कोशल देवी से उसे विशेष द्वेष था। साध्वी प्रकृति की कोशल देवी, अत्यन्त पति-परायणा, एवं दया, माया, ममता, शील, सौजन्य, सहिष्णुता की साक्षात् देवी-स्वरूपा थी। सम्राट् बिम्बसार भी उसको अत्यधिक स्नेह करते थे एवं उसे अपने स्वभाव के अनुकूल मानकर अपना विशेष समय उसी के साहचर्य में व्यतीत करते थे।

लिच्छवि-रक्त से उत्तेजित चेलना को वह सब कुछ असह्य था। अन्ततः गृह-कलह का भीषण सूत्रपात समृद्धिशाली मगध के राज-महालय में प्रारम्भ हो गया।

× × ×

"यह सब प्रवञ्चना है। मैं मानती हूँ तुम अजात को स्नेह करती हो। तुमने उसे पाला-पोषा है···किन्तु राज्य-मोह बड़ा प्रबल होता है। तुम कभी नहीं चाहतीं कि अजात को मगध का साम्राज्य प्राप्त हो···· तुम।"

कोशल देवी चेलना के इस कथन को सुनकर अत्यधिक मर्माहत हुई। उसे लगा—संसार कितना स्वार्थी, कितना द्वेषी, कितना छल-छद्म-पूर्ण है। भला वह ऐसा क्यों चाहेगी? उसके कोई पुत्र भी तो नहीं। एक पुत्री पद्मावती है—सो वह भी कौशाम्बी-नरेश उदयन से ब्याही जा चुकी है। अजात को वह कितना स्नेह करती है? अजात को निश्चित··· यह—उसकी माँ—बिगाड़ देगी। अतएव कोशल देवी मार्मिक पीड़ा

के उद्रेक में मौन बनी रही।

"और यह''''यह पद्मा''''यह कौशाम्बी से सब कुछ सीख-पढ़ कर आई है। यह अजात को एक पल को नहीं देख सकती। यह उसे अहिंसक व निर्बल बनने के उपदेश दिया करती है। इस सब में उस कौशाम्बी के उदयन का हाथ है। इसमें वहाँ के महामात्य यौगन्धरायण की कूटनीति है। मैं सब समझती हूँ। ये सब चाहते हैं कि मगध के अन्य राजकुमारों की भाँति अजात भी उन अकर्मण्य साधुओं का शिष्य बनकर राज्यत्याग दे जैसे उन सबने राज्यत्याग कर भिक्षा-वृत्ति को अपनाया है। तभी उस उदयन का'''सबका, स्वप्न पूरा होगा। किन्तु'''' मैं''''मुझ में लिच्छवि-रक्त का संचार है। मैं अजात को मगध का सम्राट् बनाऊँगी—अवश्य बनाऊँगी।"

"बहन'''उसे रोकता कौन है!"

"तुम'''तुम सब रोकते हो! और महाराज'''उनकी तो तुमने बुद्धि भ्रष्ट कर रखी है। क्या उन्हें कभी भी ध्यान आता है कि अजात अब इस योग्य हो गया है कि उसे राज्य-सत्ता सौंप दी जावे? किन्तु उन्हें वैसा ध्यान आवे कैसे? किन्तु''''अब आवेगा। मैं दिलाऊँगी। अजात का बाहुबल दिलावेगा। उसकी शक्ति'''" कहते-कहते चेलना जैसे सावधान हो गई।

"ऐसा भाषण मत करो, चेलना। यों अपने पुत्र को''''युवराज को—पथ-भ्रष्ट मत करो। अपनी अदूरदर्शिता से उसके मार्ग में कंटक मत बोओ। मगध में विग्रह का कारण मत बनो। तुम राजमाता की लालसा रखती हो, वह तुम बनोगी। अजात—वह मगध का शासक बनेगा। समय आने दो, सब पूर्ण होगा। धैर्य से काम लो''''।" कोशल, देवी ने उन कटूक्तियों का सरल भाव से उत्तर दिया।

पद्मावती अपनी माता एवं विमाता के वार्तालाप से अत्यन्त क्षुब्ध हो रही थी। विमाता के आवेश पर भी माता की सरलता उससे देखी नहीं जा रही थी किन्तु माँ के अनुरूप ही अपने स्वभाव के अनुसार वह, मौन

हो, सब सुनती रही।

और चेलना उतने से सन्तुष्ट कैसे हो जाती? उसने पुनः प्रारम्भ किया—"तुम्हारे कोशल और काशी के अभिमान को भी विदीर्ण करूँगी।"

"चलिये माँ!···चलिये यहाँ से," कहकर, पद्मावती प्रयत्न करके—माता का अपमान होता देख उसे वहाँ से उठा लाई।

× × ×

"न जाने क्यों! आपको साम्राज्य का इतना मोह है? मैं कहती हूँ—तुरन्त अजात को राज्य-सत्ता सौंपकर निराकुलता को अपनाइये। अब अजात····इस योग्य है कि वह राज्याधिकारी बने। और चेलना की भी इच्छा पूर्ण होनी ही चाहिए। छोटी रानी को संतोष देना आपका कर्त्तव्य है।"

"अजात उद्दण्ड है! चेलना मूर्खा है! तुम भी विवेक-शून्य वार्ता करती हो! क्या राज्य-संचालन इतना सरल है कि स्त्रियों और बालकों के हठ पर वह यों खिलवाड़ करने को दे दिया जावे? राज्य की निरीह जनता का भाग्य निर्बल व अयोग्य हाथों में सौंप दिया जावे? ऐसा कदापि न होगा!"—बिम्बसार ने उत्तेजित होते हुए कहा।

"तो पुत्र को सबल व योग्य बनाने का कार्य पिता का है। अजात को योग्य बनाइये····"

"अजात को योग्य बनाइये···अजात जैसे अयोग्य है। दुधमुँहा बच्चा है। उद्दण्ड है। ठीक है। इसी प्रकार अजात की शुभ-चिन्तना हो रही है। यही उसके प्रति वात्सल्य-प्रदर्शन हो रहा है। मैं कह रही थी, न! इसी प्रकार पति का मस्तिष्क विकृत कर तुमने मेरा व मेरे पुत्र का जीवन नाश करने का बीड़ा उठा रक्खा है। ऊपर से कितनी भोली-साध्वी लगती हो, तुम। अन्दर ही अन्दर कैसा अपघात—कैसा मिथ्याडम्बर····और ये···जैसे इनकी मतिभ्रष्ट हो गई है। एक-एक करके, सारे राजकुमार पुत्रों को उस विश्व-कल्याणक के साधु-संघ में

भिक्षार्थ सम्मिलित हो जाने की अनुमति दे दी। अब अजात को भी उसी स्थिति में देखना चाहते हैं। इस वृद्धावस्था में भी राज्य-लिप्सा में लिप्त हैं। देखूँगी···अब यह सब कैसे चलेगा ? मेरी विद्रोहाग्नि में या तो मगध विध्वंस हो जावेगा या मैं ही विलीन हो जाऊँगी···," कहते-कहते अनायास चेलना ने बिम्बसार के शयन-कक्ष में प्रवेश भी किया और एक श्वास में वह सब व्यक्त करके वहाँ से चली गई।

कोशल देवी एवं बिम्बसार हतप्रभ-से बैठे-के-बैठे रह गये। बिम्बसार के मन में बड़ा क्लेश·· अत्यधिक क्षोभ हो रहा था। मगध के साम्राज्य पर उन्हें विनाश के काले बादल उड़ते दिखाई देने लगे। गृह-कलह के सूत्र-पात से उस वैभव-सम्पन्न मगध की राज्य-श्री विलीन होती दीख पड़ी।

और सचमुच बिम्बसार सदृश — चक्रवर्ती साम्राज्य के स्वप्न-द्रष्टा— स्वपत्नी-द्रोह की विभीषिका में निष्क्रिय एवं निष्प्राण होते प्रतीत हो रहे थे।

× × ×

"क्या है समुद्रदत्त···?"

"गुरुपाद देवदत्त आपसे भेंट करना चाहते हैं।"

"कहाँ हैं—गुरु-वर्य ?"

"अपने निवास पर।"

"शीघ्र बुला लाने का प्रबन्ध करो। मेरा रथ लेते जाओ," कहकर अजातशत्रु आखेट के हेतु धनुष-बाण लेकर—अश्व की प्रतीक्षा में राज-महालय के बाह्य प्रांगण की ओर चलने को उद्यत हुआ।

"भय्या, कहाँ चल दिये ?"

"आखेट के लिए।"

"ओ ! तो निरीह जीवों की हत्या से क्या लाभ होगा, भय्या ? यह तो पाप है। यह हिंसा-वृत्ति तुम्हें श्रेयस्कर नहीं है, भय्या।" कहते कहते पद्मावती ने अजात के निकट आकर कन्धे पर लटकते तरकश व धनुष को उतारना प्रारम्भ किया।

अजात बहन के स्नेह से गद्‌गद् हो मौन खड़ा रहा किन्तु तत्काल चेलना ने आकर पद्मा को झटकते हुए कहा--"जा दूर हट जा···चली जा यहाँ से। भारत के भावी चक्रवर्ती सम्राट् को कायरता का पाठ पढ़ाने आई है। जा—वह शिक्षा अपने बूढ़े पिता—मगध के महाराज को दे जाकर, जिससे वे भी प्रसन्न होंगे और उनका वह अतिथि भी जो मगध में आने को है। वह जो घरबार, पत्नी-पुत्र—राज्य को छोड़कर भिखारी बना घूमता है—पाखण्डी! गुरुवर्य देवदत्त की एक शंका का जो निवारण नहीं कर सकता वह भारत का धर्मगुरु बनना चाहता है।"

और पद्मा—सजल नेत्रों को आँचल के छोर से सुखाती वहाँ से चुपचाप हट आई।

× × ×

"तो तुम मूर्ख हो, समुद्रदत्त!"

"जी, गुरुदेव!"

"इतना नहीं समझते कि इस गौतम के विरोध के लिए मगध-महालय से उपयुक्त स्थान दूसरा नहीं।"

"किन्तु गुरुदेव महाराज बिम्बसार की तथागत पर अटूट श्रद्धा है। आपका प्रभाव कहाँ तक कार्य करेगा, मुझे शंका है। यही मैं पुनर्वार दोहराता हूँ।"

"तभी पुनर्वार मैं भी दोहराता हूँ कि तुम मूर्ख हो···तुम शिष्य कहलाने के योग्य भी नहीं," कहते-कहते देवदत्त की आकृति लाल हो गई।

"महाराज, मैं आपका अनन्य अनुचर हूँ। आपके कार्य-हेतु प्राण छोड़कर कहीं भी जूझ जाता हूँ। मैं और भी कहता हूँ कि इस काल के परम तेजस्वी, अद्वितीय राजनीतिज्ञ, अकाट्य कूटनीतिज्ञ आर्य वर्षकार के मगध-महामात्य पद पर रहते आपकी राजनीतिक चालें कहाँ तक सफल होंगी—मुझे इसमें शंका है, गुरुदेव!"

"निकल जाओ, यहाँ से! मैं ऐसे व्यक्ति का संहार कर दूँगा जो मेरे कार्यों से मतभेद करे, विशेषतः मेरा ही एक नगण्य शिष्य···।"

समुद्रदत्त उठकर जाने को उद्यत हुआ। जब देवदत्त ने देखा कि समुद्रदत्त भी सरोष हो गया है तो किंचित् विनम्र होकर देवदत्त ने प्रारम्भ किया—"सुन—इतने दिनों मेरे, समाज और राजनीति के घेरे में रहकर भी नारी-मनोविज्ञान से सर्वथा अपरिचित है—समुद्रदत्त, इसका मुझे अत्यन्त खेद है। मगध-विग्रह में मेरा साधक है—रानी चेलना! नारी को विग्रहोन्मुख कर दूंगा तो मगध क्या समस्त विश्व-व्यापी साम्राज्य भी हो तो भी उसके एक भृकुटि-निक्षेप पर विध्वंस हो जावेगा। फिर वह मेरी ही भाँति उस पाखण्डी बुद्ध से घृणा करती है। मैंने उसे गहराई तक उसका विरोधी बना दिया है। उसका पुत्र मगध का सम्राट् बने—इस बात से प्रिय उसे और क्या होगा? और वह इस पर कटिबद्ध हो जायेगी तो इस बात को रोकने वाला कौन होगा? और वह वर्षकार··· उसका स्थान तेरे लिए रिक्त होगा। तू देखता जा वर्षकार की काट मैं करूँगा।"

मगध महामात्य का आसन उसके लिए रिक्त होने को है—समुद्रदत्त इस प्रसंग को सुनते ही बाँसों ऊपर चढ़ जाता। उसने कहा—"महाराज! मगध का महामंत्री मैं बनूँगा—इसका वचन युवराज अजातशत्रु ने भी मुझे दिया है।"

६

"युवराज ! मेरी ऋद्धि-सिद्धियों से आप अवगत नहीं। मेरी ऋद्धियों के चमत्कार से समस्त साम्राज्य हिल उठेगा।"

"गुरुवर्य ! मैं आपका आभार मानता हूँ। वैसे ही मगध पर—विशेषतः मुझ पर आपकी विशेष कृपा है।"

"तो, महाराज सत्ता हस्तान्तरित करने को कदापि तत्पर नहीं, क्यों राजकुमार ?"

"हः, गुरुदेव आप भी क्या बात कहते हैं ! क्या वह कार्य इतना सरल है ? आप तो जानते ही हैं—मेरे राज्य-प्राप्ति में कितनी बाधायें हैं ! उनमें हमारी विमाता—ही क्या कम है ? काशी प्रान्त की आय मगध में क्या आती है—उन्होंने सम्राट् को ही उसके प्रभाव से क्रय कर रक्खा है ! एवं महामात्य वर्षकार !"

"वर्षकार ! वह व्यर्थ की बात है। वर्षकार बिम्बसार या किसी का भक्त नहीं। वह सत्ता और राजमुकुट का उपासक है। वह प्रत्येक सत्ताधारी पर उतनी ही आस्था करेगा जितनी आज वह बिम्बसार पर रखता है। वह तुम्हारा उससे अधिक सम्मान कर सकता है। वह नीतिज्ञ है प्रेम-पुजारी नहीं।"

"किन्तु, वह मेरी ओर से अत्यधिक सतर्क है।"

"स्वाभाविक है ! अन्त तक रहेगा और बाहुबल से जब सत्ता ले लोगे तो उसी पल वह तुम्हारा दासानुदास हो जावेगा।"

"यह काशी की आय…."

"अब तुम्हें मिलनी चाहिये। तुम्हारी माता कहाँ है ?"

"चलिये—वहीं चलता हूँ।"

"और जो एक विशेष कारण है उस ओर तुम्हारा ध्यान ही नहीं जाता। वह श्रमण गौतम बुद्ध ! बिम्बसार उसके कितने भक्त हैं ? वह कब

चाहेगा कि पुत्र राज्य-सिंहासन पर विराजे। वह जानता है कि चेलना और अजातशत्रु दोनों उसके मत-विरोधी हैं। यह सारा मगध जो बौद्ध हो रहा है···यही मूलतः तुम्हारे राज्य-प्राप्ति में बाधक होगा। अनन्तर भी यह धर्म ही तुम्हारे शासन को व्याघात देगा," कहते हुए देवदत्त उठ खड़ा हुआ।

तथागत भगवान् बुद्ध का परम शत्रु देवदत्त एक ओर मगध-विग्रह कराकर अजातशत्रु को राज्य-सत्ता दिलाने को आतुर था। इस प्रकार वह मगध के विशाल साम्राज्य के राजगुरु पद पर आसीन होना चाहता था और इसी हेतु अपने धार्मिक क्षेत्र के साथ-साथ राजनैतिक कूटनीतियों में व्यस्त हो रहा था। दूसरी ओर बुद्ध का विरोध करने के लिए उसने एक पृथक् संघ की स्थापना की थी जिसके द्वारा वह बौद्ध मत का खुलकर विरोध व खंडन कर रहा था।

× × ×

"महाराज इसका रक्त तो पानी होगया है। इसमें वह उत्तेजना ही नहीं जिसके द्वारा राज्य-सत्ता प्राप्त कर सम्राट् बन सके।" चेलना ने स्वर्ण पर्यंक पर सुस्थिर होकर बैठते हुए कहा।

उस समय देवदत्त मगध-साम्राज्य की साम्राज्ञी चेलना के विश्राम-कक्ष में स्वर्ण-पीठिका पर बैठा हुआ था। निकट ही दूसरी पीठिका पर उसका पट्ट-शिष्य समुद्रदत्त अति गम्भीर मुद्रा में विराजमान था। युवराज अजातशत्रु अपने स्वर्ण-रत्न-मण्डित राजसी वेश में—माता के पर्यंक पर ही पायताने की ओर बैठ गया था। चतुर्दिक् सोने-चाँदी की वस्तुएँ—चौकियाँ, पीठिकायें रक्खी हुई थीं। आदेश-प्राप्ति के हेतु दो यवन-सुन्दरियाँ दासी-रूप में पर्यंक के निकट खड़ी थी।

"वह सर्वथा स्वाभाविक है साम्राज्ञी! महाभारत में युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन को भी इसी प्रकार की विमुख-भावनायें जागृत हुई थीं तब कृष्ण ने अर्जुन को कर्तव्योन्मुख किया था। कर्म-क्षेत्र में प्रविष्ट होने के पूर्व यदि युवराज अजातशत्रु में किंचित् दुर्बलता विद्यमान है तो उन्हें वह त्यागना

चाहिये ! अनुकूल समय का लाभ उठाना सर्वथा युक्ति-संगत है। आप निश्चिन्त रहें चेलना-देवी, मैं युवराज की गति-विधियों का संचालन-सूत्र अपने हाथ में लूँगा। समय-समय पर इनको कर्तव्योन्मुख करूंगा," कहकर गर्वित भाव-भंगिमा सहित देवदत्त ने पीठिका के पृष्ठ-भाग का सहारा ले लिया।

भृकुटि में बल डाल चेलना ने कहा—"आपने सुना वह बुद्ध शीघ्र ही राजगृह आने वाला है।"

"मुझे ज्ञात है। उसका पर्याप्त प्रबन्ध मैं कर चुका हूँ," तब इधर-उधर देखकर देवदत्त मौन हो रहा।

चेलना ने भाव समझकर दोनों दासियों को चले जाने का आदेश दिया।

देवदत्त ने पुनः कहा—"राजगृह पहुँचते-पहुँचते उसका मृत्यु-समाचार ही यहाँ पहुँचेगा।"

चेलना मुस्कराई। समुद्रदत्त अविचल बैठा रहा। आजतशत्रु ने एक बार मुदित नेत्रों से देवदत्त की और देखा और दृष्टि पर्यंक के स्थूण पर टिका ली। देवदत्त के नेत्रों में जैसे विजय की ज्योति चमक रही थी।

७

"क्यों री ! मल्लिका ! अब बुलाने से भी नहीं आती ! कल शिविका लौटाल दी," शक्तिमती ने सामने की स्वर्ण-पीठिका पर बैठने के हेतु उँगली से संकेत देते हुए कहा ।

"माँ, किंचित् अस्वस्थ थी एवं मैंने विचार किया कल वसन्तोत्सव है तभी आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगी," सहास्य मल्लिका ने शक्तिमती को उत्तर दिया । उस समय मल्लिका का दुग्ध-धवल रूप खिलखिला रहा था । उसने आज पीत-वसन धारण कर रक्खे थे । वक्ष पर कसा रक्त कंचुक वस्त्र पीछे मेरुदण्ड तक फैलकर कन्धे पर पड़े पीत रंग के झीने उत्तरीय से झाँककर उल्लसित यौवन की उद्विग्नता को स्पष्टत: प्रकट कर रहा था । नीवि-बंध से नीचे गहरे रंग का शाटक कदली-स्तम्भ सी सुचिक्कण जंघाओं को छिपाये था । मल्लिका की रूप-राशि द्रष्टा को आप्यायित कर वासन्ती-वेश में वसन्तोत्सव के उत्साह भरे अवसर पर प्रमाद भर लाने को आतुर थी ।

तभी शक्तिमती ने अपने कंठ से मुक्ता-माल उतारकर मल्लिका की ओर उछाल दी—"ले पहन ।"

अपनी सुगोल बाहों को पसारकर मल्लिका ने मुक्ता-माल हाथ में लेते हुए कहा—"कृतज्ञ हुई सम्राज्ञी ! किन्तु···।"

"सावधान ! यदि किंचित् भी किन्तु-परन्तु की, तो । इधर तू बड़ी-बूढ़ी होती जा रही है ।"

मल्लिका के सुललित नेत्र भूमि पर केन्द्रित हो गये । वह एक पल को विचार-मग्न हो गई । उसके मस्तिष्क में उस दिन के उस प्रसंग का स्मरण हो आया—देवालय में—विडुभ का वह व्यवहार···। उसका ध्यान कर, इधर मल्लिका अनेक बार गम्भीर हो—कुछ सोचने लगती थी ।

अनायास—"माँ···," कहते-कहते विड्डभ ने—शक्तिमती के विश्राम-कक्ष में प्रवेश किया। निमिष-मात्र में उसने नख-शिख तक—समक्ष बैठी मल्लिका के रूप को आत्मसात् किया और तब आत्म-विभोर-सा तुरन्त वहाँ से बाहर हो गया।

मल्लिका उसी भाँति प्रकृतिस्थ बैठी रही।

"इतना बड़ा हो गया—अभी भी इसका बालपन नहीं गया," कहते-कहते जैसे शक्तिमती का हृदय ममत्व से भर गया।

"क्यों री मल्लिका, विड्डभ तुझे भाता है," शक्तिमती ने कुछ रुक कर पुनः व्यक्त किया।

मल्लिका ने अपनी गर्दन तनिक ऊपर की। एक संशयात्मक दृष्टि उसने शक्तिमती पर फेंकी और पूर्ववत् मौन रहकर दृष्टि पुनः स्वर्ण-पर्यङ्क के पाये पर टिकाली। एक क्षण को उसके मन में आया—इस मुक्ता-माल को शक्तिमती के मुँह पर फेंककर उठ जाय किन्तु व्यवस्था में वह उसी भाँति शालीनता लपेटे बैठी रही।

कोशल की वैभवशालिनी राजधानी—श्रावस्ती में आज वसन्तोत्सव की सुषमा प्रसारित हो रही थी। जन-जन उत्साहित हो वासन्ती-वेश धारण किये यत्र-तत्र विचरण करते दिखाई दे रहे थे। स्त्रियाँ पीत वसन पहने अपने बालकों को रंग-बिरंगे कपड़े पहनाये, प्रमुदित-सीं, मार्ग-हाटों; अलिन्दों एवं गवाक्षों से झाँक कर वसन्त-वैभव में द्विगुणित उल्लास भर रही थीं।

चत्वर—हाट, मकानों के छज्जे, सार्वजनिक क्रीड़ा-स्थल—सर्वत्र वसन्त बिखरा पड़ रहा था। उनमें पीले गेंदे, गुलाबी-पुष्प-गुच्छों सहित हरी-बन्दनवारों, आम्र-मंजरियों, तोरणों, केले के खम्भों आदि से भरे पड़े थे। स्थान-स्थान पर दुंदुभि घोष, तुरही के स्वर एवं अन्य वाद्यों के तुमुल नाद से नगर भर में कोलाहल हो रहा था। नगर के बाह्य भाग में ऊँचे-ऊँचे गोपुरों पर प्रहरी-गण पीतल के तूर्ण से उद्घोष कर रहे थे व

हाथों में बड़े-बड़े भाले लिये पहरा दे रहे थे। नगर में अश्वारोही-सैनिक-प्रहरी व्यवस्था-हेतु इधर-उधर आते-जाते तथा वसन्तोत्सव में नगर-हाटों में घूमते नागरिकों के समूहों को सँभाल रहे थे।

सामन्तों एवं नगर सेट्ठियों के निवास विशेष रूप से सजाये गये थे। उनके मकानों से संगीत-ध्वनियाँ बाहर आ-आ कर वसन्त की मदभरी वायु में और अधिक मादकता बिखेर रही थीं। स्थान-स्थान पर संगीत-कार्यक्रम; मनहर वाद्य-यंत्रों से उत्पन्न स्वर-लहरी यत्र-तत्र फैल रही थी।

राज-प्रासाद में वसन्तोत्सव अधिक उत्साह से परिपूर्ण हो रहा था। राज-महालय के संगमरमर के विभिन्न प्रासादों में गेंदे, गुलाब की झालरें अंगूर-लतायें, वन्दनवारें, झूल रही थीं। प्रासाद की ऊँची-ऊँची गुम्बदों को रंग-बिरंगे फूलों एवं हरी झूमती डालों से सजाया गया था। प्रासाद के प्रवेश-द्वारों को केले के खम्भों, तोरणों, वन्दनवारों, बेलों आदि से सजाया गया था।

प्रासाद में रात्रि को संगीत का विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया था।

मध्याह्न में सम्राट् प्रसेनजित्त ने विशेष रूप से वार्षिक राज-सभा बुलाई थी। इस अवसर पर कोशल साम्राज्य के अधीन जितने भी छोटे-बड़े राज्य सम्मिलित थे उनके राजा, अधीन प्रदेशों के दंड-नायक, सेना के समस्त सेनापति, उपसेनापति, राज्य के विशिष्ट सामन्त, सेट्ठिजन, आमन्त्रण द्वारा आये श्रावस्ती के अन्यान्य नागरिक राजसभा में सम्मिलित हुए।

सम्राट् प्रसेनजित, युवराज विड्डभ, अन्य राजकुमार, महामात्य, अन्य मन्त्रीगण एवं अन्यान्य राजा, दंडनायक, सेनापति, सामन्त, सेट्ठिजन, नागरिक आदि यथास्थान विराज रहे थे। चारण सभी का परिचय दे रहे थे।

इस अवसर पर अधीनस्थ प्रदेशों के राजाओं ने प्रसेनजित को स्वर्ण-रत्न, एवं धन-राशि अर्पित की।

राज्य की ओर से सभी का सम्मान किया गया। सामन्तों, सेट्ठिजनों, नागरिकों को उपाधियाँ वितरित की गईं। सेनाध्यक्षों एवं विशिष्ट सैनिकों को उनके शौर्य, पराक्रम एवं विजयों पर—पारितोषिक एवं पदकों आदि से विभूषित किया गया।

इस प्रकार श्रावस्ती के सम्राट् प्रसेनजित की राज-सभा विशेष समारोहपूर्वक सम्पन्न हुई।

दूसरी ओर अन्तःपुर के प्रमदोद्यान में सम्राज्ञियों, राज-महिषियों, कुल-कामिनियों, सामन्त-पत्नियों, सेट्ठि-पत्नियों ने मिल-जुल कर वसन्तोत्सव मनाया। प्रमदोद्यान की पुष्प-क्यारियाँ कामिनियों के सौन्दर्य से और अधिक सुषमा-संवर्धित हो रही थीं। प्रमदोद्यान में स्थान-स्थान पर पड़े झूलों पर राज-रमणियाँ झूल-झूल कर मादक आभा बिखेर रही थीं। रास-रंग में मदमत्त हो रही थीं। वे नाना प्रकार की संगीत-ध्वनियाँ गुनगुना रही थीं। हँस रही थीं—किलकिला रही थीं। विचित्र समागम था।

शक्तिमती निरन्तर मल्लिका को साथ लिये निमन्त्रित महिलाओं से मिल-जुल रही थी। मल्लिका हैरान थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वस्तुतः प्रसेनजित की पट्टरानी शक्तिमती उस पर इतनी कृपालु क्यों हैं? वह नीरस हास सहित सम्पूर्ण समारोह भर—शक्तिमती का अनुगमन कर इधर-उधर फिरती रही।

अन्ततः संध्या से कुछ पूर्व प्रमदोद्यान का प्रमुदित-वसन्तोत्सव हास-उल्लास सहित विसर्जित हुआ।

रात्रि में समस्त श्रावस्ती में दीपावली मनाई गई। राजमहालय असंख्य दीपमालाओं से जगमगा उठा।

वसन्तोत्सव के अवसर पर आयोजित विशेष संगीत समारोह प्रसेनजित के मुख्य प्रासाद के आस्थानागार में प्रारम्भ हुआ। इस समय नृत्य व संगीत कार्यक्रम में बहुसंख्यक नागरिकों एवं सभी राजाओं, सामन्तों आदि ने भाग लिया।

एक स्थल पर स्त्रियाँ भी बैठकर समारोह में भाग ले रही थीं।

काशी मूलतः कोशल के आधीन थी। किन्तु प्रसेनजित ने अपनी बहन कोशल देवी का मगध के सम्राट् बिम्बसार के साथ राजनीतिक-विवाह कर काशी प्रान्त मगध को दहेज में दे दिया था, जिससे एक लाख रुपयों से भी अधिक की वार्षिक आय मगध को प्राप्त होती थी।

अस्तु, इस अवसर पर आकर काशी की प्रसिद्ध वारविलासिनी वारांगनाओं ने संगीत व नृत्य कार्यक्रम में रस-प्लावन कर रसज्ञ समाज को ओत-प्रोत किया।

विशेष प्रयत्न करने पर भी मल्लिका अपने घर न जा सकी। शक्तिमती के विशेष अनुरोध पर उसे रुकना पड़ा।

रात्रि में अधिक विलम्ब से संगीत-समारोह विसर्जित हुआ। सभी लोगों ने स्व-गृहों को प्रस्थान किया। अतिथि राजाओं को आदर-सहित आतिथ्य-प्रासाद में ले जाया गया।

राज-महिषियाँ अपने-अपने प्रासादों की ओर उन्मुख हुईं। शक्तिमती व मल्लिका के गठबन्धन की चर्चा की फुसफुसाहट कुछेक रानियों के मुखों पर बनी रही।

× × ×

प्रथम तो शक्तिमती ने अनुरोध किया कि मल्लिका इस विशेष रात्रि में घर जाकर क्या करेगी किन्तु अब मल्लिका न मानी और जाने को प्रस्तुत हुई।

शक्तिमती के प्रासाद के बाह्य प्रांगण के बाह्य प्रकोष्ठ में एक रथ पूर्व से ही मल्लिका की प्रतीक्षा में खड़ा था। शक्तिमती के आदेश पर मल्लिका उसी पर जा बैठी।

सारथी ने विशेष प्रक्रिया सहित रथ के अश्वों को वायु में छोड़ दिया। दूर-दूर तक दीपावली के प्रकाश के मध्य से लेकर रथ राज-मार्ग में दौड़ रहा था। स्वरूपवती मल्लिका का सुकोमल गात रथ-चालन के धक्कों से हिल-डुल रहा था किन्तु उसका मस्तिष्क व नेत्र केन्द्रित थे

उसकी भृकुटि अनेक बार ऊपर उठती, गिरती थी किन्तु उसके सुविशाल नेत्र पीछे छूटती भूमि पर टिके हुए थे।

अनायास उसने घूमकर देखा! सारथी सामने मुख किए रथ-संचालन कर रहा था। उसका वह बहुमूल्य राजसी-वेश देखकर मल्लिका को कुछ संशय हुआ किन्तु वह पुनः अपने विचारों में लीन हो गई। प्रातःकाल के कुछ पश्चात् ही वह राज-प्रासाद में पहुँच गई थी। तब से सम्पूर्ण दिवस और अब इस अर्ध-रात्रि के पश्चात् इतने दीर्घकाल के अनन्तर वह घर जा रही थी! एक तो उसे विशेष चिन्ता माँ की हो रही थी। घर पर माँ यों एकान्त में उसकी प्रतीक्षा करते-करते थक गई होंगी। उसे अनायास माँ का स्मरण कर दया आ गई व उसके नेत्र सजल हो आये। रेशमी-उत्तरीय के छोर से उसने ढलकते मोतियों को सुखा लिया। तब उसे शक्तिमती द्वारा प्रदत्त उस बहुमूल्य मुक्ता-माल का स्मरण हो आया। "क्यों री विड्डभ तुझे भाता है?"—का ध्यान कर उसमें तुरन्त रोष भर आया। और उसके अनन्तर शक्तिमती की वह सब आत्मीयता-प्रदर्शन का विचित्र-सा व्यवहार। तत्पश्चात् व्यस्तता एवं यह रात्रि-संगीत। संगीत एवं नृत्य से उसको कितना मोह है। वह स्वयं उसकी मर्मज्ञा है। किन्तु एक क्षण को भी उसका मन वहाँ न लगा। चलते समय भी शक्तिमती उसे आने को मना कर रही थी—यह सब क्या है? वह सच-मुच हैरान थी। उसे लग रहा था माँ-बेटे मिलकर उसे किसी विशेष मन्तव्य सहित घेर रहे हैं।

अब रथ प्रकाश से अन्धकार में दौड़ने लगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था—प्रासाद से उसके घर का मार्ग तो इतना लम्बा नहीं; तब यह रथ किधर जा रहा है? तल्लीनता से अनायास उसकी तन्द्रा टूटी और तीव्र स्वर में उसने प्रश्न किया—"ऐ! किधर चल रहे हो?"

कोई उत्तर न पाकर मल्लिका कुछ शंकित हुई। उसने पुनः कड़ककर कहा—"रथ तुरन्त रोक दो!"

रथ रुक गया।

"तुम जानते नहीं मुझे किधर जाना है ?"

"जानता हूँ।"

"वहाँ इसी मार्ग से जाया जावेगा ?"

"इससे सुगम मार्ग और कौनसा होगा ?"

"ओ ! युवराज का स्वर—मैं समझ रही थी। किन्तु यह अनधिकृत है, युवराज ! सर्वथा अनुचित ! यह आपके लिए अशोभनीय है।"

विड्डभ के हाथों में रथ की डोरी थी ! रथ मार्ग से किनारे पर रुका खड़ा था। अश्व वेग से दौड़ने के अनन्तर विश्राम से प्रसन्न होकर—हाँफते हुए भी—हिनहिना रहे थे। अब विड्डभ किंचित् घूमकर मल्लिका की ओर हो गया। मन्द स्वर में वह कह गया—"वास्तव में आपके गृह का मार्ग मुझे ज्ञात नहीं······।"

विड्डभ को अब ध्यान हो रहा था उसने पुनः असावधानी से कार्य कर डाला।

तत्क्षण तीक्ष्ण स्वर में मल्लिका ने कहा—"इस अज्ञातावस्था में कोई कार्य कर उठाना कितना हानिकर हो सकता है—क्या राजकुमार को मुझे यह बताने की आवश्यकता होगी ?"

"मुझे क्षमा करें मल्लिका देवी ! मेरा अभिप्राय कुछ विपरीत नहीं," कहकर विड्डभ ने उस नीरव अन्धकार में ही मल्लिका के कुमारिल यौवन व रूप को निरखने का प्रयास करना चाहा। उस समय वह वासन्ती वेश श्वेत-शुभ्र-सा प्रतीत हो रहा था। कंठ में मुक्ता-माल दीपित थी। स्वयं मल्लिका के गौरांग से वहाँ ऐसा भान हो रहा था जैसे कोई स्वच्छ-धवल अप्सरा स्वर्ग से—रथ-सहित—भूमि पर अवतरित हुई है।

"व्यक्ति का परीक्षण उसके कार्यों से होता है। शब्दों की मिथ्या प्रवंचना सदैव उपेक्षणीय होती है। अपने अव्यवहार्य को वाक्-जाल से मत ढांकिये।"

"मैं पुनर्वार क्षमा-प्रार्थी हूँ······"

"अनेक अवसरों पर क्षमा-दान भी दोष को प्रश्रय दान करता है।"

"मैं प्रार्थना करता हूँ इस स्थिति का संशोधन कीजिये।"

"इस अन्धकार में मुझे तो अब यह भी ज्ञात नहीं मैं कहाँ हूँ ? मार्ग किधर है ? न जाने कितना आगे निकल आये हैं ?"

मल्लिका के इस कथन पर विड्डभ मुस्कराया किन्तु यदि वह मुस्कराहट मल्लिका देख लेती तो उबल पड़ती। किन्तु विड्डभ इस कथन में श्लेष का आरोप करना चाहता था। वह कहना चाहता था—"मेरे लिए यह स्थिति सर्वथा अनुकूल है।" किन्तु वस्तुतः वह मल्लिका से भयभीत हो रहा था। वह सचमुच मल्लिका पर, बलात्, कोई स्थिति आरोपित नहीं करना चाहता था। उसकी रागमयी भावना में निश्छलता थी किन्तु कार्य वह मूर्खतापूर्ण कर उठता था।

"तो अब मैं इस स्थिति में हूँ कि आप मेरा मार्ग-प्रदर्शन करें।"

मल्लिका ने सोचा—एक तमाचा इस उद्दण्ड राजकुमार के मुख पर लगाऊँ और कहूँ—रथ को वापस ले चल वहीं जहाँ से लाया था। तब तुझे और तेरी माँ को बताऊँगी—असंख्य लोगों के मध्य कि श्रावस्ती की इस समृद्धि में ऐसे निम्नतर रस-लोलुप भी विराजते हैं किन्तु मल्लिका में साहस सहित सहनशक्ति भी यथेष्ट थी। उसने अपने को सरल किया और कहा—"मुझे स्वयं कुछ ज्ञात नहीं। हम स्त्रियाँ—परिकोटरों में बन्द रहने वालीं—इस उन्मुक्त मार्ग को क्या जानें ?"

एक पल रुककर मल्लिका ने पुनः व्यक्त किया—"रथ लौटा-लिये। प्रकाश पाने पर मार्ग-दर्शन होना सम्भव है।"

वह रात्रि, मल्लिका ने खेद व ग्लानिसहित, सिसकियाँ भरते हुए, माँ से लिपटकर व्यतीत कर दी।

प्रभात हो आया! गवाक्षों, अलिन्दों, गोपुरों, प्राचीरों आदि पर दिनकर की स्वर्ण-किरणें भर आईं। नील-गगन के नीचे श्रावस्ती के जन-जन कार्य-रत हो गये। तभी एक पथिक मल्लिका के घर के द्वार पर खड़ा एक व्यक्ति से कुछ पूछ रहा था। मल्लिका ने अलिन्द से झाँककर देखा—वह व्यक्ति नितान्त अपरिचित था। वेष-भूषा में भी वह श्रावस्ती का न होकर अन्य-देशीय प्रतीत हो रहा था। साथ ही जिस व्यक्ति से वह कुछ पूछ रहा था उसके उत्तर में श्रावस्ती का वह व्यक्ति उँगली से मल्लिका के घर की ओर ही संकेत दे रहा था।

तुरन्त उस आगन्तुक ने द्वार पर एक दस्तक दी।

यों मल्लिका तुरन्त जाकर द्वार खोल देती। किन्तु इधर की कुछ स्वानुभूतियों एवं गतरात्रि की घटना के पश्चात्ताप में वह तुरन्त माँ के पास जाकर बोली—"माँ, कोई द्वार खटखटा रहा है।"

"कौन है?" कहकर वृद्ध एवं जर्जर माँ एक स्फूर्ति सहित उठी और बाहर अलिन्द से आकर झाँकने लगी। नवागन्तुक को पहचानते हुए उसने तुरन्त जाकर द्वार खोल दिया।

उस दिवस वह व्यक्ति मल्लिका के यहाँ आतिथ्य-ग्रहण कर संध्या समय चला गया। इतने समय उसने एकान्त में अनेक बार मल्लिका की माँ से वार्तालाप किया। माँ प्रारम्भ से अन्त तक एवं उसके जाने के अनन्तर भी बड़ी प्रसन्न बनी रहीं।

मल्लिका ने अन्ततः जिज्ञासा शान्त करने के हेतु माँ से प्रश्न किया—"माँ, यह कौन थे? कहाँ से पधारे थे?"

"कुशीनारा से । मल्ल-बंधुल के यहाँ से ।"

"माँ, तुम उनको जानती हो ?"

"ले पगली ! मैं बंधुल को न जानूंगी ।"

मल्लिका के नेत्र ज्यों सतेज हो आये । उनमें एक अन्तर्ज्योति प्रकट हो आई । उसका हृदय ज्यों उल्लसित हो उठा ! 'तो माँ, मल्ल-बंधुल को जानती हैं ।' इस विचार में वह विलम्ब तक, प्रमुदित सी, पर्यंक पर लेटी रही ।

"देवी वसुमित्रा ने क्या उत्तर दिया भानुदत्त ?"

"वृद्धा मातेश्वरी अत्यधिक प्रसन्न हुईं । उन्होंने कहा—"यह मेरे जीवन का परम सौभाग्य है । इसी अन्तिम अभिलाषा को पूर्ण कर मैं पति के भार से मुक्त हो जाऊँगी और तब शान्ति से मृत्यु का आनन्द प्राप्त कर सकूँगी ।"

"उचित ही है । किन्तु इधर श्रावस्ती से जो समाचार आ रहे थे वे चिन्ता उत्पन्न कर रहे थे ।"

"वैसा कुछ नहीं है । मैंने दो दिन रहकर वह सब भी ज्ञात किया है । मैं उपसेनाध्यक्ष उपतिष्य के यहाँ ही अतिथि था । उनकी कन्या माध्वी—मल्लिका देवी की अनन्य-सखि है ! उससे ही सब ज्ञात हुआ । मल्लिका देवी उस सब प्रसंग से स्वयं अत्यधिक त्रस्त हैं ।"

"यह ठीक है । उस गुण-शीला से मैं वैसी ही आशा करता हूँ ।"

"मल्लिका देवी ने अनन्य-रूप पाया है ।

"वैसे ही गुण भी," बंधुल ने प्रकट किया ।

कुछ रुककर मल्ल-बंधुल ने प्रश्न किया—"अब तो देवी वसुमित्रा अति क्षीण हो गई होंगी ?"

"हाँ, बन्धुल अत्यन्त जर्जर हो गई हैं, वे । किन्तु उनके मुख पर वैसा ही तेज विराजता है ।"

"सो क्यों नहीं । अन्ततः वे हैं तो सामन्त देवधर्मा की पत्नी ही ।

किन्तु उन्होंने अपने यौवन-काल में बड़े कष्ट सहन किये हैं। उनके पाँच लड़के युद्ध-क्षेत्र में ही हत हुए। तब उन्हें वैधव्य कष्ट भी प्राप्त हुआ। अब उनकी एकमात्र आशा मल्लिका ही तो है। तो···देवी ने और कुछ कहा ?"

"यही कि महाराज से अनुमति लेनी होगी जिसे वे स्वयं पूर्ण कर लेंगी। उन्होंने यह भी कहा कि उस ओर से आप निश्चिन्त रहें। वे कह रही थीं कि महाराज अनेक बार स्वयं उनके घर पर जाकर उनका विशेष ध्यान रखते हैं। वे अनेक बार प्रसंगवश कह चुके हैं—'अब मल्लिका को उपयुक्त पात्र को सौंप देना चाहिए।'

"ठीक ही है—सामन्त देवधर्मा की मृत्यु के अनन्तर महाराज महाकोशल का देवी वसुमित्रा पर वैयक्तिक-निरीक्षण भार था। सामन्त देवधर्मा महाराज महाकोशल के अभिन्नतम मित्र थे और अब स्वाभाविक है—कर्तव्य भी कि प्रसेनजित उस भार को पूर्ण करें।"

"उचित ही है," भानुदत्त ने कहा—"अब जाऊँगा; विश्राम करूँगा ! तुम्हें तो···और मुझे क्या मिला ?"

मल्ल बंधुल व भानुदत्त उच्च स्वर में विलम्ब तक हँसते रहे। तभी किंचित् गम्भीर होकर बंधुल ने कहा—"तो देवी वसुमित्रा ने अभी अपने पति के वचन की बात अव्यक्त ही रक्खी है।"

"ओ ! बंधुल मैं क्या कहूँ ? इस सब प्रसंग से वे कितनी प्रसन्न हुईं। वस्तुतः वे कह रही थीं— "मैं बंधुल की ओर से बड़ी निराश हो चुकी थी। बंधुल जिस उच्च-शिखर पर पहुँच चुका है उसके पश्चात् मैं सोचती थी—बंधुल क्यों मल्लिका को अँगीकार करेगा ? यदि सामन्त होते तो क्या मल्लिका अब तक अविवाहिता ही बनी रहती ? किन्तु बन्धुल को हमारा स्मरण है—इससे बड़ा सौभाग्य, मेरा और क्या हो सकता है ?"

"भानुदत्त ! अब मुझे खेद हो रहा है। मुझे देवी के यहाँ समय-समय पर जाकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये थी। किन्तु—मैं

वास्तव में शील-संकोच वश ही न जा पाया। वहाँ जाने का ध्यान कर मुझे लज्जा आ घेरती। प्रथम तो मैं तक्षशिला में ही इतने दीर्घकाल तक रहा, तदनन्तर यहाँ दण्डनायक ने मुझे इतना व्यस्त कर लिया कि इस ओर ध्यान ही न गया। अब—उस दिन प्रसंगवश यह निश्चय करना पड़ा कि देवी के पास तुम्हें भेजूँ। अब मैं स्वयं जाकर देवी वसुमित्रा से क्षमा-याचना करूँगा।"

"इस सब में ऐसे अप्सरि-रूप को भूल गये, मूर्ख !"

"मित्र ! सच ! अब तो और निखार आया होगा ?"

"कहो तो दण्डनायक से अवकाश मैं दिला दूँ।"

"आभार मानूँगा।"

६

प्राचीन जनपदों में मल्लसंघ का जो विशिष्ट स्थान था उसी भाँति उसमें उस काल का सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यक्ति था—बंधुल-मल्ल ! बंधुल-मल्ल की वीरता, शौर्य एवं पराक्रम सर्व-विदित थे। वह स्वभाव का अत्यन्त सरल था। वह मल्लों की पावा व कुशीनारा दोनों में ही प्रशंसा का एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित किये हुए था। कुशीनारा के दण्डनायक की उस पर विशेष कृपा थी। एक प्रकार से उसने बंधुल को अपना अन्तरङ्ग सहायक बना लिया था। कुशीनारा में रहकर मल्ल-बंधुल ने वीरता के अद्भुत प्रदर्शन किये। दण्डनायक के संकेतमात्र पर वह भयानक कार्यों में जूझता रहा। सब में सफलता प्राप्त कर वह विजय-नाद सहित लौटता। इस प्रकार जन-जन में वह प्रिय होगया। उसके बढ़ते हुए यश से उसी के स्वजातीय अन्य मल्ल उससे डाह करते थे। कुशीनारा एवं पावा के सम्भ्रान्त मल्लों में उसके प्रति भयंकर ईर्ष्या एवं द्वेष विद्यमान थे। गणपति की आस्था एवं सराहना के विपरीत भी गण-संस्था का उस पर निरन्तर सन्देह बना रहा। सभी उससे डरते थे कि कहीं वह मल्ल-संघ का एकच्छत्र स्वामी न बन जावे। मल्लों की गण-संस्था का जब-जब भी अधिवेशन हुआ तब-तब गरम सदस्यों ने ईर्षावश बन्धुल मल्ल को विशिष्ट-पद प्राप्त नहीं होने दिया। उप-सेनापति का एक निम्न-पद भी बंधुल-मल्ल को इसी द्वेष के कारण प्राप्त न हो सका। इसी सब से बंधुल मन में अत्यधिक क्षुब्ध बना रहता था।

और मनुष्य अवसाद के क्षणों में अतीत को विशेष रूप से पुकारता है। तब उस विपन्नावस्था में उसे किसी प्रकार सुख-सन्तोष की कामना बलवती होती है। दूसरी ओर उस विषाद में प्रतिक्रियावश वह सब कुछ विध्वंस कर डालने की भी सोच जाता है। किन्तु जहाँ विवेक का संतुलन बना रहता है वहाँ अनियन्त्रण की डोर सधी रहती है।

बंधुल ने अनेक बार विचार किया कि क्यों न वह मल्लों की उस ईर्षालु-भावना को विदीर्ण कर दे, उनके संघ को टूक-टूक कर दे। उसमें पर्याप्त शक्ति है कि वह मल्ल-संघ को ध्वंस करके वहाँ का शासक बने। यही नहीं वह इस बलवती अभिलाषा को पूर्ण करना चाहता था कि मल्ल-संघ को मगध के आक्रमणों और अनाचारों से सदैव के लिए मुक्त कर दे किन्तु मल्लों के द्वेष के कारण वह अब अत्यधिक दुःखी हो गया था। उसके यशोगान की चर्चा कुशीनारा के बाहर उससे भी अधिक थी किन्तु उससे वह प्रसन्न न था।

अन्ततः उसे ध्यान आया मल्लिका का—अपनी वाग्दत्ता स्त्री का। ओह! ऐसा विस्मरण; इतनी व्यस्तता; यशोकीर्ति की इतनी मदान्धता वह ध्यान ही न कर सका। तक्षशिला में वह व्यायाम से अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाता रहा। बाहुओं के भुजदण्डों को फड़काता रहा। बाण के सहस्रों कौतुक करता रहा किन्तु उस···भानुदत्त कहता था—अप्सरि-रूप को भूल ही गया।

उसे याद आया वह दिवस—जब तक्षशिला से लौटकर श्रावस्ती होता हुआ पावा आ रहा था। श्रावस्ती के बाह्य-प्राचीर में प्रवेश करते ही उसे सन्देश मिला—उसके पिता का निर्देश—"श्रावस्ती के परम प्रसिद्ध सामन्त देवधर्मा से भेंट करते हुए—पावा को प्रस्थान करना।"

तदनुसार वह समृद्धिशाली सामन्त देवधर्मा के निवास पर पहुँचा। उसके बल-पराक्रम से प्रभावित होकर ही सामन्त ने अपनी कन्या मल्लिका का विवाह मुझसे करने का वचन दिया। तब मल्लिका आयु में मुझसे बहुत छोटी थी। अपनी आयु का असाम्य मुझे अखर रहा था किन्तु उसमें मैंने अपने पिता की भी स्वीकृति जानकर उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

और अब तो मल्लिका—यौवन-रूप की नव विकसित कलिका, परम विदुषी, सुकुमारी, सुशीला···उसके हेतु तैयार बैठी है···तब वह

श्रावस्ती जावेगा। उन वृद्धा देवी वसुमित्रा के दर्शन करेगा....और....और मल्लिका की सुधामयी काया के भी दर्शन करेगा।

कुशीनारा की इस कर्कशता से तो वह उस सरसता को अपनाकर ही कृतकृत्य होगा।

× × ×

श्रावस्ती में मल्लिका ने यत्र-तत्र मल्ल-बंधुल के शौर्य-पराक्रम-बल की प्रशंसा सुनी थी। उस वीर का प्रसंग आने पर उसके हृदय में अनायास विनय एवं श्रद्धा के भाव उमड़ आते। उसने जाना कि वह इस काल सर्वजित् योद्धा है। उसने सुना—बाणविद्या में आज उसके कौशल को दूसरा नहीं पा सकता। महाभारत काल की कथाओं में जिस बाण-विद्या की इतनी प्रशंसा है वह मल्ल-बंधुल में प्रतिष्ठित हुई है। वह एक सेनानी ही नहीं प्रत्युत एक पूर्ण-पुरुष है। वह सर्वप्रिय है। तक्षशिला विश्वविद्यालय के डेढ़ हजार से भी ऊपर छात्रों में केवल बंधुल-मल्ल का नाम सर्वोपरि रहा है।

इस सबसे मल्लिका में अनायास उस वीर पुरुष के दर्शन की अभिलाषा जागृत हो आई।

उसे ज्ञात था—माँ बंधुल मल्ल को जानती हैं। तो मां—बंधुल मल्ल को बुला देंगी। तो वे निश्चित बुला देंगी। तब वह अवश्य उस सर्वत्र-प्रशंसित पुरुष के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करेगी।

उस दिन अनायास एक रथ सामन्त देवधर्मा के घर के सामने रुका। आस-पास के लोगों ने विशेष उत्सुकता से देखा।

तभी द्वार पर दस्तक पड़ी और अल्पकाल में ही द्वार खुल गया।

मल्लिका देखकर काँप गई—युवराज विडूभ! स्थिति न द्वार बन्द करने की थी, और न विडूभ को वर्जित करने की थी। न ही उसे अपने साथ लेकर एक क्षण को भी प्रोत्साहित करने की थी। तब मल्लिका

क्या करती ? उसने उपेक्षा में युवराज का अभिवादन भी नहीं किया। किन्तु स्वभाव की सरलता को वह त्याग न सकी। उस अलस-उपेक्षा में भी एक स्मित उसके ओठों पर बिखर गई। विडुभ ने अपने को धन्य माना।

अब मल्लिका आगे-आगे और कोशल का भावी अधिपति युवराज विडुभ उसके पीछे-पीछे—अनियन्त्रित, आतिथ्य-सत्कार से रहित—बढ़ चला।

मल्लिका सीधे माँ के विश्राम-कक्ष में जा पहुँची। जाते ही उसने कहा—"माँ—युवराज विडुभ पधारे हैं।"

"अहोभाग्य ! अहोभाग्य ! पधारिये युवराज !"—कहते हुए देवी वसुमित्रा ने विडुभ का सम्मान किया।

मल्लिका धीरे से विडुभ को माँ के निकट बैठालकर वहाँ से विलीन हो गई।

"कहिये युवराज ! महाराज तो प्रसन्न हैं ?"

"हाँ ! मातेश्वरी !"

"आपकी माता—शक्तिमती सम्राज्ञी तो स्वस्थ हैं ?"

"सब प्रसन्न हैं," ऊबकर विडुभ उत्तर तो देता जाता था किन्तु इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर देखता जाता था—मल्लिका किस कोने में उसकी प्रतीक्षा कर रही है। वस्तुतः विडुभ के गणों ने उसे सूचना दी थी कि सामन्त देवधर्मा के उस विशाल निवास-स्थान में मल्लिका एवं उसकी माँ केवल दो ही प्राणी रहते हैं। सामन्त की विधवा पत्नी नितान्त वृद्धा व जर्जर है। अतएव—विडुभ ने अपने प्रणय-प्रसार का वह स्थान सर्वथा उपयुक्त माना और साहस कर वह मल्लिका के यहाँ पधार गया।

अस्तु, जब विलम्ब तक मल्लिका सामने उपस्थित न हुई और वृद्धा वसुमित्रा ने विडुभ का पर्याप्त मस्तिष्क चाट लिया तो विडुभ तिलमिला

उठा। उसका पुरुषत्व जगा। वह भी अत्यधिक क्रुद्ध प्रकृति का व्यक्ति था। पूर्व तो उसने ध्यान किया—क्या घर आकर भी उसने कोई त्रुटि-पूर्ण कार्य कर डाला। तदनन्तर वह आवेश में आगया—यह तो उसका सर्वथा अपमान है। यह नारी-अहंकार वह सहन नहीं कर सकता। आज कुछ निर्णय करके ही वह मल्लिका के घर से विदा होगा।

तभी उसने देखा मल्लिका समवयस्क अनेक तरुणियों सहित उस ओर ही आ रही है। सभी अट्टहास करतीं, एक दूसरे को गुदगुदातीं, एक को दूसरे पर ढकेलतीं कोलाहल करती चली आरही हैं। मल्लिका भी सहर्ष उन सब का साथ दे रही है।

कक्ष के निकट आते ही देवी वसुमित्रा ने पुकारा—"बेटी! कौन-कौन आया है?"

"माँ, यह माध्वी, चित्रांगदा, सौमित्रा, अचला, मृगावती तथा नन्दिनी···।"

"अरे! ये सब आई हैं—इधर आओ तो बेटियो! देखो श्रावस्ती के भावी महाराज राजकुमार विडुभ यहाँ विराज रहे हैं।"

"सुना तो है। अब देखे लेते हैं," एक स्वर प्रकट हुआ।

"देखे क्या लेते हैं? कहो देख रहे हैं।"

"तो, माँ! हमको युवराज का सत्कार भली प्रकार करना चाहिये। है, न।" तीसरी रूपसी ने व्यक्त किया।

"मल्लिका तो इन्हें छोड़कर, इतना विलम्ब होगया, न जाने क्या करने लगी?" देवी वसुमित्रा ने सरल भाव से कहा। देवी वसुमित्रा ने अपने वैभव के अस्सी वसन्त अतीत की ओट में छिपा दिये थे। अब उनके कृश-शरीर पर स्थान-स्थान पर माँस की रेखाएँ खिच आई थीं। किन्तु उनके विशाल नेत्रों की कगारें, उच्च नासिका, उन्नत भाल, उभरे कन्धे उनके व्यतीत सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य को व्यक्त कर रहे थे। वे जीवन भर अत्यन्त मृदु, सरल निश्छल, सुसंयत बनी रहीं। वे परम विदुषी, पति-

परायणा एवं शौर्य, वीरत्व, पराक्रम की उपासिका रहीं। वीर-प्रसूती सामन्त-पत्नी के रूप में उन्होंने अपने पाँच पुत्रों को देश-हित में अर्पित कर दिया। अब उनकी प्रतिच्छाया के रूप में—पति की स्मृति का प्रसाद—मल्लिका उनकी आशाओं की असीम सीमा थी। उस पर उन्हें गर्व, परम स्नेह एवं अटूट विश्वास था।

अस्तु, तभी मल्लिका की एक सखि ने उत्तर दिया—"ठीक ही तो किया। युवराज अपने पितामह एवं पिता की परम्परा का निर्वाह करने के हेतु आपसे भेंट करने आये होंगे। मल्लिका से क्या प्रयोजन ?"

सभी बारम्बार उच्च स्वर में हँस देतीं।

युवराज विडुभ ने अब विचार किया—ये प्रयत्न करके मुझ पर ही व्यंग-कटाक्ष कर रही हैं ! वह घबड़ाया। साथ ही उसने अनुभव किया इस समूह में उसके आगमन का मन्तव्य भी क्या पूर्ण होगा और वह लज्जित-सा उठकर चल दिया।

× × ×

अत्यधिक अशान्ति में अब विडुभ के दिन कटने लगे। सब उतावली और असावधानी के प्रतिफल मल्लिका ने राजमहालय से एक प्रकार का सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। मल्लिका के राज-प्रासाद के आवागमन की समाप्ति से अब विडुभ का वह साहस भी जाता रहा कि वह स्वयं ही मल्लिका के घर जावे।

अन्ततः उसमें राजकुमार की दुर्वृत्तियाँ जागृत हुईं। उसने छल एवं बल-प्रयोग की योजनायें बनाना प्रारम्भ कीं। एक योजना के अनुसार उसने एक दिन एक दासी को रथ पर बैठाल कर भेजा भी कि वह मल्लिका को शक्तिमती का नाम लेकर बुला लावे और वह नगर के बाह्य कोटरे में स्थित कानन में प्रतीक्षा करता रहा। किन्तु रथ को रिक्त देखकर वह अत्यधिक उद्वेलित हुआ।

इधर मल्लिका ने प्रत्येक परिस्थिति का यत्न एवं साहसपूर्वक सामना करने का विचार दृढ़ कर लिया। इसी खींचतान में एक दिवस मल्ल-

बंधुल का अश्व सामन्त देवधर्मा के द्वार के बाहर आ लगा।

बंधुल जब तक्षशिला में विद्यार्थी था तब अनेक बार वह श्रावस्ती आता-जाता था। वहाँ उसके अनेक स्वजन एवं परिचित मित्र थे। किन्तु इधर चिरकाल से वह श्रावस्ती नहीं आया था अतः उसे वह बस्ती बड़ी नई-नई-सी प्रतीत हो रही थी। वह मार्ग भर सोचता रहा था कैसे साहस कर वह मल्लिका के यहाँ जावेगा। उसके से उद्‌भट वीर का अदम्य साहस इस प्रसंग को लेकर चूर्ण-विचूर्ण हो रहा था। तब उसने श्रावस्ती के अन्तर्प्राचीर में प्रवेश करने के उपरान्त ध्यान किया वह यों सीधा देवी वसुमित्रा के यहाँ नहीं जावेगा। पहले वह अपने किसी स्वजन को खोजकर वहाँ आतिथ्य-ग्रहण करेगा, तब किसी प्रकार वहाँ जाने की योजना बनावेगा। इस विचार को लेकर वह एक-दो स्थानों पर गया भी किन्तु इन गृहों की समस्त आकृतियाँ ही परिवर्तित दीख पड़ीं। उसे लगा इतने दीर्घ काल के पश्चात् न वह किसी को पहचान रहा है न उसे ही कोई पहचान पा रहा है। तब उस चिन्त्य स्थिति से तो सुगम यही है कि वह सीधा देवी वसुमित्रा के निवास पर ही जावे। वहाँ भानुदत्त के पहले आ जाने से भूमिका भी बन ही चुकी है और बंधुल वहाँ पहुँच गया। वहाँ पहुँचने में उसे कठिनाई न हुई क्योंकि सामन्त देवधर्मा के जीवन-काल में वह उनके यहाँ अनेक बार आता रहा है। सामन्त देवधर्मा एवं बंधुल के पिता—अति प्राचीन काल में तक्षशिला में सहपाठी भी रहे थे। अतः सामन्त परिवार से उसके परिवार का सम्बन्ध पर्याप्त था।

मल्ल-बंधुल को आया जान देवी वसुमित्रा की प्रसन्नता अपार थी। वीर मल्ल-बंधुल उसके घर आया है यह ध्यान कर मल्लिका का हृदय गद्गद् हो रहा था। वह सोच रही थी—कैसा सुयोग्य है जिसकी वह कामना करती थी, वह स्वतः ही प्रकट हो गया। मल्लिका ने बंधुल के विशाल व्यक्तित्व को हृदयंगम किया। उसके भरे हुए गौरांग में ठोस कुन्दन-सी कंचन-काया को देखा। उसने अन्तर्मन में उस देवरूप पुरुष को

विनत-भाव से नमस्कार किया।

मल्ल-बंधुल ने मल्लिका के मेनका-रूप के दर्शन किये। वह कृतकृत्य हो गया। कटि में उसका खड्ग लटक रहा था। उसे उस समय प्रतीत हुआ यह पुष्प-गुच्छों से भरी एक डंडी है जिससे वह सोच रहा है मल्लिका के अरुण कपोलों को दुलरा दे। बंधुल ने अपने भाग्य को सराहा—ऐसा अनिंद्य रूप—उत्कट यौवन।

और वह जिस गुरुतर कार्य के लिए आया था उसमें संलग्न हो गया। वह वहाँ एक दिवस ठहरा।

देवी वसुमित्रा एवं मल्लिका ने उसका अत्यधिक आदर सत्कार किया। देवी वसुमित्रा अत्यधिक गद्गद् थीं। मल्लिका विशेष मुदित थी एवं मल्ल-बंधुल परम पुलकित था। देवी वसुमित्रा एवं मल्ल-बंधुल को अपने-अपने हर्ष का कारण ज्ञात था किन्तु मल्लिका अज्ञातावस्था में ही वीर-प्रवर व्यक्ति के आतिथ्य एवं दर्शन-लाभ से हर्षाप्लावित थी। उसे अत्यन्त कौतूहल एवं विस्मय था कि माँ से बंधुल का इतना परिचय है। जैसे दोनों का ही अति-पूर्व परिचय हो। बंधुल ने आकर माँ के पैर छुये—उन्होंने उसे आकंठ-आशीर्वाद प्रेषित किये। बड़ी उमंग से माँ उससे वार्तालाप करती रहीं।

और बंधुल मल्लिका के हृदय में एक स्मृति छोड़कर स्वयं में एक पुलक—एक अतिरेक भर कर—देवी वसुमित्रा को सुखी करके चला गया।

सब व्यवस्था पूर्ण करके जब वह लौटा तो कुशीनारा का मार्ग उसे पुष्प-गुच्छों से भरा-भरा प्रतीत हुआ।

मगध एवं कोशल की ही भाँति प्रसिद्ध महाजनपद वत्स अपने वैभव के चरम उत्कर्ष पर था। कौशाम्बी इसकी राजधानी थी। वहाँ का शासक शतानीक एक प्रबल राजा थ शतानीक को—जैनियों चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर की मौसेरी बहन मृगावती जो लिच्छवि गणतन्त्र के प्रधान राजा चेटक की पुत्री थी—व्याही थी। शतानीक ने अपने साढ़ू चम्पाधिपति राजा दधिवाहन को मारकर चम्पा पर अधिकार कर लिया था।

चम्पाधिपति दधिवाहन को राजा चेटक की दूसरी पुत्री धारिणी व्याही थी।

अस्तु, इसी प्रतापी शासक शतानीक का पुत्र उदयन जब कौशाम्बी के राजसिंहासन पर बैठा तो इसने भी तत्कालीन भारतीय शासकों में प्रचलित बहुविवाह एवं राजनीतिक विवाह-परम्परा को निबाहा।

इन राजाओं को इस प्रकार के विवाहों में विभिन्न अनुभव होते। अनेक अवसरों पर इस प्रकार के विवाह-सम्बन्धों से युग-युग के आपसी मतभेद, वैमनस्य व झगड़े समाप्त हो जाते। एक दूसरे पर आक्रमण कर विजय-प्राप्ति के सुख अथवा पराजय के दुःसह दुःख की भावी आशा एवं आशंका समाप्त हो जाती। किन्तु प्रत्येक स्थिति में उसका दूसरा रूप भी समाविष्ट रहता है। दुःख के साथ सुख; सुख के साथ दुःख; जीवन के साथ मृत्यु और पुनः जीवन; आशा-निराशा; हर्ष-विषाद-हर्ष; जय-पराजय-जय···

अस्तु, एक ओर से निश्चिन्त होने पर दूसरे संकट प्रारम्भ हो जाते। प्रथम तो युद्ध-भय ही समूल नष्ट न होता। वैवाहिक सम्बन्ध होने के पश्चात् भी ये प्राचीन महाजनपद एक दूसरे से झगड़ते रहते। दूसरे विवाह करके ये जो पत्नियां लाते वे गृह-युद्ध प्रारम्भ कर अपने पितृ-

कुल की परम्परा को राज-महालयों में स्थापित कर देतीं।

यह तो होता कुलीन-राजकुमारियों के द्वारा। और जब इन राजाओं की इन्द्रिय-लोलुपता अपनी निम्नतर स्थिति में पहुँच जाती तो ये दासियों, दासी-पुत्रियों, नीच-कुलोत्पन्ना स्त्रियों के रूप-जाल में फँसकर उन्हें राज-महिषी पदों पर सुशोभित कर देते और तब वे वर्षाकाल की नदी की भाँति जब उछल कर चलतीं तो किनारे काटती चलतीं।

अन्ततः जब इन राज-महिषियों से उत्पन्न होते यशस्वी राजकुमार तो निश्चित उन्हें युवराज पद प्राप्त होता और तब पिता की राज्य-सत्ता"" किसी प्रकार छीनकर, झपट कर, विद्रोह कर, युद्ध कर, पिता की हत्या कर। इस प्रकार के रक्त-रंजित पृष्ठ भारतीय इतिहास में विशेषतः बुद्ध-काल में ही भरे पड़े हैं। ऐसे उदाहरण उस काल की रीति-नीति में परम्परा बन गये थे।

अस्तु, प्रतापी शतानीक के वैभव-सम्पन्न पुत्र उदयन के राजकाज संभालते ही उसने भी वे ही कार्य आरम्भ किये। यों राजा उदयन बड़ा नीतिज्ञ, कुशल शासक व कलाविद् था। उसकी कला-प्रियता तो सर्वत्र प्रसिद्ध थी। कहा तो यहाँ तक जाता था कि राजा उदयन के वीणा-वादन को तीन लोक में अद्वितीय समझा जाता था। वह वीणा बजाकर मत्त-गयन्दों को भी वशीभूत कर लेता था।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उदयन की एक जीवन-घटना से ही प्राप्त होता है जिसमें उसे बन्दी होना पड़ा किन्तु वहीं एक राजकुमारी से विवाह का सौभाग्य भी बन गया।

अवन्ति का राजा प्रद्योत बड़ा प्रबल शासक था। प्रथम तो वह स्वयं अवन्तिराज को मारकर गद्दी पर बैठा। तदनन्तर उसने अपने साम्राज्य-प्रसार में अनेक राज्य हस्तगत कर लिये। वत्स को जीतने की भी उसकी उत्कट अभिलाषा थी। किन्तु उदयन के प्रताप के समक्ष उसका उत्कर्ष दब जाता था। चिरकाल तक दोनों राज्यों में शीतयुद्ध चला।

अन्ततः अवन्तिराज चण्ड प्रद्योत ने युक्ति से कार्य किया। वह जानता था कि उदयन वीणा-वादन में तीन लोक में अद्वितीय है व उससे वह हाथियों को वश में कर लेता है, अतः उसने उदयन की सीमा पर एक नकली हाथी खड़ा कराया। उदयन जब इस हाथी को वश में करने गया तो इस हाथी के पेट से अनेक योद्धा निकल पड़े जो उदयन को बन्दी बनाकर उज्जैन ले गये।

उदयन को उज्जैन लाकर प्रद्योत ने नज़रबन्द कर दिया और उसे अपनी पुत्री को वीणा सिखाने का भार सौंपा। उसमें भी प्रद्योत ने चतुराई से कार्य किया। जब उदयन—प्रद्योत की पुत्री को वीणा सिखाता था तो बीच में एक पर्दा डाल दिया जाता था। प्रद्योत ने उदयन से तो यह कहा कि उसकी लड़की कुबड़ी है और पुत्री से यह कहा कि उसका शिक्षक अन्धा है। कार्यारम्भ हुआ। एक प्रसंग पर, आवेश में आकर उदयन ने उस लड़की को कुबड़ी कह दिया तो उस लड़की ने भी उसे अन्धा बनाया।

अन्ततः वे एक दूसरे से परिचित हुए और प्रगाढ़ प्रेम-पाश में आबद्ध हो गये।

उदयन का महामात्य यौगन्धरायण अपने काल का परम-प्रसिद्ध कूटनीति-विशारद था। उसने उज्जैन में चतुर्दिक् अपने चरों का जाल बिछा दिया और एक दिन उदयन व चण्ड प्रद्योत की पुत्री को उज्जैन से निकाल लिया। जब चण्ड प्रद्योत की पुत्री व उदयन का विवाह सम्पन्न हो गया तो चण्ड प्रद्योत ने भी इन दोनों को आशीर्वाद दिया और इस प्रकार अवन्ति एवं वत्स की चिर-शत्रुता मैत्री में परिणत हो गई।

× × ×

उदयन की दूसरी रानी मगध सम्राट् बिम्बसार की पुत्री पद्मावती थी। यह अजातशत्रु की बहन थी। अजातशत्रु रानी चेलना का पुत्र

था व पद्मावती कोशल देवी की पुत्री थी ।

मायके में रानी चेलना—पद्मा को एक आँख नहीं देखती थी । उसको यह शंका थी कि वत्स, मगध एवं कोशल तीन महाराज्यों के राजाओं, रानियों, महामात्यों एवं अन्य जनों का एक गठबन्धन है जिसकी धुरी है कोशल देवी और जिसकी डोर है पद्मावती । उसका ध्यान था कि ये सब मिलकर मगध-साम्राज्य को हड़पना चाहते हैं और अजातशत्रु को उसके शासनाधिकार से वंचित करना चाहते हैं । उसकी यह भी निश्चित धारणा थी कि इस कार्य में तथागत बुद्ध का सम्बल भी इन सबको प्राप्त है ।

वस्तुतः कोशलेश प्रसेनजित, मगध सम्राट् बिम्बसार एवं कौशाम्बी नरेश उदयन इन तीनों पर तथागत का पूर्ण प्रभाव था । तथागत बुद्ध के अहिंसा के उपदेश पर रानी चेलना सोचती थी वह अजातशत्रु को निर्बल बना कर शासन के हेतु अयोग्य बना देगा । उसका स्वप्न था कि वह मगध-सम्राट् अजातशत्रु की राजमाता के रूप में मगध राज-सिंहासन पर एकच्छत्र अधिकार करे । इसमें उसे तथागत बुद्ध के परम शत्रु देवदत्त ऐसे महत्त्वाकांक्षी की कुमन्त्रणाओं का दूषित प्रोत्साहन प्राप्त था ।

अस्तु, ये नरेश ही नहीं उनकी राजमहिषियां भी तथागत की परम उपासिका थीं । रानी कोशल देवी एवं पद्मावती बुद्ध की परम भक्त थीं ।

इसी कारण कौशाम्बी में पद्मावती को शत्रुणी-रूप में विद्वेषमयी मागन्धी के कष्ट भोगने पड़े ।

× × ×

"बेटी, बुद्ध ने मेरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया तो क्या हुआ । तेरे भी नक्षत्र ऐसे वैसे नहीं हैं । तू, राजमहिषी बनेगी, राजमहिषी...।"

और मागन्धी पिता के इस कथन पर इठलाने लगी । एक तो अपार रूप-यौवन, उस पर उस मद में राज-महिषी पद के स्वप्न की गरिमा । मागन्धी वयु में तैरने लगी ।

बुद्ध के तिरस्कार पर वह तिलमिला कर रह गई ।

वस्तुत: उन तथाकथित नक्षत्रों का प्रभाव अथवा सुयोग—विलासी एवं रसप्रिय कौशाम्बी नरेश उदयन की दृष्टि मागन्धी पर आसक्त हो गई । अल्प काल में ही ब्राह्मण कुमारी मागन्धी ने वत्सराज की राज-महिषी मर्यादा को प्राप्त कर लिया ।

उस त्रिलोक में अद्वितीय वीणावादक की कला मागन्धी के सौन्दर्य पर और निखार पा गई । एवं उस कला तथा सौन्दर्य के उपासक नरेश पर मागन्धी अपने रूप-भार को आरोपित कर दिवस-रात्रि विलास-वासना में लिप्त हो गई ।

शनैः-शनैः रूप-गर्विता मागन्धी ने अपने ऐन्द्रजालिक रूप-माधुर्य में जहाँ एक ओर उदयन को घेरा वहाँ अपने नारी-द्वेष का प्रचण्ड-रूप अपनी सह-पत्नियों पर भी भली प्रकार प्रकट किया ।

उदयन की दूसरी पत्नी मगध-राजकुमारी पद्मावती भगवान् बुद्ध की परम अनुगता थी । केवल यही कारण मागन्धी को पद्मावती के प्रति विद्वेष के हेतु पर्याप्त था । उस पर सह-पत्नी की ईर्षा । मागन्धी ने पद्मावती के प्रति रोष-प्रदर्शन की शान्त-लीलायें प्रारम्भ कर दीं ।

× × ×

उदयन स्वयं बुद्ध का भक्त था किन्तु तब मागन्धी का साहस तथागत भगवान् बुद्ध के विरुद्ध कुछ प्रकट करने का न हुआ किन्तु अब पद्मावती के प्रसंग को लेकर उसने उदयन के कान भरने आरम्भ कर दिये । इसमें उसने दो लाभ सोचे । प्रथम उदयन को बुद्ध के विरुद्ध करना, दूसरे पद्मावती के प्रति भी अनासक्त करना ।

और पुरुष नारी-रूप-यौवन की आसक्ति पर सृष्टि को तिलाञ्जलि देने को तत्पर रहता है । सुरा एवं सुन्दरी का उपासक भगवान् बुद्ध के सत्संग में जो कुछ ज्ञान-ध्यान प्राप्त करके आता—मागन्धी के एक भ्रू भंग पर न्योछावर कर देता । गौतम के प्रति सारी श्रद्धा-भक्ति रूप

की गागर में घोल देता।

"नहीं मागन्धी तुम्हारे रूप की मादकता से ही मैं पूर्णत: आप्यायित हूँ—अब यह माध्वीक मत दो· · ·नहीं मैं नहीं पिऊँगा· · ·नहीं· · ·नहीं।"

'मैं समझी फिर उस पाखण्डी का समागम हो गया, प्रतीत होता है। अभी क्या है ? वह तुम से मदिरा ही क्यों—राज्य भी छुड़ावेगा; और पत्नी वह तो····वह तो," मागन्धी ने पहले से पी हुई मदिरा से आरक्त नेत्रों के रेशमी डोरों के अंगार उदयन पर उड़ेलते हुए कहा।

अत्यधिक उत्तेजना में उदयन ने उग्रतापूर्वक प्रश्न किया—"क्या कहती हो, मागन्धी।"

"मैं ठीक कहती हूँ। वह तुम्हारी रानी पद्मा जो छिप-छिप कर उस धूर्त और पाखंडी गौतम से मिलने जाती है। उसका तुम्हें क्या पता ? द्वेष की विडम्बना-पूर्ण क्रूरता में प्रकृति को तीव्र करते हुए मागन्धी ने प्रकट किया।

उदयन के दहकते तवे पर जैसे और अंगार झोंक दिये गये।

"ओ····," कहकर उदयन मौन हो गया।

× × ×

"लो देख लो, अपनी आँखों देख लो। उस गवाक्ष से तुम्हारी रानी झाँक रही है। और वह देखो—वह पाखण्डी अपने संघ सहित जा रहा है।"

मागन्धी हट आई और आवेश में उदयन ने तलवार खींच ली। "पापिष्ठा ! अभी तेरा बध करता हूँ। और उस गौतम को भी देखूँगा कैसे धर्म की आड़ में वह पापाचार का प्रचार करता है ?"

पद्मावती ने विनत हो अपनी गर्दन झुकाली। उसके पातिव्रत एवं भगवान् बुद्ध के प्रताप से उदयन के से मूर्ख राजा की खड्ग हिल तक न सकी।

उस चमत्कार का प्रभाव उदयन पर कितना पड़ा यह वह भली प्रकार जानता था किन्तु मागन्धी के वशीकरण से उत्पन्न बुद्धि-विभ्रम में वह कुंठित था।

११

तथागत भगवान् बुद्ध विहार करते हुए राजगृह पहुँचे। जन-जन को मानव-कल्याण का संदेश देते तथागत समस्त उत्तराखण्ड में भ्रमण कर रहे थे! उनके साथ महाभिक्षु संघ भी था। महाभिक्षु संघ में भगवान् के सभी प्रमुख स्थविर साथ थे। आयुष्मान् सारिपुत्त, महा मौग्गलायन, महा कात्यायन, महा कोवित, महा कापियन, महाचन्द्र, अनुरुद्ध, उपालि, रैवत, आनन्द आदि भगवान् की अमरवाणी को सर्वत्र प्रसारित करने के हेतु उनके चरणों में रहकर उपदेशामृत पान कर रहे थे। वर्षों महा-भिक्षु संघ में रहने के अनन्तर भगवान् के इन शिष्यों ने संसार भर को घूम-घूमकर बुद्ध के संदेशों से आप्यायित किया।

तब महाश्रमण भगवान् बुद्ध ने राजगृह में ही चातुर्मास व्यतीत किया।

× × ×

भगवान् के छोटे भाई नन्द एवं चचेरे भाई देवदत्त ने भी भगवान् से ही दीक्षा ली थी। किन्तु देवदत्त ईर्षालु प्रवृत्ति का व्यक्ति था। संघ में भगवान् के अन्य शिष्य एवं विद्वान भिक्षुओं यथा सारिपुत्त, मौग्गलायन एवं आनन्द की प्रतिष्ठा उसे असह्य थी। अतः वह महाभिक्षु संघ में कुछ वर्ष रहकर भगवान् बुद्ध से रुष्ट होकर चला आया। तब से वह निरन्तर भगवान् के प्रति द्वेष कर उनका विरोध करता रहा।

उसने स्वयं एक पृथक् संघ की स्थापना की एवं स्वतन्त्र रूप से धार्मिक नेता होकर भारतवर्ष में अपने को पुजाने के स्वप्न देख डाले।

भगवान् बुद्ध की राजवर्ग एवं जनता में महत्ती प्रतिष्ठा देख-देखकर उसे और भी उद्विग्नता होती थी। अतः उसने मगध-विग्रह के रूप में राजवर्ग में भी अपने को प्रतिष्ठित करने की महत्त्वाकांक्षा के सक्रिय

कार्य प्रारम्भ किये।

अस्तु, राजगृह में जब भगवान् महाश्रवण बुद्ध संघ-सहित चातुर्मास कर रहे थे तो वे चालिय पर्वत से गृध्रकूट पर्वत पर पहुँचे।

इस समय तक मगध में गृह-कलह एवं विग्रह का सूत्रपात हो चुका था एवं देवदत्त ने चेलना तथा अजातशत्रु को अपनी कुमंत्रणाओं से पूर्णतः अधीनस्थ कर लिया था।

तभी अजातशत्रु से मन्त्रणा कर देवदत्त ने भगवान् बुद्ध के ऊपर एक हाथी छुड़वाया। किन्तु भगवान् को उससे कोई चोट नहीं पहुँची।

इसके अनन्तर तो देवदत्त ने उनकी हत्या कराने के नाना प्रयत्न किये। उसने धनुर्धरों की योजना की कि वे महाश्रमण भगवान् बुद्ध की हत्या कर दें किन्तु तपोबल के प्रताप से भगवान् को कोई हानि न पहुँची। तथागत भगवान् का तो संसार की ऐसी असद्वृत्तियों के नाश के हेतु ही जन्म हुआ था।

यही नहीं देवदत्त ने भगवान् पर एक भारी पत्थर लुढ़कवा दिया जिससे उनके पैर के अँगूठे में चोट लग गई। तब तक्षशिला से शिक्षा प्राप्त राजगृह के राजवैद्य जीवक ने भगवान् की चिकित्सा की।

देवोपम क्षमाशीलता, अलौकिक प्रेम-व्यवहार, अहिंसा, करुणा, जीवन की सरलता, वाणी की शीतलता एवं विश्व-बंधुत्व के महान् उपदेशक भगवान् महाश्रमण बुद्ध निरन्तर निश्चल भाव से शुद्धबुद्धि होकर कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होकर मानव-कल्याणकारी पथ का प्रदर्शन करते रहे।

व्यंग्य को वे संसार के उपद्रवों का मूल कारण समझते थे। वे निरन्तर धार्मिक क्रूरता एवं अत्याचार, असहिष्णुता एवं राजनीतिक आन्दोलनों से उत्पन्न अशान्ति तथा सामाजिक दुर्व्यवहारों का अन्त करने के हेतु तत्कालीन राजाओं में जा-जाकर उनको अपने सदुपदेशों से प्रभावित कर दुर्नीतियों से बचने का पाठ पढ़ाते रहे।

इस प्रकार चतुर्दिक् भ्रमण करते-करते राजगृह में चातुर्मास करते समय उन्हें ज्ञात हुआ कि मगध में गृह-कलह के कारण राज-परिवार एवं शासन पतनोन्मुख हो रहा है।

उनको विदित हुआ कि राज्य-सत्ता की प्राप्ति के हेतु अजातशत्रु अपने पिता सम्राट् बिम्बसार को नाना प्रकार के कष्ट दे उन्हें अपमानित कर रहा है।

बिम्बसार से उनका पुराना परिचय था एवं वह उनका अनन्य उपासक था अतः भगवान् ने सभी को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देने के हेतु बिम्बसार के पास जाने का विचार किया।

१२

मगध के राजमहालय में सर्वत्र निस्तब्धता छाई हुई है। ग्रीष्म काल की उत्तप्तता से उत्तप्त सभी शयन-विश्राम कर रहे हैं। प्रासाद के प्रहरी-प्रतीहारी कुछ कार्यरत कुछ विनोद-वार्ता में एक स्थान पर एकत्र हो ताम्बूल-पान का सेवन कर आनन्दित हो रहे हैं।

मगध-सम्राट् बिम्बसार अन्तःपुर में शयन-कक्ष में निद्रा-निमग्न हैं। नीरवता के उस वातावरण में अन्तःपुर की दास-दासियाँ भी विश्राम की चेष्टाओं में अलिन्दों इत्यादि में पत्थर की चौकियों पर बैठी ऊँघ रही हैं।

अचानक, मगध के महामात्य वयस्य वर्षकार ने सम्राट् बिम्बसार के अन्तःपुर के द्वार पर आकर तीव्र स्वर में पुकारा—"महाराज! कहाँ हैं?"

भयातुर सेविका ने मन्द स्वर में कहा—"महाराज! निद्रित हैं।"

"उन्हें तुरन्त सूचना दो वर्षकार आया है।"

"इस······ स ·······।"

"हाँ, तुरन्त ·······।"

दासी ने महामात्य के बलिष्ठ हाथों में युवराज का हाथ पकड़ा हुआ देखकर काँपते हुए महाराज के विश्राम का द्वार खोलकर प्रवेश किया।

महामात्य वर्षकार ने अपने बलिष्ठ हाथों से अजातशत्रु की कलाई पकड़ रक्खी थी व उनके नेत्रों से अत्यधिक आवेश एवं क्रोध की ज्वालाएँ प्रकट हो रहीं थीं।

"तुम्हारा इतना दुःसाहस"······ठीक बताओ तुमको इस दुष्कर्म के लिए किसने प्रोत्साहित किया ·····अपने ही हाथों अपने पिता······"

अजातशत्रु भूमि पर दृष्टि गड़ाये मौन खड़ा था।

तभी दासी ने कहा—"महाराज ने अन्दर आने का निर्देश दिया है।"

वर्षकार युवराज सहित सम्राट् बिम्बसार के समक्ष उपस्थित हुए।

यकायक उस विश्रान्ति-काल में बिम्बसार ने अजातशत्रु को पकड़े हुए जब महामात्य वर्षकार को देखा तो अत्यधिक उद्विग्न होकर प्रश्न किया—"महामात्य क्या बात है?"

तत्क्षण अजातशत्रु का हाथ छोड़ते हुए महामात्य ने कहा—"महाराज! अपने पुत्र-युवराज अजातशत्रु से ही पूछिये।"

और अधिक चिन्तातुर होकर बिम्बसार ने अजातशत्रु को सम्बोधित कर प्रश्न किया—"अजात! क्या बात है?"

एक कर्कश मौन वहाँ बिखर गया।

तभी निस्तब्धता भंग करते हुए महामात्य वर्षकार ने कहा—"महाराज की हत्या करने के हेतु अजातशत्रु ने अन्तःपुर में प्रवेश किया था। वह देखिये—अजातशत्रु के हाथ में कटार है······।

एक पल को बिम्बसार जैसे अचेत हो गये किन्तु तुरन्त व्यवस्थित होकर बिम्बसार ने कड़कते हुए कहा—"यह कैसे कह सकते हो, महामात्य! सम्भव है······।"

"यह अजातशत्रु ने स्वयं ही व्यक्त कर दिया है।"

"ओ ....!"

"मैं अनेक बार पूछ चुका हूँ कि इस जघन्य कार्य को करने की कुमन्त्रणा देने वाला कौन है? इस पर अजातशत्रु कोई उत्तर नहीं देते," महामात्य वर्षकार ने पुनः तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से युवराज अजातशत्रु को देखते हुए प्रकट किया।

"इसको पूछने से क्या लाभ है, महामात्य? यह पूछो कि ऐसा वह क्यों करना चाहता है?" बिम्बसार की आकृति का रंग जैसे विलीन होता चला जा रहा था।

"मुझे राज्य चाहिए······। मुझे मगध की सत्ता चाहिए······"

अजातशत्रु ने निर्लज्जतापूर्वक तीव्र स्वर में कह डाला और क्रूर दृष्टि भूमि पर केन्द्रित कर ली।

"पिता की हत्या करके—ऐसा जघन्य कृत्य जब जनता सुनेगी तो तुम्हें राजा मानेगी······", महामात्य ने कर्कश स्वर में कहा।

"राज्य तलवार से चलता है—राज्य की जनता दमन से सीधी होती है······।" अजातशत्रु ने उसी निर्लज्ज कटुता-भरे शब्दों में व्यक्त किया।

"ओह! ऐसी निर्लज्जता, ऐसी नीचता, ऐसा पतन; भगवान्!" कहते-कहते वृद्ध सम्राट् बिम्बसार ने अपने मस्तक पर हाथ पटक लिया।

× × ×

"महाराज! मगध के चम्पा अधिकार के अनन्तर चम्पा का राज-सिंहासन रिक्त है। मेरा प्रस्ताव है—अजातशत्रु को थोड़े काल के लिए चम्पा भेज दिया जावे। वह वहाँ जाकर शासन करे······इस समय यही युक्त-संगत प्रतीत होता है।"

"मैं····मैं उसे और उसकी माँ दोनों को इस पाप का दंड दूँगा। दोषी को दंड न देना दोष को प्रोत्साहन देना है। महामात्य मैं इस प्रस्ताव के मूल में कोई तर्क-संगत दृढ़ता नहीं देखता।"

"महाराज! आवेग से नहीं किंचित् नीति से कार्य कीजिये। सम्राज्ञी चेलना ने अजातशत्रु को प्रोत्साहित किया होगा—ऐसा मैं नहीं विचारता। इसमें निश्चित ही देवदत्त का हाथ होगा," महामात्य वर्षकार ने सम्राट् बिम्बसार को समझाते हुए व्यक्त किया।

"देवदत्त व अजातशत्रु दोनों को बन्दी-गृह में डाल दिया जाय!"

"इससे स्थिति बिगड़ जायगी, महाराज!"

"मैं अजात को निश्चित दण्ड दूँगा," बिम्बसार ने अत्यधिक क्रोध की मुद्रा में कहकर अपने आसन को स्वर्ण-पीठिका पर और सँभाल लिया।

"महाराज विचार कर लें।"

चम्पा के नागरिकों का एक प्रतिनिधि-मंडल अजातशत्रु के अत्याचारों को सम्राट् बिम्बसार तक पहुँचाने राजगृह आया।

सम्राट् बिम्बसार को जब ज्ञात हुआ कि चम्पा पहुँचकर अजातशत्रु ने चम्पा की जनता को नाना प्रकार के कष्ट देने प्रारम्भ कर दिये हैं। वहाँ वह नागरिकों से कर एवं दण्ड रूप में अत्यधिक धन-राशि ले रहा है, उसने वहाँ सैन्य संगठन प्रारम्भ किया है, सैन्य-संगठन के हेतु ही वह अत्यधिक व्यय के लिए धन एकत्र कर रहा है तो बिम्बसार ने विचार किया कि निश्चित ही वह सैन्य-अभियान की तैयारी कर रहा है।

सम्राट् ने प्रतिनिधि-मंडल को अनेक प्रकार से सन्तोष देकर बिदा किया और महामात्य वर्षकार से मन्त्रणा कर अजातशत्रु को अविलम्ब राजगृह बुलाने की राजाज्ञा भेजी।

१२

"बेटी मल्लिका ! प्रसन्न हो ले। महाराज प्रसेनजित ने मल्ल-बंधुल से तेरा विवाह करने की सहर्ष अनुमति दी है। मैं तो जानती थी प्रसेनजित और बंधुल— तक्षशिला में सहपाठी व मित्र रहे हैं। उन्होंने कहा— "मल्लिका के लिए मल्ल-बंधुल से अच्छा पात्र दूसरा नहीं हो सकता," कहते-कहते हर्षातिरेक में देवी वसुमित्रा के नेत्रों में जल भर आया।

मल्लिका के मौन-मुखर रूप की धवलता में परिणय की कल्पना के अतिरेकसहित रक्तिमा दौड़ गई। पुलक में उसने मल्ल-बंधुल को पति रूप में पाने की कामना की और अपने सौभाग्य को सराहा। वह सोच गई—'तो माँ ने इतने काल तक उस सब गतिविधि को कितनी शान्ति से छिपाये रक्खा।' और वह अनायास माँ से लिपट गई।

"मल्लिका ! बेटी ! यह तेरे स्वर्गीय पिता—उन सामन्त की अभिलाषा थी। वे अपने जीवन-काल में ही इस सम्बन्ध को निश्चित कर गये थे। वे बंधुल के अपार गुणों से उसी समय अत्यधिक प्रभावित थे। और फिर मेरी पुत्री···उसके गुण-रूप-स्वभाव के अनुरूप बंधुल तो होना ही चाहिये। क्योंरी, तू प्रसन्न है ? तू क्या जाने बंधुल आज समय का सबसे बड़ा योद्धा एवं बाण-विद्या-निपुण है ?····"

और मल्लिका क्या कहे कि वह कितनी प्रसन्न है। वह वृद्धा माँ से क्या कहे कि वह बंधुल के वीरत्व की प्रशंसा सुन चुकी है। वह क्या कहती कि उस दिन जब से उस तेजस्वी व्यक्तित्व को उसने देखा था उसके हृदय ने कोलाहल करना प्रारम्भ कर दिया था। वह क्या कहती कि उसने उसे कितना मोहा। और जब—अब वह उस नर-रत्न की पत्नी होगी तो श्रावस्ती की नारियाँ उस पर ईर्षा करेंगी। वह अपना कितना सौभाग्य मानेगी। और वह मूक-हिरणी-सी माँ से और अधिक चिपट

गई। माँ ने उसी को मल्लिका की स्वीकारोक्ति माना। वह भी हर्षित हो गई।

तब अपने एकान्त कक्ष के निर्द्वन्द्व-पर्यङ्क पर उल्लसित मल्लिका विलम्ब तक कल्पना-लोक में अतीत एवं भविष्य के पक्षी उड़ाती रही। जब उस मदिर रूप के सुललित नेत्रों की मुँदी पलकों में वीरवर बंधुल का चित्र उतरकर हृदय में उथल-पुथल करता तो मल्लिका करवट बदल लेती!

यों—अब सुख की उत्तुंग-लहरों में मल्लिका के दिवा-निशा व्यतीत होने लगे।

× × ×

"क्यों री! तुझ सफेद लोमड़ी का ऐसा सौभाग्य जागा। तुझे बंधुल प्राप्त होगा—यह सुख—तुझे बधाई।" मल्लिका की सखि माध्वी ने मल्लिका को बाँहों में भींजते हुए कहा।

"तो, क्या हुआ? मैं भी सामन्त देवधर्मा की पुत्री हूँ जिनके वैभव की कीर्ति आज भी ज्योतित है।"

"और क्योंरी! उस बेचारे प्रेमी का क्या होगा?"

"अब तुझ पर ही कोई यों फाँदता फिरे, तो, तू क्या करेगी?"

"पादत्राणिका''''"

"जो शब्दों की वर्जना में नहीं आ सकता उस पर हिंसक प्रयोग और भी विफल होते हैं।"

"अरे छोड़ भी! मैंने क्या प्रसंग छेड़ दिया। तू तो अब चली''''"

"अभी क्यों?"

"अरे हाँ''''जाने कब अब तो एक पल'''"

"चुप माध्वी!"

"वह देख कौन आया है, मल्लिका!"

"आओ री सखियो, आओ!"

और चित्रांगदा, मृगावती व नन्दिनी ने मल्लिका व माध्वी को गुदगुदाना प्रारम्भ कर दिया। तभी चित्रांगदा बोली—"ऐरी ! हम तो भूल ही गईं। कोई और आया है। द्वार पर मल्लिका की प्रतीक्षा कर रहा है।"

मल्लिका चौंकी !

"कौन है ? राजकुमार आया है क्या ?"—माध्वी ने नेत्रों में शरारत की रेखायें खींचकर कहा।

"वह बुला रहा है।"

"वह···उससे कह क्यों तेरी शामत आई है। अब तेरा चाचा बंधुल मल्लिका को लेने आ रहा है।" माध्वी ने मल्लिका पर भ्रू-कटाक्ष फेंकते हुए कहा ?

"बंधुल," "बंधुल," मृगावती व नन्दिनी ने कौतूहल में एक साथ कहा।

"हाँ री, वही सब लड़ाइयाँ जीतकर अब मल्लिका···," माध्वी ने मल्लिका को नन्दिनी पर ढकेलते हुए कहा।

"तू नहीं चुपेगी, माध्वी !"

"उसके दुलार पर जब उसे भी ऐसे ही ये बड़ी-बड़ी आँखें दिखाना तब देखूँगी !"

"अच्छा अब बहुत तंग कर चुकीं। चलो माँ से मिल लो और फिर जलपान करो," कहकर मल्लिका सबको देवी वसुमित्रा के कक्ष की ओर ले गई।

× × ×

"आज मैं देवी वसुमित्रा के यहाँ गया था, शक्तिमती !" प्रसेनजित ने स्वर्ण-पर्यङ्क के स्थूण पर सर टिकाकर राज-मुकुट निकटवर्ती स्वर्ण-चौकी पर रखते हुए कहा।

"कोई विशेष बात थी ?" शक्तिमती ने दासी को पेय लाने का आदेश देकर प्रसेनजित के निकट बैठते हुए प्रश्न किया।

"मल्लिका के विवाह''''"

शक्तिमती के नेत्रों में जैसे उत्सुकता तैर गई और प्रसेनजित कुछ कहें इसके पूर्व ही रानी ने अत्यन्त विनम्र होकर प्रारम्भ किया—"विडुभ उस ओर आकृष्ट है। मैं यह आपसे प्रकट करना ही चाहती थी। अच्छा हुआ देवी ने स्वयं ही प्रकट कर दिया।"

तुरन्त प्रसेनजित ने गम्भीर मुद्रा में शक्तिमती को एक दृष्टि से देखा और आगे की वार्ता वहीं समाप्त कर दी।

किन्तु शक्तिमती कहती गई—"हाँ, तो आपने बताया नहीं देवी से आपने क्या कहा ?"

"यही कि मल्लिका और विडुभ'''"

"ऐसा कभी नहीं हो सकता ! मैं उसकी अनुमति कदापि न दूँगा," प्रसेनजित ने स्थिरतापूर्वक व्यक्त किया।

शक्तिमती ने प्रसेनजित की आकृति में कुछ पढ़ते हुए अपना प्रयत्न प्रारम्भ रक्खा—"इसमें हानि ही क्या है, यदि विडुभ स्वयं''''।"

"मेरा आदेश है कि इस प्रसंग पर अब आगे या भविष्य में कभी कोई वार्ता न की जावे।"

शक्तिमती को विवश हो वह कड़वा घूँट पीना पड़ा।

विडुभ को जब यह ज्ञात हुआ कि महाराज ने मल्लिका से उसके परिणय की वार्ता को यों तिरस्कृत कर दिया है तो उसे अत्यन्त खेद भी हुआ और पिता पर अत्यधिक रोष भी। किन्तु अपनी प्रतिक्रिया को प्रकट करना इतना सरल न था अतः वह अवसर की खोज करने लगा कि कैसे वह किस प्रकार अपनी बात पूर्ण करे।

शक्तिमती ने भविष्य में उस प्रश्न को लेकर बात करना सर्वथा अपना अपमान समझकर विडुभ से कह दिया—"जो चाहे करो। मुझसे कुछ मत कहना।"

मल्लिका का द्वार बन्द था। उसके यहाँ जाने का साहस अब नष्ट-प्राय हो चुका था। अब केवल दो मार्ग शेष थे—छल-प्रपंच से मल्लिका को हस्तगत करना अथवा प्रसेनजित को किसी भाँति विवश करना।

प्रसेनजित भी इस ओर से विशेष सतर्क था। उसने ध्यान किया—उसके अनजाने यह सम्पर्क-वार्ता इतनी गहरी जड़ें पकड़ गई। और अब जब माँ-बेटे दोनों ही इस योजना में हैं तो मल्लिका के परिणय में भी कोई व्याघात सम्भावित है अतः कुछ हो मैं दृढ़ हूँ। सामन्त देवधर्मा के कोशलराज पर बड़े उपकार हैं। राज-परिवार सदैव ही उनका आभारी रहा है तथैव बंधुल मेरा अनन्य सखा है अतः मल्ल-बंधुल एवं मल्लिका का विवाह अटल है। विडुभ को राजकुल-कन्या की आवश्यकता है वह उसे प्राप्त होगी। किन्तु मल्लिका का विवाह निर्विघ्न सम्पन्न हो इस हेतु भी कुछ व्यवस्था करनी होगी।

आज श्रावस्ती में घर-घर चर्चा थी। नगर में इधर-उधर कुछ नवीन आकृतियाँ विचरण करती दिखाई दे जाती थीं! ये नवागन्तुक कुशीनारा

एवं पावा के मल्ल-नागरिक थे। वहाँ के शासनाधिकारी अथवा सैन्याधिकारी थे!

आज मल्लिका का विवाह मल्ल-बंधुल से सम्पन्न होने को था। बंधुल सहित कुशीनारा एवं पावा के विशिष्ट नागरिक श्रावस्ती में आ चुके थे।

बंधुल आज अत्यधिक हर्षित था। भानुदत्त उससे समय-समय पर विनोद-वार्ता कर उसके मन-मानस को गुदगुदा देता था।

मल्लिका के पुलकातिरेक की मौन चेतना को माध्वी, नन्दिनी, चित्रांगदा, सौमित्रा, अचला, मृगावती आदि ने नष्ट कर उसे खिलखिलाने सीत्कारने, घबड़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर हट जाने को विवश कर दिया। ये सखियाँ उसे न विन्यास करने देती थीं न परिधान व्यवस्थित करने देती थीं।

देवी वसुमित्रा ने मल्लिका के हेतु वर्षों से जो सामग्री एकत्र कर रक्खी थी उसके अतिरिक्त अत्यधिक धन, रत्न, आभूषण, परिधान, गार्हस्थ्य-सम्बन्धी अन्य उपादान एक स्थान पर शोभासहित व्यवस्थित किये थे। जीर्ण-शीर्ण आयु से समाप्तप्राय देवी वसुमित्रा आज अत्यधिक आनन्दित थीं। उनके जीवन की अन्तिम अभिलाषा आज पूर्ण हो रही थी। उनका हर्ष द्विगुणित था यह विचारकर कि मल्लिका को उसका मनभावन पात्र प्राप्त हो रहा है एवं उसके स्वर्गीय पति की अभिलाषा साकार हो आई है।

समस्त वैवाहिक व्यवस्था का भार प्रसेनजित ने स्वयं लिया था व राज्य के उच्च अधिकारियों को प्रबन्ध करने का निर्देश दिया था।

अन्ततः एक महारात्रि समाप्त होने पर सामन्त देवधर्मा का निवास बन्धु-बान्धवों, स्वजनों, परिजनों, श्रावस्ती के विशिष्ट नागरिकों, स्त्री-पुरुषों, सामन्तों, सेट्ठियों, राज्याधिकारियों से भर गया।

कुशीनारा एवं पावा के भी गणसंवाहक, गण-सदस्य, सैन्याधिकारी,

विशिष्ट मल्ल-नागरिक, सामन्त सेद्विजन एकत्रित होकर मल्ल-बंधुल सहित वहाँ विराज रहे थे।

महाराज प्रसेनजित की प्रतीक्षा थी अतः अश्वारोही सैनिक बाहर राजमार्ग में घूम-घूमकर व्यवस्था स्थापित कर रहे थे।

निरन्तर मंगल-गीत के सुमधुर स्वर स्त्रियों द्वारा उच्चारित होकर बाहर प्रसारित हो रहे थे। यज्ञ-मंडप में बैठे पुरोहितगण अपनी हवन-सामग्री ठीक करते जाते व मन्त्रोच्चारण कर वातावरण को मुखरित कर रहे थे।

अन्ततः किंचित् प्रतीक्षा के उपरान्त महाराज प्रसेनजित का आगमन हुआ। सम्मान में—मल्लसंघ एवं कोशल राज्य के राजवर्ग के मिले-जुले इस विशिष्ट समूह ने उठकर प्रसेनजित को अभिवादन किया।

बंधुल अपने दूल्हा-वेश में बहुमूल्य परिधान पहने स्वर्ण-रत्नों के आभूषण झलकाता; मानक-पन्ना, पुखराज हीरक की मेखलायें झुमाता, सब के बीच में बैठा था। प्रसेनजित भी उसी के निकट जा बैठा। दोनों ने एक दूसरे को नमस्कार-प्रति-नमस्कार किया और उस वैभव-सम्पन्न राज-समूह में तब विलम्ब तक निस्तब्धता छाई रही।

केवल लग्न-मंडप की ओर से वेद-मन्त्रों की ध्वनियाँ प्रस्फुटित होकर हर्ष प्रकट कर रही थीं। लग्न-मण्डप को मल्लिका की सखियों ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से सजाया था, भाँति-भाँति के पुष्प-गुच्छ, लवंग-लतायें, मंजरियाँ, तोरण, वन्दनवारों, चन्द्र-रौप्य किरणों से मण्डप आच्छादित था। ऊपर रेशम पर स्वर्ण-तारों से खिचा पीत-चन्दोवा शोभा प्रकट कर रहा था। उस पर चारों ओर चँवर एवं छत्र लटक रहे थे। नीचे हवनकुँड के चारों ओर स्वर्ण-चौकियाँ बिछी हुई थीं। निकट ही आसनों पर पुरोहित-समूह एकत्र था। उनके निकट हवन की विशिष्ट सामग्री—घृत, ताम्बूल, धूप, अक्षत, चन्दन आदि थालों में व चाँदी के पात्रों में भरी रक्खी थीं।

यथासमय संस्कार प्रारम्भ हुआ। मल्लिका के कलात्मक केश-विन्यास, बहुमूल्य वेश, आभूषण, अलंकरण देख-देख कर बंधुल के स्वजन हास-उल्लास प्रकट कर रहे थे। मल्लिका के आलक्ता-रंजित पैरों की झलक निहारकर बंधुल मुस्करा रहा था।

तत्कालीन भारत के दो महाजनपदों के राजपुरुषों के उस सम्मिलित समूह के मध्य मल्लिका-बंधुल का पाणिग्रहण संस्कार विशेष हर्षोल्लास सहित विधिवत् सम्पन्न हुआ।

उस समम तुरही-वादन एवं तूर्य-घोष से गगन-मण्डल मुखरित हो उठा।

प्रसेनजित ने अपनी ओर से अत्यन्त बहुमूल्य रत्नाभूषण बंधुल एवं मल्लिका को उपहार रूप में भेंट किये।

और मल्लिका कल-कल-हास-रुदन सहित देवी वसुमित्रा एवं अपने बन्धु-बान्धवों, स्वजनों, सर्वाधिक हर्ष-रुदन से आतंकित सखियोंसहित श्रावस्ती को छोड़कर कुशीनारा चली गई।

१५

कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अपने साम्राज्य-विस्तार में काशी, ययावि, सेतथा नरेश, हिरण्यनाभ कौशल एवं शाक्य—इन पांच जनपदों को अपनी अधीनता स्वीकार करने को विवश किया था।

इनमें काशी का प्रान्त तो प्रसेनजित ने अपनी बहन कोशल देवी को दहेज में दिया था तथा शाक्यों के यहाँ की राजकुमारी के चक्र में दासी-पुत्री महामाया अथवा शक्तिमनी से विवाह कर उसे अपने यहाँ की पट्ट-राज-महिषी पद पर सुशोभित किया था।

कोशल के उत्तर तथा मल्ल जनपद के पश्चिमोत्तर में अचिरावती (राप्ती) तथा रोहिणी नदी के बीच शाक्यों का यह गणराष्ट्र था। इसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। महात्मा बुद्ध भी इसी शाक्य देश के थे व उनका जन्म यहीं कपिलवस्तु में हुआ था।

कोशल राजकुमार विड्डभ आजकल यहीं अपने मातुल के यहाँ आया हुआ था।

सीमाप्रान्तों में भ्रमण करने के अनन्तर जब वह कपिलवस्तु पहुँचा तो प्रथम-अनुभव में ही उसका मन अत्यन्त खिन्न हुआ। कोशल का युवराज उस पर भी शाक्यों का दौहित्र होने के कारण जो मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, मर्यादा उसे मिलनी चाहिये थी उसका शतांश भी उसे कहीं दृष्टिगत नहीं हुआ। सभी उसकी ओर से अत्यन्त उदासीन एवं उपेक्षा की दृष्टियों से देख रहे थे।

वस्तुत: शाक्य एवं लिच्छवि दो जातियां ऐसी थीं जो अपने रक्त के प्रति अत्यधिक सजग थीं। इनमें वर्णसंकरत्व एवं अधिकृत मेल-मिलाप कदापि न हो पाया था। ये कभी भी निम्न रक्त को अपने में सम्मिश्रित न करते थे। इसी कारण ये उन लोगों को हेय मानते थे जो वैवाहिक

सम्बन्धों में इस प्रकार नीच-उच्च का भेद त्यागकर मनमाने कार्य करते थे। यही कारण था शाक्य कोशल प्रसेनजित से घृणा करते थे किन्तु उसके सैन्य-बल के समक्ष विवश पराधीनता स्वीकार किये हुए थे। उनका यथार्थ कथन सत्य था कि प्रसेनजित की एक भी रानी राजकुमारी नहीं। तभी षड्यन्त्र करके कोशल से परास्त होने पर इन्होंने राजकुमारी के स्थान पर एक सामन्त से दासी में उत्पन्न महामाया का विवाह प्रसेनजित के साथ कर दिया।

उसी दासी-पुत्र विडुभ का स्वागत-सत्कार करने को वे कदापि तत्पर न थे किन्तु व्यवहारार्थ उन्होंने वह रीति निबाही।

शाक्यों ने बेमन से संथागार में कोशलकुमार विडुभ का स्वागत किया। उस अलस-उपेक्षा एवं उदासीनता-मिश्रित स्वागत-सत्कार से भी विडुभ को अत्यधिक क्षोभ हुआ और सर्वाधिक उत्तेजना उसे तब हुई जब उसे ज्ञात हुआ कि उसके आने के अनन्तर शाक्यों ने समस्त संथागार को दूध से धुलवाया। उन आसनों को दूध से धुलवाया जिन पर विडुभ बैठा था।

अन्ततः कपिलवस्तु में ही उसे अपने उस अपमान का कारण भी ज्ञात हो गया कि किस प्रकार शाक्यों ने अपनी एक दासी-पुत्री का विवाह कोशल-नरेश प्रसेनजित से किया जिसका वह पुत्र है।

विडुभ ने अत्यन्त उत्तेजना में आग-बबूला हो श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

विडुभ ने जब अपने अंगरक्षकों एवं छोटी-सी सैनिक टुकड़ी सहित श्रावस्ती में प्रवेश किया तो उसे लगा श्रावस्ती की वायु भी बड़ी उदास है। उसे लगा श्रावस्ती श्रीविहीन हो रही है। उसे प्रतीत हुआ—यहाँ भी उसके लिए कोई ऐसा अशुभ हो गया है जिससे इसमें मरण की सी निस्तब्धता छाई हुई है।

और उसका कारण ज्ञात होते देर न लगी। मल्लिका का विवाह बंधुल-मल्ल के साथ सम्पन्न हो गया और मल्लिका अब श्रावस्ती को श्रीविहीन कर उसके हेतु छोड़कर चली गई है।

कपिलवस्तु में हुए अपमान की तीव्र ज्वालाओं से दहकते हृदय ने जब उस दारुण व्यथा को अवश-आकुलता में अनुभव किया तो विडुभ का मन-मानस चीत्कार कर उठा। उसका अग्रिम पथ था विद्रोह-विध्वंस।

× × ×

प्रसेनजित अपनी राजसभा में बैठा था। सभी अमात्य, सामन्त, सेनापति उपस्थित थे तभी प्रसेनजित ने दौवारिक को आदेश दिया—"कपिलवस्तु से युवराज विडुभ आ गये हैं। उनसे कहो महाराज ने स्मरण किया है।"

कुछ ही काल के अन्नतर अवज्ञासहित विडुभ ने राजसभा में प्रवेश किया और आकर प्रसेनजित के निकटवर्ती रिक्त सिंहासन पर बैठ गया। उसके नेत्रों से उत्तेजना की ज्वाला प्रकट हो रही थी। उसकी आकृति में भयंकर आक्रोश विद्यमान था।

सभी ने विडुभ की उस भंगिमा को देखा। प्रसेनजित ने अनुमान लगाया कपिलवस्तु से लौटकर मल्लिका का परिणय-समाचार ज्ञात कर विडुभ का वह रौद्र रूप हो जाना स्वाभाविक ही है। अतः प्रसेनजित ने कुशल-वार्ता भी करना अनुपयुक्त जान मौन ही रहना उचित समझा। तभी प्रसेनजित राजसभा विसर्जित कर उठ गया।

"विडुभ, मेरे साथ आओ," कहकर प्रसेनजित अंगरक्षकों एवं महामात्यसहित प्रासाद के बाह्य-मण्डप की ओर बढ़ गया।

स्वर्ण-सिंहासन पर बैठते हुए प्रसेनजित ने सभी को समक्ष पड़ी स्वर्ण-पीठिकाओं पर बैठने का निर्देश किया। अंगरक्षकों एवं प्रहरियों ने भी अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर सतर्क भाव से अपने खड्ग एवं उच्च भाले सँभाल लिये।

तभी विडुभ को संबोधित कर प्रसेनजित ने सरल सहास्य मुद्रा में प्रश्न किया—"अपने मातुल के यहाँ प्रसन्न तो रहे ? कपिलवस्तु में शाक्यों ने स्वागत-सत्कार तो भली प्रकार किया ?"

अत्यन्त असम्मान, अवज्ञा एवं अभद्रतापूर्वक विडुभ ने तीक्ष्ण स्वर में कहा—"मुझ दासी-पुत्र का शाक्यों द्वारा स्वागत-सत्कार, कपिलवस्तु में मेरे मातुल-गृह का आतिथ्य···हः हः हः, कैसा व्यंग्यात्मक उपहास है ?"

"तुम्हें क्या हुआ विडुभ ?"—अत्यन्त विस्मय में प्रसेनजित ने प्रश्न किया।

वहाँ उपस्थित-जन आश्चर्य-भाव से विडुभ को देखकर किसी भावी आशंका का अनुमान लगा रहे थे।

"मैं जानना चाहता हूँ कि कपिलवस्तु मुझे क्यों भेजा गया था ?" विडुभ ने अपने मस्तक पर अनेक बल डालकर अपने हाथ की मुट्ठी पर अपना बायाँ गाल टिकाते हुए प्रश्न किया।

"शाक्य अपने अधीन हैं।"

विडुभ बुदबुदाया—"वाह री राज्य-लिप्सा !'

"वत्सराज उदयन पश्चिम में सैन्य-संगठन कर कोशल पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है।"

"क्यों नहीं करेगा ? गान्धार-राजकुमारी कलिङ्गसेना का उससे पाणिग्रहण होने को था किन्तु आप बीच में कूद पड़े," विडुभ ने उपेक्षा-भरे शब्दों में कहा और ओठों में बुदबुदाता रहा—'इस बुढ़ापे में भी ऐसी हेय कामुकता।'

"तुम ये राजनीतियां अभी क्या समझो ?···किन्तु उधर लिच्छवि अलग तैयार बैठे हैं। ऐसी अवस्था में शाक्यों का प्रेम-व्यवहार व सहायता-प्राप्ति हमें अभीष्ट है। और फिर वे मेरे सम्बन्धी हैं। तू उनका दौहित्र है। दीर्घकाल के अनन्तर वहाँ हो आने में क्या हानि हो गई ?"

मन ही मन वह विचारता रहा—भेजा तो गया था मुझे मल्लिका

के विवाह के अवसर पर श्रावस्ती से दूर हटाने के हेतु—और प्रकट में वह तीव्र सरोष शब्दों में बोला—"हः हः हः—शाक्य आपके सम्बन्धी हैं। मैं उनका दौहित्र हूँ। कैसा अन्धकार—कैसी प्रवञ्चना ?"

"विड्डभ, उद्दण्ड, संयत होकर बात कर। तू अपने पिता से वार्तालाप कर रहा है।"

"दासी-पुत्र में संयम कैसा ?"

"क्या बकता है ?"

"मैं ठीक कहता हूँ।"

"स्पष्ट कर।"

"सुनने का साहस है, आप में। तो, सुनिये। आप जानते हैं कपिल-वस्तु में क्या हुआ ? बताता हूँ—वहाँ शाक्यों ने—बाह्य संथागार में, अत्यन्त विवशता एवं उपेक्षा में—मेरा स्वागत किया। और, मेरे चले आने पर संथागार का वह प्रांगण तथा वे आसन दूध से धोकर पवित्र किये गये⋯"

"ऐसा क्यों किया शाक्यों ने ?"—अत्यन्त कौतूहलपूर्ण भंगिमा में प्रसेनजित ने प्रश्न किया।

महामात्य, एवं अन्य उपस्थितजन विस्फारित नेत्रों से विड्डभ द्वारा उद्घाटित रहस्य-वार्ता सुनकर विचित्र-सी आकृतियाँ बनाये बैठे थे।

"वे दासियाँ जो उस स्थान को स्वच्छ बना रही थीं कहती थीं—"चला है राजकुमार का वेश धारण कर दासी-पुत्र शाक्यों का स्वागत पाने। संथागार अपवित्र कर दिया, नीच ने।"

"ऐसा क्यों किया शाक्यों ने ? इस दुःसाहस का कारण क्या ? यह दासी-पुत्र क्या बकवास है ?" प्रसेनजित ने अत्यधिक उत्तेजित होकर कहा।

"मैं इन शाक्यों का वंश नाश कर दूँगा। मैं अपने अपमान का बदला शाक्यों के शोणित से लूँगा। मैं⋯," विड्डभ को उस क्षण पुनः मल्लिका की स्मृति ने झकझोर डाला और वह मन ही मन सोच गया—

'तेरा भी नाश करूँगा।'

"मैं पूछता हूँ—इसका क्या कारण था ?"

अत्यन्त अभद्रतापूर्वक विड्डभ बोला—"आपकी तृप्ति के हेतु शाक्यों ने षड्यन्त्र कर अपनी राजकुमारी के स्थान पर एक दासी-पुत्री आप से ब्याह दी···"

"चुप रह निर्लज्ज···शाक्यों का यह षड्यन्त्र, ऐसा दुःसाहस···वे तैयार हो जावें कोशल की सेना के बाणों से बिंधने के लिए।"

बंधुल के रूप में अपने सौभाग्य-सिन्दूर को पाकर मल्लिका ने अपने सुहाग-अनुराग सहित अपनी अनन्य रूप-यौवन राशि उस पर न्यौछावर कर दी !

बंधुल ने मल्लिका-सी मदिर-रूप-यौवन-सम्पन्न तरुणी-पत्नी पाकर अपना ओज-तेज-पराक्रम उस पर अर्पित कर दिया।

और इस नव-युगल—दम्पति ने अनन्य स्नेह में कुशीनारा का निराकुल जीवन व्यतीत कर अपने को धन्य माना।

किन्तु बंधुल दिल में अनेक बार खिन्न हो जाता ! उसे कुशीनारा की राजनीति से बड़ी घृणा हो रही थी ! उसे अपने वर्तमान अस्तित्व को देखकर क्लेश हो रहा था। उसे कुशीनारा की सर्वप्रियता में भी वैयक्तिक डाह करोंचती रहती थी। वह कुछ और था। उसे कुछ और होना था। वह सोचता वह कहाँ कूप-मंडूक का सा जीवन व्यतीत कर रहा है।

अस्तु, दो यवन अश्व, एक दिवस बंधुल के निवास पर आकर अपने आगे के पैरों से भूमि कुरेदने लगे ! उनको देखकर लग रहा था—ये अपने आरोहियों को वायु-वेग से कहीं भी ले जाने को बावले हो रहे हैं।

× × ×

एवं बंधुल ने जब दूसरी साँस ली तो सामने की ओर उँगली का संकेत देकर वह बोला—"देखो प्रिये ? वह समक्ष अचिरावती की स्वच्छ-निर्मल धारा प्रवाहित हो रही है !"

"उधर चलिये, नाथ !"

और दोनों अश्व अचिरावती नदी के किनारे आ लगे।

बंधुल एवं मल्लिका अश्वों पर से उतर पड़े। उन्होंने अश्व एक पेड़ की शीतल छाया में बाँध दिये। मल्लिका वहाँ की धीर-प्रशान्त-जलधारा

एवं चतुर्दिक् छिटकी प्राकृतिक छटा को निहारकर कुमुद के श्वेत पुष्प-सी खिल उठी। उसने बंधुल का हाथ अपने हाथ में लिया और इठलाते हुए नदी-तीर पर जाकर अपना मुख धोया। बंधुल ने हाथ-पैर स्वच्छ किये। जल पिया और तब वे विलम्ब तक किनारे बैठे स्वान्तःसुख अनुभव करते रहे।

"नाथ ! कुशीनारा यों अनायास क्यों छोड़ दी ?"

"प्रिये ! वहाँ—तुम देखती थीं मेरा मन तुम्हारा सहवास पाकर भी पूर्णतः सुखी नहीं रह पाता था। मैं कुशीनारा के वातावरण में उद्विग्न हो उठा था।"

"अब, कहाँ चलियेगा ?"

"यह तुमने चलते समय क्यों नहीं पूछा।"

"क्या अपने परम-प्रिय के साथ चलते समय भी यह पूछना था कि कहाँ चलोगे ?"

बंधुल ने मल्लिका का हाथ अपने हाथ में लेकर चूम लिया। वे, बाहों में बाहें डालकर विलम्ब तक धीर-नीर-धारा के तीर पर बैठे पुलकित होते रहे।

उन्होंने पुनः अश्व संभाले और चल दिये। वे कभी नील गगन देखते हुए अश्वों को दौड़ा देते, कभी धीमे हो जाते, तब किसी पहाड़ी उपत्यका पर खिलखिलाते हुए अश्वों को चढ़ा देते। यों, मार्ग में हर्ष-आनन्द मनाते दम्पति बढ़ते चले गये।

आरोहण में जब ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो तो अश्व भी क्यों न गद्-गद् हों ?

"प्रिये ! तुम्हें तो ज्ञात ही है प्रसेनजित मेरा तक्षशिला का सहपाठी व अन्तरङ्ग सखा रहा है ! हम और वह दस वर्ष तक वहाँ साथ रहे हैं। तक्षशिला से प्रस्थान करते समय उसने कहा था—"मित्र ! श्रावस्ती का राजा होने पर मैं तुम्हें अपना प्रधान सेनापति बनाऊँगा। इधर हमारे विवाह के अनन्तर उसके अनेक लेख आ चुके हैं। हम श्रावस्ती ही क्यों न चलें ? वहाँ वह मेरा उचित आदर करेगा।"

"श्रावस्ती मेरा घर है। कहीं अन्यत्र चलिये न।"

"तो क्या हानि है ?"

कुछ रुककर मुस्कराते हुए बंधुल बोला—"क्या विड्डभ से डर लगता है ?"

अत्यन्त गम्भीर होकर मल्लिका ने उत्तर दिया—"आप ऐसा विचार करते हैं। मुझे क्या डर ?"

"मैं परिहास कर रहा था, प्रिये !"

"आगे कभी मत कीजियेगा।"

"प्रिये ! मुझे क्षमा करदें।"

"तो श्रावस्ती ही चलिये।"

"हाँ, प्रिये ! श्रावस्ती ही ठीक है। मगध मुझे नहीं रुचता। मैं तो मगध से मल्ल-संघ को सदैव के लिए भयमुक्त करना चाहता था किन्तु···।"

"अब, आप वह सब विस्मरण के गर्भ में डाल दें। अब हमारा नवीन प्रयाण ही हमें नव-जीवन देगा।"

"प्रिये ! यह उचित ही है।"

× × ×

बंधुल-दम्पति को आया जानकर प्रसेनजित अत्यधिक प्रसन्न हुआ। देवी वसुमित्रा इस काल अत्यधिक रुग्ण थीं। वे अपनी अन्तिम यात्रा की तैयारी में थीं अतः मल्लिका उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग गई।

बंधुल को प्रसेनजित ने बुलाकर राज-सभा में अत्यधिक आदर व सम्मान दिया तथा उसको कोशल के महासेनापति का पद प्रदान करने की घोषणा की।

× × ×

मल्लिका आई है। बंधुल महासेनापति पद से विभूषित किया गया है। विड्डभ को इतनी उद्विग्नता पर्याप्त थी। किन्तु वह अवश था।

कोशल-विग्रह के हेतु उसका मन भली प्रकार परिपक्व हो चुका था किन्तु वह सहयोग व सुअवसर के अभाव में अधीर मौन लिये बैठा था।

१७

श्रावस्ती की राज-सभा लगी हुई थी, प्रसेनजित सिंहासन पर सुशोभित था। मन्त्री, सामन्त, सैन्याधिकारी सब पंक्तिबद्ध बैठे थे। विड्डभ का आसन रिक्त था।

"महाराज की जय।"

"कोशलाधिपति महाराज प्रसेनजित की जय!" के उच्च स्वर सहित—अपनी नग्न-खड्ग को वायु में तैराता तेजस्वी मल्ल-बन्धुल समक्ष उपस्थित हुआ। अपनी खड्ग को मस्तक पर लगाकर उसने प्रसेनजित को विनत-अभिवादन किया, और गर्वोन्नत हो खड़ा हो गया।

"मैं सेनापति बन्धुल का स्वागत करता हूँ।"

"मैं कृतकृत्य हुआ, महाराज!"

"क्या समाचार है?"

"महाराज की विजय-पताका फहराता चला आ रहा हूँ। बर्बर लिच्छवियों के रक्त से मेरी इस खड्ग ने एवं वहाँ की भूमि ने चिर-शान्ति प्राप्त की है। अब, कोशल की ओर लिच्छवि सैन्य-प्रयाण तो क्या मुँह करके भी खड़े न होंगे। महाराज! मैंने लिच्छवि-बर्बरता का समूलोच्छेद किया है।"

"बन्धुल, तुम-सा सेनापति पाकर कोशल गर्वित है।"

"बन्धुल-मल्ल की जय!" सामने से जयध्वनि आकर प्रसेनजित के पार हो गई।

राजसत्ता किसी का भी वैभव नहीं देख सकती। बन्धुल की जय-ध्वनि से सशंक प्रसेनजित उस विजय-उत्साह में उदासीन होकर राज-सभा विसर्जित करके उठ गया।

राजनीतिक संघर्ष, पद-लिप्सा, धार्मिक क्षेत्र में गुरु-पद-प्राप्ति की अभिलाषा, धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता, ईर्षा, द्वेष वैयक्तिक हो अथवा समूहगत समाज व वातावरण पर उसका समान प्रभाव पड़ता है। फलतः परिस्थितियाँ परिवर्तित होती हैं—अस्तित्व बनते व मिटते हैं।

तथागत श्रमण भगवान् बुद्ध के बढ़ते हुए प्रभाव से जहाँ जनता-जनार्दन स्व-कल्याण, सुख एवं शान्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहा था वहाँ मानव-स्वभावानुसार कुछ विग्रही अशान्ति का कर्कश-सुख लूटने की अभिलाषा रखते थे। ऐसे दयनीय मानव भी सर्वत्र प्राप्त हों—यह कुछ दुर्लभ तो नहीं। मगध में देवदत्त के रूप में एक महत्-जन प्रतिष्ठापित थे।

उसी भाँति आचार्य अजित केसम्बल कोशल पर कृपादृष्टि बनाये हुए थे।

अत्यन्त काला रंग, कज्जल-आकृति में और भी भयावह लगता था। भीमकाय शरीर में फरफराती श्वेत दाढ़ी काले रंग के असाम्य में मनःस्थिति के दोहरे रंग को प्रकाशित कर रही थी। कन्धे पर पड़ा पवित्र-स्वच्छ यज्ञोपवीत भी उनकी कूटनीतियों को रोक रखने में असमर्थ था।

अस्तु, विशेष मन्तव्य सहित आचार्य अजित केसम्बल ने विड्डभ को अपने निकट बुलाकर कोशल-विग्रह का गरल कंठ से उतारना प्रारम्भ किया। वे बोले—"मैंने जो गणना कर ज्योतिष से विचारा है उस आधार पर तुम कोशल के भावी शासक हो किन्तु मुझे आश्चर्य है कि तुम इतने निर्बल व शान्त कैसे हो?"

"स्पष्ट करें आचार्य!"

"तुम देखते नहीं यह गौतम राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वैशाली, कपिलवस्तु, कुशीनारा आदि महाजनपदों की समस्त राजधानियों एवं उनके शासकों पर किस बुरी तरह से छाया हुआ है। ये मूर्ख शासक अनन्त मणि, धन, स्वर्ण, मुद्रा उसके चरणों में अर्पित करते हैं। देश, देशान्तरों का धन उस पाखण्डी साधु के पैरों तले कुचला

जा रहा है। कैसा अनर्थ है ? क्या राज्य, क्या प्रजा—यह सभी को नष्ट कर रहा है। और तुम भी आँख बन्द किये यह सब देख रहे हो। अभी-अभी सेठ सुदत्त ने जेतवन को कुमारजेत से अठारह करोड़ स्वर्ण में क्रय करके इस भ्रष्ट गौतम को भेंट कर दिया। यही नहीं—उस विसाखा ने वह साम खण्ड का पूर्वाराम—मृगार—माता-प्रासाद उसी के हेतु बनवाया है। इस प्रकार कोशल का राजकोष व सेट्ठियों का धन सब उस श्रमण गौतम को अर्पित हो रहा है। इस सबके अनन्तर राज्यों में रहेगा, क्या ? राज्यों के युवक भिक्षु बनते चले जा रहे हैं। कैसा अनर्थ हो रहा है ?"

"तो, मुझे क्या निर्देश करते हैं, आचार्य ?"—विड्डभ ने व्यवस्थित होकर कुशासन पर बैठते हुए प्रश्न किया।

"तुम्हें शासक होना है। राज्य-संचालन कैसे करोगे ? बिना धन-जन के स्व-रक्षा व सैन्य-संगठन कैसे कर सकोगे ? तुम कोशल के युवराज हो . . ."

"मैं दासी-पुत्र हूँ, आचार्य !"

अजित केसम्बल ने इस प्रसंग पर अपने नेत्र बन्द कर मौनस्थ हो विचारा—इस दासी-प्रसंग पर इसे गहरी पीड़ा है और तभी प्रसेनजित के प्रति अब इसे भली प्रकार भड़काया जा सकता है।

अस्तु, पुनः वार्ता प्रारम्भ करते हुए अजित केसम्बल ने कहा—"तुम्हारे मातुल कुल का क्या हाल है ? तुम्हें उनसे सहायता लेकर कोशल की राज-सत्ता को हस्तगत करना चाहिए।"

"उसका नाम न लीजिये आचार्य ! मैं उस शाक्य कुल को समूल नष्ट करूँगा।"

"मैं समझता हूँ। तुम्हारी पीड़ा का मैं अनुभव करता हूँ। तुम कोशल के सिंहासन पर विराजो। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। और एक काम तुम्हें करना होगा,"

"वह क्या आचार्य !"

"तुम्हें इस बन्धुल-मल्ल को पथ से दूर करना होगा। इसे नष्ट करना होगा। अन्यथा इससे पार पाना बड़ा कठिन होगा। एक तो यह स्वयं उत्कट योद्धा है, दूसरे प्रसेनजित का कृपा-पात्र है। यह सेनापति ही नहीं कोशल का अमात्य भी बन बैठा है।"

"मैं उसके विनाश का यत्न करूँगा, आचार्य !"

और विडूडभ को ध्यान आया—मल्लिका ! ओह ! बन्धुल—देखूंगा।

"मुझसे समय पर गुप्त मन्त्रणा करते रहना, वत्स !"

"अवश्य महाराज !"

१८

बंधुल दम्पति बड़े सुख एवं आनन्दपूर्वक श्रावस्ती में गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करने लगे। दोनों पति-पत्नियों में प्रगाढ़ प्रेम एवं श्रद्धा थी।

देवी वसुमित्रा का देहावसान हुए कई मास व्यतीत हो चुके थे। इधर मल्लिका गर्भवती थी। बंधुल ने इस कोमलकाल में मल्लिका को पूर्णतः प्रसन्न रखने की चेष्टा की। राज-काज से निवृत्त होकर वह निरन्तर मल्लिका की शुश्रूषा किया करता। मल्लिका—बंधुल सा पति पाकर परम पुलकित थी। साथ ही अपने भावी शिशु के चित्रों को जब वह कल्पना-लोक में उतारती तो अतिरेक में विह्वल हो जाती। वात्सल्य की पूर्वचेतना में वह प्रतिक्षण आप्लावित रहती।

यह प्रसिद्ध है कि गर्भकाल में स्त्री को नाना प्रकार की नवीन इच्छाएँ बलवती हो उठती हैं। किसी को विशेष पदार्थ भोजन करने की इच्छा होने लगती है। कोई नाना प्रकार के, विभिन्न रंगों के वेश धारण करती है। इस काल में विभिन्न इच्छाएँ जागृत होने पर ऋतु के विपरीत फल-फूल, पदार्थ की चाहना उत्पन्न होती है जो यथाशक्ति पूर्ण करना परमावश्यक हो जाता है।

मल्लिका को भी विचित्र इच्छा ने घेरा। उस गर्भावस्था में मल्लिका ने वैशाली के कमल सरोवर का जल पीने की कामना की और अपनी वह दोहदेच्छा उसने अपने पति वीरवर बंधुल पर प्रकट की। बंधुल तुरन्त तत्पर हो गया।

बंधुल ने मल्लिका को अश्व-रथ पर बैठालकर वैशाली की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मल्लिका व बंधुल परम आनन्दित हो प्राकृतिक सुषमा से हर्षोत्फुल्लता का अनुभव करते वैशाली की ओर बढ़ते जा रहे थे। बंधुल-मल्लिका से भान्ति-भान्ति की विनोद-वार्ता करता। वीरता

की गाथाय सुनाता। झगड़ता।

मल्लिका कहती—"मुझे अपनी-सी नहीं—तुम्हारे-सा वीर पुत्र चाहिये।"

बंधुल कहता—"मैं तुम्हारे अनुरूप एक सुन्दर पुत्री की कामना करता हूँ!"

मल्लिका कहती—"तुम्हारी कामना से क्या होता है? मैं जो चाहूँगी वह होगा। देखते नहीं वैशाली के कमल-सरोवर का जल पीने की इच्छा कौन कर सकता है? तुम्हारी पुत्री नहीं—मेरा पुत्र ही कर सकता है।"

और दोनों मुकुलित हो खिलखिला पड़ते।

× × ×

वस्तुत: बंधुल का वह अभियान एक ऐतिहासिक अभियान था। कहने को तो वह स्वपत्नी की दोहद-इच्छा-पूर्ति के हेतु था किन्तु वह कार्य स्वत: अत्यधिक दु:सह था।

वैशाली के लिच्छवि राजकुमारों सहित पाँच सौ वीर इस कमल सरोवर की रक्षा करते थे। इस कमल-सरोवर का जल केवल राज्याभिषेक के अवसर पर काम में लाया जाता था।

अत: पाँच सौ उद्‌भट वीरों का सामना करने का पूर्व-साहस कर बंधुल वैशाली की ओर अकेला चल पड़ा था। उसे अपनी वीरता पर पूरा भरोसा था। मल्लिका भी अपने पति की वीरता पर गर्व का अनुभव कर अश्व-रथ पर बैठी वैशाली की ओर चली जा रही थी। गर्भावस्था के कारण उसकी आकृति की पीत-रक्त-धवल कान्ति और मुखरित हो गई थी। उसके अंग-अंग में मांसलता का द्विगुणित भार उसे अधिक आकर्षक बना रहा था। रथ में बैठे-बैठे अनेक बार वह अपनी दृष्टि शून्य में टिका लेती। उसके सुविशाल नेत्रों में शिशु की चेतना व कर्ण-रन्ध्रों में उसकी खिलखिलाहट प्रवेश कर उसे अपार आनन्दानुभूति प्रदान करती।

अन्ततः वैशाली के बाह्य गोपुरों को पार कर बंधुल-मल्लिका का रथ कमल-सरोवर की ओर बढ़ चला।

दूर से वैशाली के उस कमल-सरोवर को देखकर मल्लिका अत्यधिक हर्षित हुई किन्तु उसके चतुर्दिक् उन रक्षकों की पंक्ति देखकर वह रोमांचित हो उठी।

बंधुल में रक्षक-पंक्ति देखकर, अनायास, उत्तेजना एवं स्फुरण का प्रादुर्भाव हुआ। वह धनुर्धर बाण व धनुष लेकर हँसता हुआ रथ से उतरा।

मल्लिका पुलकित, उत्कंठित, उद्विग्न, गर्वित-सी रथ पर बैठी रही।

और बंधुल के बाणों का जाल रक्षक-पंक्ति में छाता चला गया। भौंचक से—वे पाँच सौ सरोवर-रक्षक बंधुल के आक्रमण को सहन न कर सके। बंधुल ने उन पाँच सौ योद्धाओं को परास्त कर रथ की ओर मुँह फेरा।

दूर बैठी मल्लिका हर्ष से आप्लावित हो रही थी। विहँसित मुद्रा में उछलता हुआ बंधुल मल्लिका के समक्ष आया! हाथ बढ़ाकर उसने मल्लिका को रथ से उतारा। कोमलांगी मल्लिका—गर्भ-भार से दबी—मन्द पग टेककर बंधुल के समक्ष आई और गर्व से उसने बंधुल के चरण चूम लिये।

बंधुल-मल्लिका को साथ ले—वैशाली के उस कमल-सरोवर के निकट जा खड़ा हुआ। सरोवर की सुषमा अपार थी। श्वेत-संगमरमर की चमकदार सीढ़ियाँ उस विशाल सरोवर के चारों ओर बनी हुई थीं। एक विशाल सुरभित निकुंज सरोवर के चारों ओर विस्तार पा रहा था। कानन की पुष्प-क्यारियों से नाना प्रकार की सुवास फैलकर वातावरण को नैसर्गिक-चेतना प्रदान कर रही थी। मल्लिका ने एक दृष्टि में सरोवर को निहारा तब बंधुल को।

"प्रिये! लो—यह है वैशाली का पद्म सरोवर। जी चाहे जल पियो। जी चाहे स्नान करो। यह केवल राज्याभिषेक के उपयोग में आता है।

आज मैं अपनी प्रिया का अभिषेक इसी जल से करूँगा। हः हः—यह वैशाली के वैभवशाली-गणराज्य द्वारा रक्षित पद्म-सरोवर है। मल्लिके! देखो, वे पाँच सौ रक्षक-वीर या तो भूमिसात् हैं या भागे जा रहे हैं," कहते-कहते बंधुल ने वैशाली के उस कमल-सरोवर के किनारे मल्लिका को आलिंगन-पाश में आबद्ध कर लिया—और उसके अधरों—कपोलों पर चुम्बन-वृष्टि करते हुए वह बोला—"मेरे हृदय की सम्राज्ञी! आगे बढ़ो। इस सरोवर के पावन जल से अपने को अभिषिक्त करो।"

मल्लिका ने बंधुल के पैर छुये और सरोवर के जल में उतर गई। अपनी सुकोमल उँगलियों से उसने जल में लहरें निकालकर उसे प्रकंपित किया और हाथों में जल भरकर खिलखिलाते हुए उसने बंधुल के मुँह पर फेंका।

बंधुल उस नीरवता में उच्चहास सहित कह उठा—"आप्यायित हुआ, प्रेयसि! आज मेरा प्रेम सार्थक हुआ। आज मेरा वीरत्व सार्थक हुआ—मल्लिके!"

मल्लिका ने भली प्रकार उस जल से अपने नैसर्गिक गात्र को अभिसिंचित किया। जी भर जल पिया, पूर्ण तृप्ति पाई और बंधुल के पार्श्व में आकर मदिर रूप को पति पर आरोपित कर बोली—"धन्य हुई मेरे देवता! प्रस्थान कीजिये!"

बंधुल मल्लिका को पार्श्व में लेकर आगे बढ़ा और रथ पर आ बैठा।

× × ×

रथ पर आकर उसने अश्वों की पहली डोर खींचकर उन्हें सतर्क किया ही था कि मल्लिका उच्च स्वर में चीख उठी—"वह बाण—पीछे देखो सैनिक समूह उमड़ता चला आ रहा है।

निमिष मात्र में बंधुल ने रथ को आगे बढ़ाकर सुरक्षित किया और स्वयं धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर डट गया।

सहस्रों लिच्छवियों का बंधुल ने अकेले ही सामना किया। उसने

ऐसे कौशल से बाण चलाये कि विरोधी वीर दो-दो खंड होगये। आश्चर्य था कि उन्हें अपनी उस स्थिति का पता तब चला जब उन्होंने अपने कमरबन्द खोले।

इस प्रकार वैशाली के कमल-सरोवर के कठोर संरक्षकों को परास्त कर एवं लिच्छवि सैन्य-समूह पर विजय-पताका फहराकर बंधल ने श्रावस्ती की ओर प्रयाण किया।

× × ×

बंधुल की यह शौर्य-पराक्रम सहित विजय-चर्चा कोशल में ही नहीं दूर-दूर तक फैली। प्रसेनजित ने उसे अनेक प्रकार से सम्मानित किया किन्तु बंधुल की बढ़ती कीर्ति देखकर प्रसेनजित अत्यन्त सशंकित होता जाता था।

अस्तु, वैशाली सरोवर के इस अभियान के अनन्तर प्रसेनजित ने बंधुल को काशी प्रान्त का प्रशासक बनाकर उसे काशी भेज दिया।

१६

आज शारदीय पूर्णिमा थी। निरभ्र-नील-गगन में राकेश अपनी पूर्ण आभा प्रस्फुटित कर रहा था। तारक-मण्डल की विद्युत्छटा सर्वत्र प्रसारित थी। उस विस्तृत चन्द्रिका में समस्त जगत् ओत-प्रोत हो रहा था। शीतल मन्द पवन मलयगिरि से बहकर आते हुए सर्वत्र मदिर सुवास से उन्माद बिखेर रहा था। कौशाम्बी के राज-प्रासाद के श्वेत-संगमर्मर, स्फटिक-मणि से चमक रहे थे। प्रासाद के चतुर्थ-खण्ड पर अन्तःपुर से लगी हुई एक बारादरी बनी हुई थी। राजा उदयन अपनी रूप-गर्विता नव-पत्नी मागन्धी सहित वहाँ केलि-रत हो शरद-चन्द्रिका का सुख लूट रहा था। समक्ष मदिरा के स्वर्ण-पात्र एक स्वर्ण-चौकी पर रक्खे हुए थे। मागन्धी अपने मदिर रूप के अर्ध-नग्न श्वेतांग को मदिरा की मदहोशी में और उघाड़ती जाती थी तथा उदयन पर अपने यौवन-भार को अनेक बार आरोपित कर पुनर्वार उसकी वर्जना पर भी माध्वीक से स्वर्ण-पात्र भर देती थी जिसे उदयन निरन्तर पीता चला जाता था। दो यवन दासियाँ—अत्यन्त सलोनी—जिनके वक्ष-भाग एवं नितम्ब तथा घुटनों तक के भाग रेशमी टुकड़ों से ढके थे तथा शेष गौरांग नग्न थे—मयूर-पुच्छ के पंखे झल रही थीं। इन पंखों की मूठ स्वर्ण व रत्नों से मढ़ी हुई थी।

तभी मागन्धी ने अपनी पतली उँगलियों को हवा में डुलाते हुए प्रस्ताव किया—"महा··· राज, आ··· ज तो··· आ आ··· प की वीणा का वादन सुनने की इच्छा जा··· गृत हो ·····ओ··· रही-ई···है।"

"केवल यही ··· इच्छा ?"

मुस्कान खींचकर श्वास को कंठ में दाबकर मागन्धी ने वक्ष-भाग को फुलाते हुए कहा—"इस क्षण इतनी ही···"

"दासी—पद्मावती के मन्दिर से मेरी वीणा उठा लाओ," कहकर उदयन मागन्धी की कदली-जंघा का सिरहाना लगाकर—पलक मूँद—लेट रहा।

एक दासी अपने हाथ का पंखा एक प्रस्तर स्तम्भ के सहारे टिकाकर चली गई। दूसरी दासी रोमांचित हो—कभी उस युगल—कभी अपने यौवन-उभार—तो फिर शून्य में दृष्टि टिकाकर यथावत् पंखा झलती रही।

मागन्धी ने झुककर अपने अधर उदयन पर टिका दिये और जब उसने उन्हें हटाया तो दासी ने वीणा लाकर समक्ष रख दी। वीणा देखकर तुरन्त ज्यों मागन्धी से मदिरा का प्रभाव हट गया। वह झपटकर अपने को व्यवस्थित करती हुई वीणा के निकट आई और दूसरे ही क्षण तीव्र स्वर में चीख् उठी—"महाराज ! वीणा में सर्प !"

उदयन छटककर सीधा हो गया। तभी मागन्धी ने द्वेषभरी फूत्कार प्रकट की—"सहपत्नी का इतना द्वेष · · ·।"

"ओ ! पद्मावती · · · तेरा यह कुकृत्य", कहकर उदयन ने दाँत भींच लिये। "अभी तेरा वध करता हूँ।"

"शान्त ! मेरे नाथ ! शान्त ! आवेश में यों कुछ अनुचित कर उठना अनुपयुक्त होगा। फिर देखियेगा," कहकर मागन्धी ने उदयन को शान्त करने की सफल चेष्टा की। वह विचार कर रही थी—इस उत्तेजक वायुमण्डल में रसास्वादन से वंचित रहकर क्यों वह उस रात्रि में ही प्रासाद में बवंडर उत्पन्न होने दे।

अतः दासियों को संकेत से बिदा कर मागन्धी उस नीरवता में झूम गई।

दासी वीणा वहाँ से उठाकर चली गई।

प्रातःकाल से ही गत रात्रि की सर्प-घटना की चर्चा प्रासाद में प्रचारित हो गई। उदयन अत्यधिक क्रोधावेश में पद्मावती के प्रासाद

की ओर बढ़ा। उदयन उस ओर जा ही रहा था कि रानी वासवदत्ता ने वेगपूर्वक आकर कहा—"महाराज ! आपको क्या हो गया है ? आवेश में आप विवेक को इतना भूल जावें—यह सर्वथा अनुचित है। कम से कम आप से यह सब अपेक्षित नहीं है। यह देखिये ! इस दासी को मैं पकड़कर लाई हूँ। इसने सब भेद प्रकट कर दिया है। यह कहती है कि मागन्धी के कहने पर ही इसने वीणा में सर्प को छिपाया था और आदेश पर पूर्व-निश्चयानुसार पद्मावती के मन्दिर से वीणा लाकर इसी ने दी थी।"

तत्क्षण प्रासाद के प्रहरियों व दासियों ने दौड़कर सूचना दी—छोटी महारानी के प्रासाद में आग लग रही है।

सभी उस ओर दौड़ पड़े। सर्वत्र यह विदित हुआ कि मागन्धी प्रासाद के अग्नि-कांड में भस्म हो गई।

× × ×

उदयन अत्यधिक लज्जित होकर पद्मावती से अनेक प्रकार से क्षमा-याचना करता रहा। पद्मावती ने पूर्ण सरलता व शान्तिपूर्वक उदयन से कहा—"महाराज ! मुझे अपने धर्म पर अटूट विश्वास है। तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध की मैं परम उपासिका हूँ। मुझे अपनी पातिव्रत आस्था पर पूरा भरोसा था। मैं अभय थी। उस पर भी बहन वासव-दत्ता का परम-स्नेह मुझे प्राप्त था। मैं उस उच्छृंखल मागन्धी की भाँति नहीं जो गुणों से नहीं रूप से मानव-हृदय आकर्षित करती हैं।"

× × ×

उदयन से किसी ने कहा—मागन्धी जीवित है। किसी ने सूचना दी कि उसे उसने राजगृह में देखा है। किसी ने व्यक्त किया मागन्धी वैशाली में है। अन्ततः एक अनुचर ने आकर सूचना दी—मागन्धी काशी में है। किन्तु उदयन उसकी ओर से पूर्णतः उदासीन था। उसने उसे मृत ही मान लिया था।

इधर श्वसुर-गृह से निरन्तर दुःखद समाचार आ रहे थे। मगध-विग्रह से उदयन भी अत्यधिक क्षुब्ध था। राजगृह में उसके श्वसुर सम्राट् बिम्बसार के प्रति अजातशत्रु के दुर्व्यवहार के समाचारों से उसने अनेक बार विचार किया कि कोशल से सम्बन्ध स्थापित कर कुछ ऐसा उपाय किया जावे कि अजातशत्रु की बढ़ती हुई उद्दण्डता समाप्त हो। उसने तो मगध पर आक्रमण करने की बात तक सोच ली। किन्तु पद्मावती उसे निरन्तर वर्जित करती रही।

× × ×

महाश्रमण भगवान् गौतम बुद्ध अवन्ति की ओर से विहार करते हुए कौशाम्बी आये हुए थे। उदयन ने इस बार अत्यन्त भक्तिपूर्वक भगवान् के चरणों में शीश झुकाया। अपने दोष उन पर प्रकट कर उनसे क्षमा-याचना की। करुणा-मूर्त्ति भगवान् ने उसे अनेक उपदेश देकर सदैव सुपथ पर चलकर शुद्ध-बुद्धि से आचरण करते रहने का वचन लिया।

तदनन्तर भगवान् बुद्ध ने राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया।

२०

मगध के वृद्ध सम्राट् बिम्बसार अपनी राजसभा में विराजमान थे। राजसभा की परम्परा के अनुसार महामात्य, अन्य अमात्य, गण संवाहक सामन्त एवं सेनापति आदि यथास्थान आसन ग्रहण किये थे। चारों ओर प्रहरीगण अपने ऊँचे-ऊँचे भाले उठाये, शरीर पर वर्म धारण किये, लोहे के टोप पहने सतर्क भाव से पहरा दे रहे हैं।

सभा-भवन अत्यन्त भव्य व कलात्मक था। सभा-मंडप की विशाल छत पर पच्चीकारी का अद्वितीय काम हो रहा था। भाँति-भाँति के चित्र उस पर अंकित थे। छत व खम्भों पर स्वर्ण-पत्र चढ़े हुए थे। राज-सिंहासन तथा अन्य पीठिकाएँ स्वर्ण-रत्नों से जगमगा रही थीं। सभाभवन देखकर मगध का विशाल वैभव, उसकी सांस्कृतिक परम्परा एवं साम्राज्य-प्रभुता स्पष्ट भासित होती थी।

सभाभवन के बाह्य प्रांगणों में यवन-प्रहरी अश्वों पर सवार होकर भाले उठाये पहरा दे रहे थे।

सम्राट् बिम्बसार अत्यन्त चिन्तित मुद्रा में बैठे थे। महामात्य वर्षकार एवं अन्य जन भी सम्राट् को चिन्तित देखकर मौन बैठे थे। लग रहा था जैसे राज-कार्य कुछ काल के लिए स्थगित कर दिया गया हो।

गतसंध्या ही अजातशत्रु चम्पा से लौट आया था। तुरन्त ही सम्राज्ञी चेलना ने सम्राट् के पास संदेश भेजा कि अजातशत्रु का अवि-लम्ब राज्यारोहण समारोह सम्पन्न किया जावे।

मगध की राजसभा की इस चिन्तित दशा के क्षणों में अनायास दौवारिक ने सूचना दी—"महाराज! तथागत श्रमण भगवान् बुद्ध राज-सभा की ओर पधार रहे हैं।"

सम्पूर्ण राज-सभा में एक कंपन उत्पन्न हुआ। सभी अपने-अपने

आसनों पर हिलकर पुनः स्थिर भाव से बैठ गये।

"दौवारिक ! श्रमण भगवान् को इस ओर का मार्ग प्रदर्शित करो," कहकर सम्राट् बिम्बसार उठ खड़े हुए। उनके आगे बढ़ते ही राजसभा के सब उपस्थित जन भी उठ खड़े हुए और महामात्य वर्षकार सहित उनके साथ हो लिये।

आगे बढ़कर सम्राट् ने श्रमण भगवान् बुद्ध का सम्मान किया। उनके साथ उनके प्रमुख शिष्य सारिपुत्त, महा मौग्गलायन एवं आनन्द भी थे।

पुनः सभा यथावत व्यवस्थित हो गई। श्रमण भगवान् बुद्ध को सम्राट् ने विशेष अनुरोध कर उच्चासन पर प्रतिष्ठित किया।

तभी भगवान् बुद्ध ने आशिर्वचन प्रकट करने के अनन्तर सम्राट् को सम्बोधित कर प्रश्न किया—"युवराज अजातशत्रु कहाँ हैं ?"

"करुणामूर्ति ! अजातशत्रु कल ही चम्पा से लौटा है।"

"युवराज को भी सभा-भवन में बुलावें, मगधाधिपति !"

"दौवारिक ! अजातशत्रु को सूचना दो कि महाश्रमण भगवान् बुद्ध सभा-भवन में विराजमान हैं, उसकी उपस्थिति चाहते हैं।"

"सम्राज्ञी नन्दश्री, कोशल देवी एवं चेलना देवी सहित अन्य राज-रमणियों को भी बुलावें, सम्राट् !"

आदेश सुनकर दौवारिक चला गया।

× × ×

अजातशत्रु ने आकर महाश्रमण भगवान् के चरणों की तीन बार नत-मस्तक हो वन्दना की। तब चम्पा से लौटने पर प्रथम बार ही वह बिम्बसार के सामने आया था अतः अलस-उपेक्षा में केवल व्यवहार तथा लोक-लज्जावश सम्राट् को नमस्कार कर तदनन्तर समस्त राजसभा का अभिवादन स्वीकार कर वह आसन पर जा बैठा।

राजकुल की समस्त महिलाएँ—महाश्रमण का आगमन सुन राजसभा में बने महिलाओं के पृथक् स्थान पर आ बैठीं और दूर से ही भगवान्

को अभिवादन कर प्रसन्न हुईं। अस्वस्थता का बहाना कर चेलना नहीं आई।

भगवान् को आया जान राजगृह के जन ठट्ठ के ठट्ठ राज-भवन की ओर दौड़ पड़े।

मगध की उस महती राजसभा में तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध ने उपदेश दिया—

"सम्राट्! सब कुछ क्षणिक तथा दुःख रूप है। संसार के क्षणिक पदार्थों की तृष्णा ही दुःखों का कारण है। उपादान सहित तृष्णा का नाश होने से ही दुःखों का नाश होता है। हृदय से अहंभाव एवं राग-द्वेष की सर्वथा निवृत्ति होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है।

"सत्य विश्वास, नम्र वचन, उच्च लक्ष्य, सदाचरण, सद्वृत्ति, सद्गुणों में स्थिति, बुद्धि का सदुपयोग तथा सद्ध्यान से मानव-कल्याण अपेक्षित है।

"संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार भी नहीं।

"वाक् संयम—विश्व-मैत्री की पहली सीढ़ी है।

"विश्वभर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा है, जो प्राणि-मात्र में समदृष्टि रखती है।"

हाथ जोड़कर आसन से उठते हुए मगधाधिपति बिम्बसार ने विनत हो कहा—"कृतकृत्य हुआ, भगवन्!"

"विराजिये राजन्! मैं स्थान-स्थान पर भ्रमण करता, जीवात्मा के कल्याण का उपदेश देता आ रहा हूँ। सर्वत्र हिंसा, दम्भ, छल, प्रपंच, कपटाचरण, राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण शत्रुता, युद्ध, घृणा, ईर्षा फैल रही है।

"गत चातुर्मास के अवसर तथा निरन्तर मेरे कानों में मगध की अशान्ति के समाचार सुनाई पड़े हैं।

"अतः मेरा अनुरोधसहित प्रस्ताव है कि आप अब इस शासन-भार

को अपने पुत्र युवराज अजातशत्रु को देकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करें।"

सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था। यकायक महाश्रमण भगवान् बुद्ध के प्रस्ताव को सुनकर सम्राट् बिम्बसार सहित सभी के मन आन्दोलित हो उठे।

"यह अत्यन्त गुरुतर कार्य है भगवन्!" सम्राट् बिम्बसार ने पूर्णतः स्थिर-भाव से प्रकट किया। उस समय उनकी भंगिमा में मगध का वैभव प्रतिष्ठित हो आया था।

"इस कथन में, सम्राट्! तुम्हारा राजसत्ता के प्रति मोह प्रतिभासित होता है। यह अनुचित है। जिस वस्तु को कभी न कभी विवश होकर अनिवार्य रूप से छोड़ना पड़े उसे स्वयं ही अपने आप छोड़ देने में बुद्धिमत्ता है, राजन्! सांसारिक भोगों से न तो कभी मन भरता है और न कोई उनको सदा ही अपने पास रख सकता है। मृत्यु में सबका वियोग सम्मिलित है। अतः यह उपयुक्त अवसर है—मगधाधिपति बिम्बसार! कि अजातशत्रु को राजसिंहासन समर्पित कर दो," कहते हुए भगवान् बुद्ध अपनी करुणामय-शान्त-दृष्टि को राजसभा में चतुर्दिक् फेरकर सम्राट् बिम्बसार के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

सर्वत्र गहन मौन स्थापित था। सम्राट् बिम्बसार काष्ठवत् आसन पर बैठे विचार-मग्न हो गये।

तभी अनायास समक्ष आकर सम्राज्ञी कोशल देवी ने मगध की उस भरी हुई राजसभा के सम्मुख महाश्रमण भगवान् बुद्ध को तीन बार झुककर अभिवादन किया। भगवान् ने हाथ उठाकर सम्राज्ञी को आशीर्वाद दिया।

सम्राट् बिम्बसार की ओर घूमकर उनको सम्बोधित कर अत्यन्त क्षीणस्वर में कोशल देवी ने कहा—"महाराज! भगवान् का आशीर्वाद प्राप्त कर आप इसी क्षण मगध की राजसत्ता पुत्र अजात को समर्पित करें। ऐसा मेरा आपसे विनम्र निवेदन है।"

सम्राट् बिम्बसार के नेत्रों में आँसू झलक आए। आकंठ द्रवित हो मगधाधिपति ने खड़े होकर व्यक्त किया—"भगवान् के सदुपदेशों को सुनकर मैं आश्वस्त हुआ! भगवान् के निर्देशानुसार मैं मगध का शासन-भार युवराज अजातशत्रु को सहर्ष समर्पित कर वानप्रस्थ ग्रहण करने की घोषणा करता हूँ।"

सम्राज्ञी कोशल देवी राज-सभा से हटकर महिलाओं के मध्य पुनः जा बैठीं।

मगध की राजसभा करतल-ध्वनि से गुँजायमान होती रही। तदनन्तर पुनः मौन स्थापित हो गया।

"मैं सम्राट् को इस हेतु बधाई देता हूँ।" महाश्रमण भगवान् बुद्ध ने सस्मित प्रकट किया।

"केवल बिम्बसार कहें, भगवन्!" हाथ जोड़कर बिम्बसार ने तथा-गत भगवान् से अनुरोध किया।

अजातशत्रु प्रारम्भ से अन्त तक चित्रवत् बैठा वह सब देखता-सुनता रहा। उसकी मौन-निश्चल आकृति में आन्तरिक विडम्बना के भाव निरन्तर अंकित व विलीन होते रहे।

तभी तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध आसन से उठे और जाने को उद्यत हुए।

सम्पूर्ण राजसभा नमित हो हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। भगवान् हाथ उठा—आशीर्वाद देते हुए बिहार कर गये!

× × ×

अजातशत्रु के शासक होने का समाचार राजगृह तत्पश्चात् समस्त मगध साम्राज्य ने अत्यन्त उदासीन भाव से सुना। निरीह-पशु की सी प्रतिक्रिया लेकर जनता ने अपनी उपेक्षा को मौन होकर दाब लिया।

दूसरे दिन बिम्बसार पत्नी कोशल देवी को साथ लेकर वन चले गये।

वन में बिम्बसार ने तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। वन के शान्तिमय जीवन से बिम्बसार व कोशल देवी अत्यन्त प्रसन्न थे। समस्त सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाकर बिम्बसार व कोशल देवी मगध की प्रतिपल उन्नति की कामना करते रहे।

किन्तु देवदत्त की कुमंत्रणाओं से प्रभावित रानी चेलना एवं अजातशत्रु को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ। बिम्बसार विशेषकर कोशल देवी के प्रति वे सदैव संदिग्ध बने रहते थे। इसी दुर्विनीति से वशीभूत होकर अजातशत्रु ने वन में भी बिम्बसार के चारों ओर पहरा बैठाल दिया।

कुछ काल पश्चात् जब बिम्बसार को उस स्थिति में भी बन्दी होने का पता चला तो वे अत्यन्त क्षुब्ध हुए। किन्तु उनके मर्म पर आघात तब पहुँचता जब अजातशत्रु भिक्षुओं व याचकों को—जिन्हें बिम्बसार दान-दाक्षिण्य से सदैव प्रसन्न करते थे—अपमानित कर लौटा देता था।

इस कष्ट को देखकर कोशल देवी ने बिम्बसार से कहा—"महाराज! आप किंचित् भी क्लेश न करें। अभी मेरे मायके से मिली काशी प्रान्त की आय का स्वामित्व सुरक्षित है। उस पर किसी का भी अधिकार नहीं है। आप उस आय से इन याचकों को प्रसन्न करें। मुझे मगध-राज्य की एक कौड़ी नहीं चाहिए। हमारे उपभोग के लिए उतनी आय ही पर्याप्त है।"

"पुनः क्यों झगड़े मोल लोगी क्षेमा!" बिम्बसार ने आर्द्रता के स्वर में कहा—

"वह मैं कर लूँगी देव!"

× × ×

"महाराज! मगध से एक व्यक्ति आया है। आपसे भेंट करना चाहता है। अपना नाम जीवक बतलाता है," दौवारिक ने राजसभा में आकर प्रसेनजित से कहा—

"उसको बुलाओ।"

तथागत भगवान् बुद्ध के परम भक्त, सम्राट् बिम्बसार के कञ्चुकी

एवं उनके परम अनुगत, मगध-सत्ता-परिवर्तन से अत्यन्त विक्षुब्ध जीवक ने राजसभा में प्रवेश कर महाराज प्रसेनजित को अभिवादन किया। प्रसेनजित के संकेत पर उसने आसन ग्रहण कर लिया।

"कहो जीवक ! क्या समाचार है ?"

"महाराज ! अत्यन्त दुःखदायी सूचनाएँ हैं। महाराज बिम्बसार—कोशलदेवी सहित—अजातशत्रु के कठोर बन्धनों एवं अपमानों को सहकर तपोवन में प्रवास कर रहे हैं।"

"यह कैसे ?" अत्यन्त कौतूहल में प्रसेनजित ने प्रश्न किया।

"तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध के निर्देशानुसार सम्राट् ने मगध की सत्ता अजातशत्रु को हस्तान्तरित कर दी।"

"ओह !" प्रसेनजित ने दुःखी होते हुए व्यक्त किया।

"महाराज ! कोशल देवी की व्यवस्था एवं व्ययार्थ काशी प्रान्त की आय अब मगध को न जाकर कोशल देवी को मिलनी चाहिए।" जीवक ने स्पष्टतः कहा।

"जीवक ! यह पूर्णतः न्याय-संगत है। काशी प्रान्त मैंने अपनी बहन को आँचल में समर्पित किया है। यह उसी की सम्पत्ति है।...... महामात्य ! तुरन्त काशी के दण्डनायक को राजाज्ञा भेजी जाय कि भविष्य में सम्पूर्ण आय कोशल देवी को दी जावे। मगध का उस पर कोई अधिकार नहीं है। अजातशत्रु को उसके अन्यायों का दण्ड प्राप्त ही होगा।" प्रसेनजित ने उग्रतापूर्वक राजसभा में घोषणा की।

"यदि, मगध की राजसत्ता उसके उपयुक्त अधिकारी अजातशत्रु को प्राप्त हो गई तो इसमें क्या अनर्थ हो गया," युवराज विड्डभ ने स्वयमेव कह डाला।

प्रसेनजित ने एक तीक्ष्ण दृष्टिपात विड्डभ पर किया।

उसी अवज्ञासहित विड्डभ ने पुनः व्यक्त किया—"यदि सम्राट् बिम्बसार ने राजसिंहासन से चिपके न रहकर पूर्व ही सत्ता अपने पुत्र को हस्तान्तरित कर दी होती तो इतने उत्पात क्यों होते ?"

"विड्डभ, उद्दण्ड राजकुमार सावधान !" प्रसेनजित ने उत्तेजित होकर कहा।

प्रतिफल का बिना विचार किए विड्डभ व्यंग्यात्मक एवं अवज्ञापूर्ण हास सहित बोलता रहा—"कोशल को भी ऐसे ही परिवर्तन की आवश्यकता है।"

"विड्डभ, निर्लज्ज, उच्छृङ्खल—सैनिको ! बन्दी बना लो इस राज-द्रोही को। अधम ! इस क्षण से मैं इसे एवं इसकी माता शक्तिमती को उनके पदों से अपदस्थ करता हूँ," क्रोधावेश में लाल होते हुए प्रसेनजित ने गर्जना की।

सैनिक तुरन्त आगे बढ़ आये।

राजसभा में पूर्णतः निस्तब्धता विराज गई।

तभी जीवक ने सरलतापूर्वक कहा—"अविवेक में किये गये राज-कुमार के व्यवहार को क्षमा प्रदान करें महाराज ! नवीन रक्त में इतनी बौखलाहट स्वाभाविक ही है।"

प्रसेनजित ने तनिक शान्त होकर विचार किया—किन्तु विड्डभ की गतिविधियों को देखते हुए इसके विषाक्त दंश तोड़ ही देने चाहिएँ।

अतः पुनः उत्तेजित होकर प्रसेनजित ने कहा—"मैं इसको राज्य निष्कासन की आज्ञा देता हूँ।"

विड्डभ अवहेलनासहित आसन त्यागकर चला गया।

—:o:—

२१

"मल्लिका, मैं आज श्रावस्ती छोड़ रहा हूँ।"

"ऐसा क्यों ? राजकुमार...।"

"कोशल-नरेश ने मुझे निष्कासन प्रदान किया है।"

"आपके पिता ने—किस अपराध में ?"

"यह वे जानें।"

"याचना कीजिये कि वे आपका अपराध क्षमा कर दें।" कहते-कहते मल्लिका ने राजकुमार के समक्ष ताम्बूल-पात्र बढ़ा दिया—"स्वीकार करें, राजकुमार।"

"मैं अब राजकुमार नहीं, राह का भिखारी हूँ। याचक हूँ। तुमसे भी कुछ याचना करने आया हूँ।"

"आज्ञा करें।"

"तुम्हारे स्नेह का इस पल भी याचक हूँ, देवि !"

"राजकुमार व्यवस्थित होकर वार्तालाप करें। मैं अब मल्लिका नहीं। वीरवर बन्धुल की पत्नी हूँ।"

"यदि तुम स्वीकार करो तो....।"

"सावधान विड्डभ ! कुछ कटु हो इसके पूर्व यहाँ से चले जाओ—निकल जाओ यहाँ से इसी क्षण।" मल्लिका ने कड़ककर विद्युत् की भांति उठ खड़े होते हुए कहा।

"मैं चला जाता हूँ किन्तु सूचना दिये जाता हूँ कि दुर्भाग्य के लिए तत्पर हो जाओ—मूर्खा स्त्री।"

"यह अपनी माता शक्तिमती से जाकर व्यक्त करो। तुम्हारे सहित जिनका भी दुर्भाग्य जाग चुका है।"

किटकिटाते हुए विड्डभ मल्लिका के निवास के बाहर हो गया। बन्धुल—काशी का शासक होकर गया है। मल्लिका यहीं श्रावस्ती में

अकेली है। किन्तु कितनी साहसिक है—इसका भान विड्डभ जैसे उद्दण्ड को कदापि न था।

× × ×

न्याय से उच्छृंश्रृखल विड्डभ ने श्रावस्ती छोड़ दी। वह स्थान-स्थान पर भटकता फिरा। उसने अन्ततः लूटमार करना प्रारम्भ कर दिया। अब वह सोच रहा था—उसे धन चाहिये। उसे सहायता चाहिये। ऐसा संगठन चाहिये जिसके आधार पर वह कोशल पर चढ़ाई कर सके।

उसने दृष्टि दौड़ाई। कपिलवस्तु के शाक्य कोशल के शत्रु हैं किन्तु वह स्वयं भी उनका शत्रु है। तो शाक्यों के यहाँ वह कदापि न जावेगा।

तब उसने ध्यान किया वैशाली के लिच्छवि, मगध का अजातशत्रु, कौशाम्बी का उदयन—तीनों कोशल पर खार खाये बैठे हैं। तीनों को मिलाकर अथवा पृथक् ही सहायता प्राप्त की जा सकती है और सहायता प्राप्त हो गई तो श्रावस्ती की राजसत्ता...और...और मल्लिका।

और आचार्य ने कहा था—मल्ल-बन्धुल, इस कंटक को दूर करना होगा। अवश्य करना होगा। बन्धुल के नाश के बिना कोशल अथवा मल्लिका दोनों पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं। वह भी देखा जावेगा।

आचार्य अजित केसम्बल से भेंट हो जाती तो उनसे सहायता प्राप्त करना अभीष्ट था। उसे ज्ञात हुआ आचार्य वैशाली की ओर ही गये हैं। अतः विड्डभ ने वैशाली की ओर प्रस्थान किया।

मगध, कोशल, वत्स तथा काशी जनपदों के मध्य वृजि-संघ, अष्ट-कुल संयुक्त लिच्छवियों की वैभवपूर्ण ध्वजा फहराता पूर्वी भारत का एक सबल व सम्पन्न महाजनपद था। वृजि-संघ की राजनैतिक एवं सामरिक समृद्धि की टक्कर में केवल मगध प्रतिद्वन्द्विता में प्रतिपल सजग रहता था अन्यथा अन्य तत्कालीन प्रसिद्ध महाजनपदों का प्रताप

लिच्छवियों की ओर निहारने में सर्वथा काँप जाता था।

इधर कोशल राज्य को मल्ल-बन्धुल का वीरत्व प्राप्त होने के अनन्तर दो बार मल्ल-बन्धुल ने ही वृजि-संघ के लिच्छवियों पर दीर्घ-काल के अनन्तर चोटें की थीं। इससे लिच्छवि जनपद कोशल पर किटकिटा रहा था। प्रथम तो सीमान्त में बन्धुल ने निरीहतापूर्वक लिच्छवियों का युद्ध-बल-मद विचूर्ण किया था। दुबारा लिच्छवियों के वक्ष पर सिंह की भाँति वैशाली के पद्म-सरोवर पर प्रहार कर राजधानी में ही जो आतंक बन्धुल ने उभार दिया था उससे कोशल से अधिक बन्धुल के प्रति उत्तेजना की कर्कशता वृजि-महाजनपद में दृष्टि-गत हो रही थी।

विदेह राज्य की समाप्ति के अनन्तर जिन अष्टकुलों ने—विदेह, लिच्छवि, ज्ञातृक, बज्जी, उग्र, भोज, ऐक्ष्वाकु, एवं कौरव ने—एक सबल नवीन-संघ की स्थापना की थी वह बज्जी-संघ अपने में गणतन्त्र शासन-प्रणाली की व्यवस्था स्थापित कर राजनैतिक, व्यापारिक, सामाजिक, सामरिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता का केन्द्र बना हुआ था।

बज्जी संघ के गणतन्त्र शासन का संचालन एक राज्य-परिषद् करती थी जिसमें इन अष्टकुलों का पूर्ण प्रतिनिधित्व होता था। प्रति सातवें वर्ष अष्टकुलों के निर्वाचित सदस्य वैशाली परिषद् में एकत्र हो राज-व्यवस्था, बज्जी संस्थाओं एवं बज्जी चैत्यों आदि-आदि का संचालन करते थे।

वृजि-गणतन्त्र के प्रधान गणपति राजा चेटक थे जिनकी एक पुत्री मगध के भू० पू० सम्राट् बिम्बसार की पत्नी रानी चेलना अथवा अजातशत्रु की माता थी।

वृजि-संघ के अन्तर्गत लिच्छवियों के नौ राजा थे जो संघ के अन्तर्गत ग्रामों एवं नगरों के समूहों के प्रमुख शासक के रूप में भिन्न-भिन्न स्थानों में राज्य-संचालन करते थे। इन सबकी सम्मिलित राजधानी वैभवशालिनी वैशाली थी।

इसी प्रकार वृजि संघ के प्रमुख विदेहों की राजधानी मिथिला एवं ज्ञातृकों की राजधानी कुण्डलपुर थी। इसी कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ को राजा चेटक की पुत्री त्रिशला व्याही थी। इसी ज्ञातृक-कुल के गणपति महाराज सिद्धार्थ के पुत्र जैनियों के चौबीसवें व अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर थे।

अस्तु, इस सर्वोपरि संघ की प्रमुख राजधानी वैशाली उस काल वैभव, विलास, सम्पन्नता, ऐश्वर्य, व्यापार-वाणिज्य में अद्वितीय थी। वैशाली में स्वर्ण-रत्न-भाण्डारों सहित अतुल सम्पत्ति भरी पड़ी थी। वृजि-संघ ने अपने केन्द्रस्थल वैशाली को प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त भव्य बनाया था। वैशाली के भवनों का कलात्मक बाह्य-आकार-प्रकार; सामन्त एवं सेट्ठियों की राज-प्रासाद सी भव्य अट्टालिकायें; सार्वजनिक संस्थाओं के दीर्घाकार भवन; अत्यन्त विशाल देवालय; नगर के मध्य में यत्र-तत्र विस्तृत कुसुम-कानन, क्रीड़ास्थल आदि सबने मिलकर वैशाली को अपने समय का सर्वोपरि नगर बनाया था।

वैशाली की वास्तु-कला, मूर्त्ति-कला एवं भवन-निर्माण-कला उस काल के अन्य राज-नगरों से सर्वथा भिन्न एवं विशिष्ट थी।

वैशाली—कौशाम्बी, चम्पा, काशी, राजगृह एवं श्रावस्ती के मध्य घिरी होने के कारण तथा श्रावस्ती-राजगृह-मार्ग में स्थित होने के कारण जहाँ एक ओर स्वतन्त्रता, व्यापारिक समृद्धता, सामरिक श्रेष्ठता में अग्रगण्य थी वहीं राजनैतिक केन्द्रों की संघर्ष-स्थली भी थी।

इसी महानगरी में कोशल का अपदस्थ युवराज विड्डभ अपनी महत्वाकांक्षा; प्रेमाकांक्षा (एकांगी ही सही), राज-सत्ता प्राप्ति की अमित-आकांक्षा; पितृ-विद्रोह की जागरूक विभीषिका; राजनैतिक एवं कूटनीतिक मन्तव्यों की पूर्ति एवं स्वयं तथा माँ के अपमान के प्रतिशोध की विडम्बना लिये, वैशाली के बाह्य गोपुर पर आ खड़ा हुआ।

उसे प्रतीत हुआ श्रावस्ती के प्राचीर की अपेक्षा वैशाली के गोपुर अधिक सुदृढ़, उच्च एवं विशाल हैं। विड्डभ ने ज्योंही दृष्टि उठाई—

गोपुर के प्रहरी ने अपना पीतल का तूर्ण उठाकर उद्घोष किया तथा टन्, टन्, टन् करके समय-तालिका के आधार पर ग्यारह घंटे बजा दिये। यही सामने उसे दीख पड़ा अश्वारोही सैनिकों का एक जत्था लोह-वर्म पहिने, अस्त्र-शस्त्र सज्जित, खड्ग चमकाता, धनुष एवं तूर्ण कसे नगर के अन्तर्भाग की ओर बढ़ता चला आ रहा है।

उस अपरिचित वैशाली में किधर जाय इस ध्यान में कुछ विचार ही कर रहा था कि वह उसी ओर बढ़ गया जिधर वह सैनिक-अश्वारोही दल जा रहा था।

प्रशस्त राजमार्ग पर बढ़ते चले जाने पर एक स्थान पर वह ठिठक कर रुक गया—वह उछल पड़ा आचार्य अजित-केसम्बल। उसने अनुमान लगाया वह अश्व-रथ निश्चित गण संचालक अथवा किसी सामन्त विशेष का है। आचार्य उसी ओर आ रहे थे। विड्डभ ने अपना अश्व किनारे रोक लिया।

आचार्य ने भी विड्डभ को आश्चर्यसहित देखा। विड्डभ ने विनत प्रणाम किया और अपने अश्व से उतरकर आचार्य की पद-वन्दना की। आचार्य का रथ अब तक पथ से किनारे खड़ा हो चुका था।

विड्डभ कुछ कहे—आचार्य ने व्यक्त किया—"मुझे ज्ञात हो चुका है। किन्तु तुम वैशाली में कैसे? तुम्हारा शत्रु तो काशी में है। तुम्हें वहाँ होना चाहिये था।"

"गुरुवर्य! मैं वहीं जाऊँगा किन्तु एक विशेष योजना सहित वैशाली आया हूँ, यह ज्ञात कर कि आपका प्रवास भी यहीं है।"

आचार्य ने अपना रथ लौटालने का आदेश दिया। विड्डभ उनके साथ हो लिया।

× × ×

अन्धकार में विडालक की भाँति अपने कज्जल-रंग में आँखों की सफेद पुतलियाँ डुलाकर नेत्र बन्द करते हुए आचार्य अजित ने अति गम्भीर हो कह दिया—"अत्यन्त मूर्खतापूर्ण योजना है। तथ्य है कि तुम जैसे

परमुखापेक्षी किन्तु महत्-दर्शी सदैव असफल रहते हैं।"

"मैं आचार्यपाद पर अपना शीष झुकाता हूँ किन्तु विनम्र हो पूछना चाहता हूँ इसमें परमुखापेक्षण क्या है ? क्या राजनीति में इस प्रकार की सम्भावनायें अपेक्षित नहीं।"

"विड्डभ, मैंने जैसा संकेत किया है चुपचाप जाकर वही करो। बन्धुल को समाप्त करने से ही तुम्हारी सफलता सम्भव है। व्यर्थ के तर्क-वितर्क करके अपना व मेरा समय नष्ट न करो। और जानना चाहते हो तो सुनो—वत्स और मगध मिलकर कभी कोशल पर आक्रमण नहीं करेंगे। रानी चेलना यह कभी नहीं होने देगी। मगध व लिच्छवियों का एकीकरण भी कभी सम्भव नहीं—वस्तुतः वर्तमान स्थितियों में। यह सत्य है कि कोशल पर लिच्छवि खार खाये बैठे हैं; विशेषकर अभी पद्म-सरोवर की घटना को लेकर जिसमें वही बन्धुल मुख्य कारण है—किन्तु..."

वैशाली के पद्म-सरोवर एवं बन्धुल का प्रसंग आते ही विड्डभ के नेत्रों में मल्लिका का रूप तैर गया। प्रतीत हुआ जैसे वह इस लोक के परे विचरण करने लगा तभी आचार्य ने विड्डभ की उस स्थिति को देख कर प्रश्न किया—"विड्डभ कहाँ हो ?"

"आचार्यपाद ! अत्यन्त व्यथित हूँ।"

"तुम्हारी व्यथा—हाँ, वह बन्धुल की समाप्ति के साथ समाप्त होगी।"

"हाँ, गुरुवर्य ! वह बन्धुल के समाप्त होने पर ही समाप्त होगी। किन्तु वह फिर भी मुझे तिरस्कृत करती रही तो," और कहने के साथ ही विड्डभ को लगा किसी अदृश्य शक्ति ने उसके गाल पर एक प्रहार किया और स्वर प्रकट हुआ—

"कौन तिरस्कार करेगी विड्डभ ? क्या कह गये ? क्या प्रसंग है ?"

"कुछ नहीं—कुछ नहीं, आचार्यपाद !"

"स्पष्ट करो विड्डभ क्या बात है ?

विड्डभ ने किंचित् रुककर प्रारम्भ किया—"मल्लिका से—बन्धुल की पत्नी होने के पूर्व मैं परिणय की कामना कर रहा था। कोशल महाराज प्रसेनजित ने उसमें भी बाधा उपस्थित की। मुझे कपिलवस्तु भेजकर पीछे उसका विवाह बन्धुल से कर दिया।"

"समझा—किन्तु उसकी आशा छोड़ दो विड्डभ। राजसत्ता प्राप्त करने पर तुम्हें वैसी कितनी ही मल्लिकायें प्राप्त होंगी।"

"किन्तु···"

"किन्तु क्या ? यही कि स्नेह करते हो। तो, मूर्ख हो। बन्धुल में वीरत्व है। धन की छलना नहीं। धन की प्रवंचना में नारी एक दिन विमुख हो सकती है किन्तु वीर का वरण कर वह कभी आर्द्र न होगी।" आचार्य ने अपनी धवल केशराशि सहित ठोढ़ी को मसलते हुए कहा—

विड्डभ अशान्त मन में निस्तब्ध हो रहा।

× × ×

आचार्य अजितकेसम्बल कूटनीति की अतिरंजना को प्रस्फुरित करने के हेतु ही इधर वैशाली प्रवास में थे। अपनी योजना को पुनर्जीवन देने के हेतु, प्रातःकाल आचार्य को किंचित् प्रसन्न मुद्रा में देखकर विड्डभ ने वार्ता छेड़ दी ?"—फिर भी वैशाली का गण-तन्त्र कोशल के विरुद्ध उत्तेजित किया जा सकता है।"

"मैं वृजि-संघ को मगध के विरुद्ध आन्दोलित करने के हेतु अपना समय व्यतीत कर रहा हूँ और तुम कोशल का राग छेड़ना चाहते हो।"

"इसमें मेरा भी नगण्य मत स्वीकार करें आचार्य महामान्य ! लिच्छवि अपने से ऐसा साहस करेंगे, मुझे शंका है। मगध से वैसा सम्भव है। तब लिच्छवि जीतें या मागध—यह युद्ध-क्षेत्र ही बता सकेगा।" कहकर विड्डभ आचार्य की आकृति-रेखायें पढ़ता रहा। उसे प्रतीत हुआ, उसके कथन से अजितकेसम्बल किंचित् विचारग्रस्त हो गये हैं।

उस नीरवता को भंग करते हुए आचार्य ने कहा—"तो स्वेच्छा-नुसार वैशाली गण-परिषद् तक अपनी बात पहुँचा दो।"

"इसमें स्वेच्छा कैसी, गुरुवर्य ! आपकी बिना सहायता वह वहाँ तक पहुँचाना.....।"

"क्यों, क्या कोशल के विड्डभ-युवराज का प्रस्ताव—कोई साधारण महत्व रखता है ? तुम्हें स्वयं वैशाली राज-परिषद् में अपनी योजना प्रकट करनी चाहिये।

"यह ठीक होगा ?"

"हाँ, यही ठीक होगा।"

× × ×

वैशाली की राज-परिषद् अपने अधिवेशन काल में थी। वस्तुतः वैशाली के स्वतन्त्र गण-संघ में प्रत्येक गाँव के मुखिया को राजा कहा जाता था। इस प्रकार वैशाली गण-संघ में ७७०७ राजा थे। इन ७७०७ राजाओं ने मिलकर नौ गणराजाओं का निर्वाचन किया था जो गण-परिषद् में बैठकर गणपति सहित वैशाली में गणतन्त्र-प्रणाली के आधार पर शासन संचालन करते थे। इसके अतिरिक्त भी वैशाली के कुछ स्वनामधन्य सामन्तों एवं नगर सेट्ठियों का स्थान राज-परिषद् में था।

आचार्य अजितकेसम्बल वैशाली में अपने एक सामन्त मित्र के विश्राम कानन में टिके हुए थे। वहीं से वे अपनी कूटनीतिक गतिविधियों के संचालन में व्यस्त थे। इस समय वैशाली में आने का कूट मन्तव्य वैशाली-गण-परिषद् को मगध के विरुद्ध भड़काकर युद्ध कराने का था अतः उन्होंने अपने सामन्त मित्र की सहायता से राज-परिषद् में चर्चा प्रारम्भ करा दी थी किन्तु इधर वे कुछ शंकित थे। लिच्छवियों की सैनिक-शक्ति की ओर भी वे सचेत थे। वे जानना चाहते थे कि लिच्छवि किसी भी सैनिक अभियान के लिए प्रस्तुत हैं अथवा नहीं। अतः अब विड्डभ को भी अपना यन्त्र बनाकर उन्होंने कार्य-साधन करना चाहा।

उन्होंने विचार किया—विड्डभ के प्रयास यदि वास्तव में सफल हो गये तो लिच्छवि कोशल पर आक्रमण के लिए प्रस्तुत हो जावेंगे और यदि वे कौशल पर आक्रमण के लिए प्रस्तुत हो सकेंगे तो मुझ में इतनी सामर्थ्य है कि मैं उन्हें श्रावस्ती के स्थान पर राजगृह की ओर मोड़ दूँ। इस आर्य वर्षकार को अपनी राजनीति का बड़ा अभिमान हो चला है। देखना है। दूसरे मैं कोशल का हूँ, अतः कोशल पर आक्रमण कराने का प्रयत्न जन्म-भूमि के प्रति विश्वासघात होगा। यह उद्धत विड्डभ जो कुछ करता है—देखते चलकर इसे ही अपनी राजनीतिक गतिविधियों का साधन बनाना है। मुझे तो कोशल पर अधिकार नहीं चाहिए न। मुझे तो वहाँ के सत्ताधिकारी पर अधिकार चाहिए। और यह प्रसेनजित बन्धुल के फेर में पड़कर किसी को कुछ समझता ही नहीं है। इसको पाठ में ही पढ़ाऊँगा।

अस्तु, विड्डभ को प्रयास करने की अनुमति देकर अपने सामन्त-मित्र के द्वारा उन्होंने विड्डभ को पूर्ण परिचय सहित, राज-परिषद् के संचालक गणपति चेटक के पास भिजवा दिया।

लिच्छवि कोशल से अत्यधिक असन्तुष्ट थे। प्रस्ताव कुछ आकर्षक था तथैव कोशल युवराज के द्वारा आया था, अतः संघपति ने उसको विचारार्थ राज-परिषद् में पहुँचा दिया।

लिच्छवियों के उस समृद्धिशाली नगर वैशाली का राज-परिषद् भवन अत्यन्त भव्य व कलात्मक था। श्वेत संगमर्मर द्वारा निर्मित सम्पूर्ण महालय वर्ष में अनेक बार व्यस्तता का केन्द्र बना रहता था। यहीं स्वर्ण-रत्न-जटित सिंहासनों पर बैठकर वैशाली गण-संघ के निर्वाचित सदस्य गण-राज्य संचालन करते थे।

आज भी वैशाली राज-परिषद् का सभा-भवन पूर्णरूपेण व्यस्त था। आज अधिवेशन में कोशल के युवराज विड्डभ के प्रस्ताव-कोशल-आक्रमण पर विचार-विमर्श हो रहा था। वातावरण में अत्यधिक उत्तेजना एवं कौतूहल था। युवराज के अपने ही पिता के प्रति विद्वेष

एवं विग्रह-प्रसंग को लेकर सभी के हृदयों में घोर अनास्था थी। साथ ही लिच्छवियों की शुद्ध रक्त की पूर्ण आस्था में कोशल के उस दासी-पुत्र युवराज के प्रति अनादर के भाव स्पष्टतः परिलक्षित थे किन्तु राजनीतिक महत्व को लेकर प्रस्ताव पर विचार करना सभी को युक्तिसंगत प्रतीत हुआ।

कोशल-आक्रमण प्रसंग को लेकर विलम्ब तक तार्किक विचार-विमर्श चलता रहा। अन्ततः मगध के सम्भावित आक्रमण को दृष्टि में रखकर कोशल-आक्रमण का प्रश्न सर्वथा समाप्त कर दिया गया।

विड्डभ केवल-मात्र वैशाली गणपरिषद् में बैठ, मान-सम्मान पा, नत ग्रीवा लिये अजितकेसम्बल के प्रवास की ओर लौट आया।

मृग-चर्म पर विराजमान आचार्य की दशा विड्डभ से भी कहीं अधिक चिन्त्य थी। विड्डभ की असफलता में उनकी अपनी कूटनीति पूर्णतः असफल हो गई। लिच्छवियों के इस प्रसंग को लेकर निर्णय के उपरान्त अब वैसी स्थिति कदापि न रह गई थी कि उन्हें मगध के लिए पुनः उकसाया जा सके।

किन्तु विड्डभ को एक बार अनुमति दे देने के उपरान्त कज्जल-वर्ण आचार्य की असफलता का पीत रंग उस गहराई में छिपा ही रह गया। उन्होंने केवल इतना ही कहा—"सब झंझट छोड़ो। केवल बन्धुल को अपना लक्ष्य बनाओ और अपने दो कार्य साधो।" कहकर आचार्य किंचित् मुस्करा दिये। विड्डभ का दूसरा कार्य—मल्लिका का तो उन्हें भान भी न था किन्तु अब उस ओर से भी वे सचेत थे। इस प्रसंग को लेकर तो विड्डभ को चाहे जितना नचाया जा सकता था। वह प्रश्न ही राजसत्ता से कहीं अधिक महत्त्व का था। वह ··· उस प्रसंग पर तो विड्डभ आकाश व पृथ्वी दोनों को मिला सकता था।

अन्ततः आचार्य को साष्टांग दण्डवत् कर विड्डभ उसी दिन काशी को प्रस्थान करने की बात कहकर आचार्य के आश्रम से चला आया।

२२

काशी प्रान्त की आय का प्रश्न जटिल रूप धारण कर रहा था । अजातशत्रु का एक दूत लौट चुका था जिसे सामन्त बन्धुल-मल्ल ने खरे शब्दों में कह दिया था—"जाओ ! मगध के अधःपतन के नायक अजात से कह दो, काशी प्रान्त की सम्पूर्ण आय देवी कोशल देवी को मिलेगी । यहाँ से, अब, आत्मगौरव की मिथ्या-ध्वजा फहराने वाले मगध के नये शासक को फूटी कौड़ी भी प्राप्त न होगी ।"

अजातशत्रु उबल पड़ा । उसने भाँति-भाँति की यातनायें अपने पिता बिम्बसार एवं कोशलदेवी को देनी प्रारम्भ कर दीं । रानी चेलना समय-समय पर वन में अपने पति के पास आकर उन्हें प्रतारणायें देती, सपत्नी कोशलदेवी को व्यंग्य-बाणों से छेदती रहती ! बिम्बसार अपनी उस स्थिति में भी अत्यधिक दुःखी थे ।

इधर अजातशत्रु ने काशी के प्रश्न को लेकर कोशल पर सैनिक अभियान की घोषणा कर दी ।

मगध व कोशल का युद्ध किसी भी क्षण प्रारम्भ होने को था ।

बन्धुल इसी हेतु विशेष परामर्श एवं विचारार्थ श्रावस्ती आया हुआ था । श्रावस्ती आकर उसे ज्ञात हुआ कि प्रसेनजित साकेत में प्रवास कर रहे हैं, अतः उसने साकेत जाना निश्चित किया ।

× × ×

"प्रिये ! चलो हम साकेत हो आवें," बन्धुल ने पत्नी के रेशम से मुलायम बालों पर हाथ फेरते हुए कहा ।

"और इस सुकुमार को भी साथ ले चलें," मल्लिका ने शिशु की किलकती बाहों की नन्ही उँगलियों को पलकों पर फिराते हुए पुलक में आप्लावित होकर कहा । पति के साहचर्य एवं शिशुक्रीड़ा के परम आनन्द सहित मल्लिका की भंगिमा का रक्त वर्ण बड़ा हठीला, बड़ा लजीला

सा प्रतीत हो रहा था, ऊपर से बन्धुल के चलते-फिरते हाथ उसमें उत्तेजना की प्रदीप्ति उत्पन्न कर रहे थे। वह शिशु को गोद में लिये हुए बन्धुल के वक्ष पर सिर रखकर देर तक सुखानुभूति की अजस्र-धारा में प्रवाहित होती रही।

तदन्तर किंचित् विचलित हो मल्लिका ने कहा—"क्या अब भी मैं काशी साथ न चलूँ?"

"अब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। अब मैं काशी का सामन्त, तुम्हारा पति तुम्हें काशी ले जाकर अपने दाम्पत्य-जीवन को परमानन्दित करने में सर्वथा समर्थ हूँ। उस समय अनायास काशी जाने का निर्देश—प्रसेनजित से प्राप्त कर कुछ अनहोना सा प्रतीत हुआ था।"

"ऐसा क्यों?"

"मुझे यह शासन-भार भारस्वरूप ही जो लगता है, प्रिये! मेरा अपना तो वह सैनिक जीवन ही सुखकर है। मुझे उसमें ही विशेष आनन्द आता है।"

"अर्थात् युद्ध करने में बड़ी हिंसक प्रवृत्ति है, तुम्हारी।"

"नहीं, प्रिये! अब तुम्हारे समक्ष आकर तो जैसे वह विलीन होती जा रही है। तुम इतनी शान्तिप्रदायक हो···," कहकर बन्धुल ने मल्लिका को अधिक निकट किया।

"देखिये, तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध आजकल जेतवन में विराज रहे हैं। कल, आपको मेरे साथ उनके दर्शन करने चलना होगा।"

"अवश्य चलूँगा।"

"मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है," कहकर मल्लिका ने अपने पलक मूँद लिये और दोनों हाथों की मुट्ठी दाब ली। कुछ रुककर उसने पुनः प्रारम्भ किया—"मुझे लग रहा था—आप व आपका प्रान्त तो सर्वजित भगवान् महावीर का भक्त है···।"

"तो क्या? हम तथागत भगवान् के दर्शन करने नहीं जायेंगे। जैनत्व—इतनी उदार आस्थावान् धार्मिक प्रवृत्ति किसकी है—मल्लिके? और

फिर सर्वजित् भगवान् महावीर तथा महाश्रमण भगवान् बुद्ध तो एक ही पथानुगामी एवं लगभग एक ही सी धार्मिक प्रवृत्ति के दिग्दर्शक हैं। वस्तुतः दो महान् विभूतियों में कुछ मौलिक भेद हों तो उससे हमारी आस्थाओं में क्या अन्तर पड़ सकता है। तुम्हें, सम्भवतः ज्ञात नहीं, मैंने स्वयं जाकर तथागत भगवान् बुद्ध के चरणों में अनेक बार शीश नवाया है! मैं अवश्य चलूँगा! वे मुझे जानते हैं।"

× × ×

श्रावस्ती के जैतवन में तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध अपने सम्पूर्ण महाभिक्षु-संघ सहित विराजमान थे। वे कपिलवस्तु से लौटे थे। कपिल-वस्तु में उन्होंने अपने पिता महाराज शुद्धोदन को भी आत्म-कल्याण के अमर-संदेशों से आप्लावित किया था।

वहाँ—इस बार ही भगवान् के गृह-त्याग के अनन्तर यशोधरा ने पति के दर्शन—चिरकाल के अनन्तर, पुनर्वार दर्शन की युगीन आस्था, विश्वास एवं लालसा को अन्तर्मन में दबा कर, अपने एकमात्र मनोरंजन पुत्र राहुल के लालन-पालन में व्यतीत करने के पश्चात्—प्राप्त किये थे। यशोधरा कृतकृत्य हुई। एवं यशोधरा का वज्र-सा हृदय—विगत अवसर पर उसके पति उसे निद्रा-निमग्न छोड़कर चले गये थे! इस अवसर पर—उसके जागरण-काल में ही—पति पुनः गये, साथ में पुत्र राहुल को भी दीक्षित करके ले गये। यशोधरा के जीवन की उस विष-मता में भी कितना गौरव, कितना सम्मान, कितनी श्रेष्ठता सन्निहित थी। जब तक जगत् में मानव का अस्तित्व है तब तक तथागत भगवान् बुद्ध की करुणा, दया, शील, अहिंसा उसे मुक्ति प्रदान करती रहेंगी और तब तक यशोधरा का नाम भी अजर-अमर रहेगा।

अस्तु, जैतवन में, महाश्रमण भगवान् बुद्ध उच्चासन पर विराज-मान थे। उनके प्रमुख एवं प्रसिद्ध शिष्यों में सारिपुत्त, महा मौग्गलायन, आनन्द, रैवत एव राहुल भी पंक्तिबद्ध आसनों पर उनके दायें-बायें बैठे थे। समक्ष श्रावस्ती के सहस्रों नागरिक पूर्ण शान्त भाव से बैठे

भगवान् के उपदेशामृत को प्राप्त कर रहे थे।

भगवान् बुद्ध की परम पावन करुणामयी मूर्ति की अन्तर्ज्योति प्रकट होकर जन-जन में प्रवेश पा रही थी। यहीं मल्ल-दम्पति भगवान् की वन्दना कर किनारे बैठ गया।

मल्लिका गद्गद् हो रही थी। बंधुल भगवान् के पुनीत दर्शन कर परम सन्तोष पा रहा था—वह सौभाग्य मान रहा था—जीवन में वैसा सुयोग—मल्लिका सहित भगवान् के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा था।

तथागत भगवान् बुद्ध की धर्म-सभा की समाप्ति के अनन्तर वैयक्तिक रूप में, जो जन भगवान् से परिचित थे वे उनके निकट जा-जाकर चरण वन्दना कर उनसे एक-दो पल वार्ता कर स्वगृहों को जा रहे थे।

परमानुगता मल्लिका भी पति बंधुल सहित भगवान् के चरणों में शीश झुकाने पहुँची। भगवान् ने अनेक प्रकार से सदुपदेश दे आशीर्वाद प्रदान किये। बंधुल को देखकर भगवान् ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हें मल्लिका सी पत्नी प्राप्त हुई। तुम्हारा बड़ा सौभाग्य है। अच्छे तो हो। सुना है प्रसेनजित साकेत में हैं। आने वाले तो हैं। इस मगध-कोशल संकट को टाला, कोशल के सेनापति! किन्तु तुम युद्धप्रेमी-जन इस त्रास से मानव को कब मुक्ति दोगे?..."

बंधुल गर्वित हो रहा था। मल्लिका का हृदय फूला नहीं समा रहा था। तभी मन्द स्वर में बंधुल ने उत्तर दिया—

"भगवन्! हम तो सभी के अनुचर हैं। संसार से युद्ध नाम की विभीषिका का नाश हो, इसी हेतु भगवान् अवतरित हुए हैं। आज नहीं तो कल मानव-संस्कृति की यह पाशविक विडम्बना आप ही के दिव्य-संदेश से समाप्त होगी। इस क्षण अजातशत्रु की हीन-प्रवृत्तियाँ भगवान् से भी छिपी नहीं हैं। मगध का गृह-युद्ध कैसे भगवान् ने समाप्त किया? उसके अनन्तर भी बिम्बसार एवं कोशलदेवी जीवन के कर्कश भार को किसी प्रकार वहन कर रहे हैं। अब काशी प्रान्त की आय—जो

कोशल देवी की अधिकृत-वस्तु है, उन्हें क्यों न मिले ? कोशल का इसमें क्या अपराध है भगवन् ! वह तो न्यायपक्ष पर ही है। मगध ने आक्रमण किया तो···," बंधुल कहता गया।

तभी महाश्रमण भगवान् बुद्ध ने परिस्थिति का अवलोकन कर कहा—"वह सब मुझे ज्ञात हुआ है, बंधुल सेनापति ! सभी शुद्ध बुद्धि को प्राप्त हों। मगध-शासक अजातशत्रु भी शुद्ध बुद्धि को प्राप्त होंगे। स्व-गर्व एवं कर्तव्य को निभाते रहना—तुम्हारा कल्याण हो।"

तत्क्षण बंधुल के निकटस्थ मल्लिका को नमित-ग्रीवा किये खड़े देखकर भगवान् ने उसे सम्बोधित कर कहा—"जीवन की अनुकरणीय निधि को प्राप्त करो पतिपरायणा मल्लिका ! सेवा का व्रत लो। यह शिशु परम विद्वान् हो संघ शरण को प्राप्त करे।"

"अवश्य भगवान् ! ऐसा ही होगा। मैं अपने पुत्र को संघ-प्रवेश कराऊँगी," कहकर मल्लिका ने परम वात्सल्य से बालक को देखकर भगवान् के हाथ जोड़ दिये।

भगवान् संघ सहित आसनों को छोड़कर उठ खड़े हुए।

× × ×

बंधुल व मल्लिका जब साकेत पहुँचे तब संध्या हो चुकी थी। उन्होंने अपने अश्व साथ के दो सैनिकों को सँभालने को दिये और स्वयं ने साकेत स्थित कोशल-नरेश प्रसेनजित के राजमहालय के दौवारिक से सूचना भिजवाई—"बँधुल आया है।"

प्रसेनजित सम्राज्ञी कलिंगसेना के प्रासाद में बैठे चौपड़ खेल रहे थे। सेनापति के आगमन की अनायास सूचना पाकर एक क्षण प्रसेनजित स्तब्ध रह गये; चौपड़ यथास्थान पड़ी रह गई। कपूर-धवल-गात की सुषमा में गान्धार-राजकुमारी ने पति की भंगिमा में शीघ्र परिवर्तित अनेक भाव देखे।, तभी दौवारिक ने आगे कहा—"महाराज ! उनके साथ उनकी पत्नी मल्लिका देवी भी हैं।"

प्रसेनजित कुछ आश्वस्त हुए और दौवारिक को आदेश दिया—"मल्लिका देवी सहित सेनापति बंधुल को यहीं ले आओ।"

बंधुल की बढ़ती कीर्ति से प्रसेनजित इधर अत्यधिक भयत्रस्त हो रहे थे। वस्तुत: राजनीति किसी के भी उत्कर्ष को देखकर थर्राती रहती है, अत: बंधुल में अनन्य मैत्री-भाव रखकर भी कोशलपति प्रसेनजित को बंधुल खटकने लगा था।

प्रसेनजित व कलिंगसेना ने मल्लिका व बंधुल का समादर सहित स्वागत किया। प्रसेनजित मल्लिका को पुत्रीवत् मानते चले आये थे। उसी भाव से मल्लिका के सिर पर हाथ फेरकर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया और प्रश्न किया—"वह नटखट अश्विनी कहाँ है?"

अत्यन्त हर्षित होते हुए—मल्लिका ने उत्तर दिया—"अपनी प्रिय सखी माध्वी के पास छोड़ आई हूँ।"

"बंधुल, उसे अभी से तक्षशिला भेज दो ताकि वह शीघ्र आचार्य बाहुलाश्व का स्थान ग्रहण करले।"

सभी अट्टहास कर उठे।

मल्लिका ने किंचित् गर्वोन्नत होते हुए व्यक्त किया—"महाराज! भगवान् तथागत ने उसे अपना शिष्य बनाने का सौभाग्य प्रदान किया है।"

"अभी से! हाँ, हाँ वे भी तो राहुल को ले आये हैं। भला, कैसा लग रहा होगा वह कुमार राहुल—अपने पिता के साथ भिक्षु संघ में भिक्षुक वेश धारण कर—सिर घुटाकर घूमते हुए!"

अब तक मल्लिका एवं बंधुल भी स्वर्णपीठिकाओं पर प्रसेनजित के निकट ही बैठ चुके थे। कलिंगसेना मल्लिका से परिचय प्राप्त करने की आशा में बैठी कभी चौपड़ की ओर और कभी मल्लिका की उस निखरी रूप-राशि में करुणा एवं शान्ति के प्रतिष्ठापन की ओर निहार लेती।

तभी प्रसेनजित ने पुन: प्रारम्भ किया—"महाश्रमण भगवान् के कपिलवस्तु-प्रवास की करुणामय सूचनायें सर्वत्र प्रसारित हो रही हैं। कैसे मर्मस्पर्शी होंगे वे दृश्य—जब भगवान् केवल ज्ञान प्राप्त कर—उस दीर्घकाल के पश्चात् अपने पिता के समक्ष पधारे होंगे? और देवी यशोधरा के हृदय की क्या स्थिति हुई होगी? कपिलवस्तु के जन-

जन भगवान् को देखकर कैसी नवीनता का अनुभव करते होंगे ?" कहते-कहते तथागत भगवान् बुद्ध के परम भक्त कोशल-नरेश प्रसेनजित के नेत्रों में आँसू छलछला आये।

प्रसेनजित ने जैसा मार्मिक प्रसंग छेड़ दिया था उससे मल्लिका एवं बंधुल सहित कलिंगसेना भी अत्यधिक द्रवित हो रहे थे। तभी बंधुल ने तथागत भगवान् बुद्ध से हुई अपनी भेंट की चर्चा छेड़ दी तथा उस सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध की युद्ध-सम्बन्धी चिन्ता को भी प्रकट किया।

प्रसेनजित एक क्षण मौन हो शून्य में विलीन हो गये तभी अनायास उन्होंने प्रश्न किया—"काशी में सब शान्ति है न, सेनापति !····नहीं, नहीं इस काल काशी के दंडनायक भी !"

"हाँ, महाराज ! मगधपति अजातशत्रु का दूत काशी की आय की टटोल में आया था···।"

"उसे काशी में घुसने क्यों दिया, बंधुल ?"

"महाराज ! मैंने भली प्रकार कह-सुन कर लौटाल दिया है। उसको काशी की जनता का स्वर भी ज्ञात हो गया है।"

"तो, मल्लिका को साकेत घुमाने लाये हो····। मल्लिका, कुछ काल यहीं मेरे साथ रहकर ही श्रावस्ती चलना।"

"महाराज ! क्या अभी आप साकेत में ही ठहरेंगे ? वहाँ जैतवन में श्रावस्ती का जन-जन उत्साह एवं आनन्द मना रहा है। भगवान् ने आपका भी स्मरण किया है।" मल्लिका ने उत्सुक नेत्रों से कलिंगसेना को देखते हुए कहा। नई रानी के लिए कलिंगसेना एवं कलिंगसेना के लिए मल्लिका पूर्णतः अपरिचित थीं।

"तब तो मैं तुरन्त श्रावस्ती को प्रस्थान करूँगा। क्यों, कलिंगसेना, अब चलें न—राजधानी ?" प्रसेनजित ने कलिंगसेना की ओर मुस्कराकर देखते हुए प्रश्न किया।

परिणय के अनन्तर सहवास-सुख के अतिरेक में जैसे प्रतीत हुआ—कलिंगसेना अभी साकेत-महालय नहीं छोड़ना चाहती।

"तो, मित्रवर बंधुल ! साकेत-आगमन में कोई विशेष मन्तव्य ?" प्रसेनजित ने बंधुल को सम्बोधित कर कहा।

"हाँ, महाराज ! काशी के प्रश्न को लेकर उत्पन्न नवीन परिस्थितियों पर उचित आदेश पाने के हेतु···।"

"अब विश्राम करो। कल वार्ता करेंगे।"

× × ×

सरयू नदी के तट पर साकेत-वासियों का अपार जनसमूह उमड़ रहा था। स्थान-स्थान पर विनोद-वार्तायें चल रही थीं। सरयू में अनेक जलपोत एवं अधिक संख्या में नौकायें जल-विहार का आनन्द ले रही थीं। उनमें बैठे साकेत-नागरिक उत्सव-आनन्द मना रहे थे। कहीं किसी नौका पर से संगीत-ध्वनियाँ प्रकट हो रही थीं। किसी नौका पर नर्तन का गुंजन खिलखिला रहा था।

तरुण-तरुणियाँ स्वच्छन्द घूम-फिर रहे थे। अनेक युगल नावों में घूमते-फिरते आमोद-प्रमोद कर रहे थे। अनेक तन्वंगी जल में तैर रही थीं जिनके सुगौर गात की झिलमिलाहट जल से झलककर बाहर झाँक रही थी। अनेक यौवन-भारावनत रमणियाँ फेनक-सी धवल-श्वेत आकृतियाँ लिये जल में कूद पड़ने को प्रस्तुत हो रही थीं।

सरयू के स्वच्छ जल में आकण्ठ डूबे युवक किलकारियाँ भरकर उछलते फिर जल में डूबकर ऊपर तैर आते। सर्वत्र हर्ष एवं उत्साह उमड़ा पड़ रहा था। किनारे से इठलाता मन्द-समीर नंगे बदन तैरने वालों में कभी-कभी कंपन उत्पन्न कर देता था।

यहीं मल्लिका व बंधुल भी किनारे आ खड़े हुए। मल्लिका का मन सरयू में तैरने को लालायित हो उठा। उसने पति से कहा—"चलिये, हम लोग भी तैरेंगे।"

"हाँ···।" कहकर बंधुल मुस्करा दिया।

लज्जा में मल्लिका प्रथम तो आरक्त हो गई तदनन्तर मुस्कान भर कर बोली—"चलिये, न। देखें, साकेत-वासियों की तैराकी प्रतियोगिता

में कौन विजयी होता है ?"

"मल्लिके ! सच । तो चलो ।

और यह दम्पति भी जल में पैठ गया ।

× × ×

सरयू के अथाह जल में साकेत के बहुसंख्यक तरुण-तरुणियों ने एक साथ तैरना प्रारम्भ किया । प्रतियोगिता प्रारम्भ होते ही मल्ल एवं मल्लिका भी उस पंक्ति में साथ हो आगे बढ़ने लगे । अनेक थककर पीछे रह गये । कुछ घूम गये । दो-चार डुबकी लेने लगे जिनको एक साथ दौड़ती नौकाओं ने सँभाला ।

सरयू-तीर से असंख्य नागरिक उछल-उछल कर इस प्रतियोगिता का आनन्द ले रहे थे । सभी दृष्टियाँ एक ओर टिकी थीं ।

मल्लिका सबसे आगे थी । उसके पीछे से बंधुल ने आकर मल्लिका के कक्ष-भाग में हाथ डाल दिया । मल्लिका खिलखिला उठी । "बढ़िये आगे," की ललकार सहित मल्लिका ने अपने हाथ-पैरों में और स्फूर्ति प्रकट की ।

साकेत-नागरिकों का वह समूह न जाने कितना पीछे था । बंधुल भी कितना गर्वित था । मल्लिका जल में इतना अच्छा तैर लेती है—यह उसने प्रथम बार ही जाना था ।

प्रतियोगिता में विजय-श्री मल्लिका को प्राप्त हुई । बंधुल भी साथ था । सर्वत्र चर्चा फैल गई—श्रावस्ती की मल्लिका देवी एवं कोशल के सेनापति बंधुल मल्ल ने प्रतियोगिता जीती है ।

जल से सिक्त मल्लिका का वह गौरव स्वरूप; थकान में भी खिल-खिलाती वह मधुर भंगिमा देख-देखकर साकेतवासी पुलकित हो रहे थे । बंधुल ने गौरव-सहित मल्लिका का हाथ पकड़ा और वस्त्र बदलने चला गया ।

अगले दिन साकेत में सर्वत्र मल्लिका व बंधुल के विजय की चर्चा होती रही ।

प्रसेनजित व कलिंगसेना ने भी बंधुल-दम्पति की मुक्त-कंठ से सराहना की एवं बहुमूल्य उपहार भेंट किये।

× × ×

आवश्यक विचार-विमर्श करके बंधुल ने पत्नीसहित साकेत से प्रस्थान किया। साकेत के बाह्य प्राचीर से निकलकर बंधुल एवं मल्लिका के अश्व दस-बीस ही पग चले होंगे कि सामने से कोशल राजकुमारी बाजिरा साकेत की ओर आती दीख पड़ी।

बाजिरा एवं मल्लिका ने एक दूसरे को देखकर सस्मित नेत्राभिवादन किया। बंधुल ने भी सहास्य मुद्रा में राजकुमारी के आगमन का स्वागत किया।

बाजिरा के साथ कोशल का उपसेनाध्यक्ष कारायण अपनी सैनिक टुकड़ी सहित रक्षार्थ जा रहा था। कारायण सहित समस्त सैनिकों ने अपने सेनापति को सैन्याभिवादन किया। बंधुल ने भी उसी भाँति प्रत्युत्तर दे श्रावस्ती को प्रस्थान किया एवं बाजिरा ने साकेत को।

मार्ग में, मुस्कराते हुए बंधुल ने मल्लिका से प्रश्न किया—"मल्लिके! इन दोनों का प्रणय अब किस स्थिति में है?"

"इधर मैं प्रासाद की ओर जाती नहीं हूँ। न कुछ ज्ञात ही है," मल्लिका ने अपने अश्व को शीघ्रता से आगे की ओर छोड़ते हुए कहा।

बंधुल ने भी अपना अश्व बढ़ाया तब निकट आकर पुन: बोला—"तुमने देखा, मल्लिके! वह छोटी-सी बच्ची बाजिरा कितनी बढ़ निखर गई है।"

"वैसी ही उसकी गतिविधियाँ भी।"

"कैसी?"

"देखिये न, इतनी चर्चा व प्रतिबंधों के उपरान्त भी उसी के साथ साकेत चली जा रही है।"

"अभद्र कारायण भी एक राजकुमारी को इतना रुचता है।"

"नारी-रुचि की गति आप पुरुष नहीं जानते।"

"जानते हैं पर टाल जाते हैं।"

"कैसे ?"

"जैसे प्रसेनजित ने टाल दिया। अन्यथा कारायण की क्या गति होती ?"

"होती क्या ? बाजिरा को स्वयं यह नहीं भाता किन्तु फिर भी चर्चा तो है ही।"

"वह प्रसंग था क्या ?"

"कारायण की किसी उद्दण्डता पर बाजिरा ने पहले तो स्वयं ही उसे अत्यधिक प्रताड़ित किया तदनन्तर महाराज को जब ज्ञात हुआ तो कारायण पर आपत्ति आना स्वाभाविक ही था। किन्तु बाजिरा ने ही अनुमोदन कर उसे क्षमा करा दिया।"

"तो कुछ-कुछ···।"

"हाँ, बिना बात—बात उठती ही कब है ?"

"धन्य हैं प्रसेनजित, विड्डभ और बाजिरा···," कहते-कहते बंधुल खिलखिलाकर हँस दिया।

मल्लिका भी हँस दी।

"अब साकेत में प्रसेनजित देखकर बिगड़ेगा नहीं, मल्लिका !"

"मेरा मत है, ये साकेत जाकर उनसे मिलेंगे ही नहीं। अनुमानतः यह शक्तिमती के आदेश पर विड्डभ को ढूंढती फिर रही है।"

"सम्भव है।"

२३

आचार्य के आश्रम से आकर विड्डभ वैशाली में ही रहा; वैशाली के हाटों—चत्वरों को देखता रहा; वैशाली के वैभव का निरीक्षण करता रहा। वैशाली आकर वह अनेक वस्तुओं को देखना चाहता था। वैशाली का प्रसिद्ध सप्तभूमि प्रासाद एवं उसमें अवतिष्ठ भारत की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी प्रसिद्ध राजनर्त्तकी अम्बपाली; नीलपद्म-प्रासाद एवं कमल-सरोवर—वह सरोवर जहाँ मल्लिका की दोहदेच्छा पूर्ति के हेतु बन्धुल ने पाँच सौ लिच्छवि वीरों को परास्त किया था।

सर्वप्रथम वह नीलपद्म-प्रासाद देखने गया। यह स्वच्छ-धवल संगमरमर का भव्य प्रासाद नील-कमल सरोवर के बीचोंबीच बना हुआ था। नीलमणि के समान स्वच्छ एवं झिलमिलाते जल से परिपूर्ण सरोवर का जल उस समय प्रभात की स्वर्ण-किरणों से इठला रहा था। सरोवर में खिले नीलम से रक्तिम बड़े-बड़े कमल अपनी सुषमा बिखेर रहे थे। सरोवर के चतुर्दिक् धवल मर्मर का परकोटा खिंचा हुआ था जिस पर बीच में ऊँचे-ऊँचे खम्भे बने हुए थे। इनमें स्वर्ण की कलसियाँ कढ़ी हुई थीं। सरोवर के एक ओर प्रवेश-प्रांगण था जिससे प्रासाद तक एक अति रमणीय पुल बना हुआ था। जल में बने पुल की शोभा बड़ी आकर्षक थी। पुल के ऊपर किनारे-किनारे संगमर्मर की जालीदार मुँडेर थी जिस पर बीच-बीच में प्रस्तर के स्तम्भ बने हुए थे जिनमें रत्न एवं स्वर्ण पत्थर जड़े हुए थे।

बाह्य परकोटे, बाह्य प्रांगण, पुल एवं मुख्य प्रासाद में सर्वत्र प्रहरियों एवं प्रतीहारियों का साम्राज्य था। सैनिक वेश में प्रासाद के प्रहरी ऊँचे-ऊँचे भाले चमकाते, शिरस्त्राण बाँधे, धनुष-तूणीर कसे, कमर खड्ग डग लटकाये सतर्क भाव से प्रासाद का संरक्षण कर रहे थे।

नील-पद्म-प्रासाद आजकल विशिष्ट-अतिथि-शाला के रूप में वैशाली गण-तन्त्र की समृद्धि-पताका फहरा रहा था।

विड्डभ जब नील-पद्म-प्रासाद की बाह्य सुषमा का निरीक्षण कर रहा था तभी उसे ज्ञात हुआ—"गतरात्रि किसी महाजनपद के राजा का आगमन प्रासाद में हुआ है। अतः प्रवेश-निषेध है।"

प्रयत्न करने पर भी महाजनपद के शासक का नाम ज्ञात न हो सका। उसे आश्चर्य हो रहा था—वैशाली में किस हेतु किसी शासक का आगमन हुआ है? क्या वैशाली गण-तन्त्र में यों स्वच्छन्दतापूर्वक शासकों का आगमन होता रहता है?

और उसने इसी विचार में अपने अश्व को सीधा कर नील-पद्म प्रासाद से प्रस्थान किया।

× × ×

तब विड्डभ उस अति-रक्षित कमल-सरोवर को देखने पहुँचा जहाँ मल्लिका के कारण अकेले बन्धुल को पाँच सौ लिच्छवियों पर विजय-श्री प्राप्त हुई थी। बन्धुल के प्रति घृणा के भाव सहित भय भी उत्पन्न हुआ—ऐसा वीर—जो पाँच सौ योद्धाओं को यों अकेले परास्त कर सकता है; लिच्छवियों से भिड़कर सकुशल मल्लिका को लौटा ला सकता है—उसका विनाश शक्ति से नहीं प्रपंच से ही सम्भव हो सकता है।

और विड्डभ को—वहाँ के प्रहरियों ने भी प्रवेश की अनुमति नहीं दी। उसे लगा—मैं कोशल का युवराज··· किन्तु पदच्युत हूँ, अतः यह अपमान सहन कर रहा हूँ। मैं एक प्रासाद—एक तुच्छ-से सरोवर का निरीक्षण नहीं कर सकता तो बन्धुल-सी शक्ति भी कहाँ से लाऊँ जो इन रक्षकों की पंक्ति छेदकर सरोवर का जलपान करूँ।

हताश, विड्डभ लौट आया।

× × ×

'देवी अम्बपाली की जय'—'देवी अम्बपाली की जय'—के उच्च घोष के साथ एक स्वर्ण शिविका राजमार्ग से आकर प्रासाद के बाह्य प्रांगण में प्रवेश कर रही थी। शिविका के साथ लगभग सौ लिच्छवि अश्वारोही सैनिकों की एक टुकड़ी अश्वों की खटपट सहित प्रांगण में यत्र-तत्र बिखर गई।

स्वर्ण-शिविका पर रेशमी अवगुण्ठन झिलमिला रहा था। शिविका-वाहकों के बहुमूल्य वेश—शिविकारोही के वैभव का प्रसार कर रहे थे। विड्डभ, हतप्रभ सा एक ओर खड़ा हो गया।

तभी शिविका बाह्य प्रांगण से प्रासाद के अन्तर्भाग में जाकर अदृश्य हो गई। अश्व सहित विड्डभ प्रासाद के प्रवेश-द्वार पर ठिठका खड़ा था। कुछ रुक कर विड्डभ ने आगे बढ़कर एक प्रहरी से प्रश्न किया—

"क्या देवी अम्बपाली से भेंट हो सकती है?"

"कदापि नहीं! इस समय देवी किसी से नहीं मिलतीं।" सैनिक-प्रहरी ने उन्नत-वक्ष को और उभारते हुए उपेक्षा-सहित उत्तर दिया और अपने श्मश्रु ऐंठता रहा।

विड्डभ तिलमिला कर रह गया। वह विलम्ब तक वहीं खड़ा रहा। तदनन्तर एक सैनिक अश्वारोही जो सम्भवतः उस सैनिक टुकड़ी का अधिपति था—प्रवेश-द्वार से बाहर निकला। विड्डभ ने अपना अश्व आगे बढ़ाकर उससे कहा—"मैं कोशल का युवराज विड्डभ हूँ—देवी अम्बपाली को सूचना दो—उनसे भेंट करना चाहता हूँ।"

अश्वारोही सैनिक ने विड्डभ को गहराई से देखा और जैसे कुछ ध्यान कर तुरन्त उसने विड्डभ को सैनिक अभिवादन किया, विड्डभ ने भी उसका उत्तर उसी प्रकार देकर अपनी भंगिमा को किंचित् गम्भीर बना लिया।

अश्वारोही ने विड्डभ को लेकर प्रासाद के बाह्य प्रांगण में प्रवेश किया। दोनों ने अपने-अपने अश्व छोड़ दिये जिनको दो सेवकों ने आगे बढ़कर थाम लिया। सैनिक ने विड्डभ को लाकर प्रतीक्षा-गृह में बैठाल

दिया और दौवारिक को विड्डभ का परिचय देते हुए देवी अम्बपाली को सूचना देने का निर्देश किया।

विड्डभ प्रासाद की भव्यता को निहारता रहा। उसके कर्ण-रन्ध्रों में मन्द पवन सहित वीणा के झंकृत-स्वर छन-छन कर प्रवेश पा रहे थे। वह उस मादकता में विलीन हो गया।

विड्डभ ने ध्यान किया वैशाली का यही सप्तभूमि प्रासाद है—यही वह विशाल विलास-गृह है जिसका उपभोग वैशाली गण-तन्त्र की राजनर्तकी सुन्दरी अम्बपाली कर रही है और सुन्दरी अम्बपाली के अप्रतिम रूप-यौवन का उपभोग भी यह जन-तन्त्र और इसका अभिजात-वर्ग स्वच्छन्दतापूर्वक कर रहा है।

वहीं एक प्रहरी—सरलतापूर्वक विड्डभ के निकट आकर उसके कान खाता रहा—"महाराज ! यह वैशाली का स्वर्ग है। यह वैशाली का सप्तभूमि प्रासाद है। इसमें सात खण्ड हैं। सात एक से एक भव्य प्रांगण हैं। बाह्य-प्रांगण में संध्याकाल वैशाली के नागरिकों, सामन्तों एवं सेट्ठियों के विविध वाहन, रथ, हाथी, शिविका आदि आकर भर जाते हैं।

"चलिए ! दिखलाऊँ एक प्रांगण में देवी की विशाल सेना—अश्व, रथ, गज आदि रहते हैं।

"दूसरे प्रांगण में खाद्य-भंडार है। नाना प्रकार के मद्य, आसव, मैरेय, मदिरा, केलिरत महाप्रभुओं के हेतु पौष्टिक पदार्थ आदि भरे पड़े हैं।

"एक स्थान पर सुगन्ध-सागर उमड़ रहा है।

"अन्तर प्रांगण में एक में देवी का स्वर्ण-रत्न भण्डार भरा पड़ा है।

"इसके पार्श्व-प्रांगण में देवी अभ्यागतों की अभ्यर्थना व सत्कार करती हैं। यहाँ देवी की चेटिकाओं एवं दासियों का समूह भरा पड़ा है। इसी प्रांगण में नृत्य, पान, द्यूत, संगीत होता रहता है।

"आप सुन रहे हैं—श्रीमान् ! यह जो वीणा का स्वर प्रस्फुरित हो रहा है, आज कौशाम्बी नरेश महाराज उदयन देवी के अतिथि हैं। वे त्रिलोक में अद्वितीय वीणा-वादक अपने वीणा-वादन द्वारा देवी का मनोरंजन स्वयं कर रहे हैं। और आप कैसे बैठे हैं ? इस समय क्या देवी आपसे मिलेंगी ? कभी नहीं मिलेगी।"

विड्डभ ने प्रहरी की वह राम-गाथा सुनी और ऊबता रहा। अनेक बार उन समस्त प्रांगणों को देखने का कौतूहल अवश्य जागा, किन्तु प्रतीक्षा की उद्विग्नता में वह कुलबुलाता रहा।

तत्काल दौवारिक ने आकर सूचना दी—"महाराज ! आपको प्रतीक्षा करनी होगी। इस समय देवी कौशाम्बीपति महाराज उदयन में व्यस्त हैं।"

तुरन्त विड्डभ ने कहा—"महाराज उदयन को सूचना दो, कोशल युवराज विड्डभ उनसे भेंट करना चाहता है।"

दौवारिक इस पर भी वहीं खड़ा रहा। तब उचट कर विड्डभ ने कहा—"मैं आज्ञा देता हूँ। महाराज उदयन को तुरन्त सूचना दो।"

दौवारिक के चले जाने पर विड्डभ सोचता रहा। उदयन—अम्ब-पाली के प्रासाद में। अम्बपाली की इतनी महत्ता। किन्तु वह सुरा-सुन्दरियों का उपासक—उसको तो यहाँ होना ही चाहिए।

और वह प्रतीहारी जो पहले ही उसके प्राण चाट रहा था, कहता गया—"मगध सम्राट् बिम्बसार जब छिपकर इस प्रासाद में आया करते थे तब अगले दिवस हम सबको रत्नाभूषण प्राप्त होते थे। अब सुना है—महाराज को उनके लड़के ने राज्य से निकाल दिया है। ऐसे भी लड़के होते हैं।"

विड्डभ प्रारम्भ से अन्त तक सब कुछ मौन हो सुनता रहा। उसने ध्यान किया इसके अनन्तर अब उसके पिता प्रसेनजित का नाम भी सामने आने ही को है। अम्बपाली की अपार महिमा से तो अब वह और भी उत्कंठित हो रहा था कि किसी भाँति उस रूप-छवि के

दर्शन करके ही वहाँ से जावे। साथ ही वह ध्यान करता रहा—कैसा सुयोग है ? यहीं उदयन से भेंट हो रही है। अपनी योजना को व्यक्त करना कितना सरल है। प्रतीत होता है, शुभ-लक्षण हैं। कार्य-सिद्धि अवश्यम्भावी है और तब श्रावस्ती का सिंहासन एवं मल्लिका • • •।

मल्लिका का ध्यान वह एक पल को भी न छोड़ता था।

तभी दौवारिक ने आकर कहा—"महाराज ! पधारिए। कौशाम्बी-पति ने आपको अपने निकट पहुँचाने का आदेश किया है। देवी ने भी आपको ससम्मान ले आने की आज्ञा दी है।"

विड्डभ ने पुलक मन से दौवारिक का अनुगमन किया।

× × ×

विड्डभ जब राजनर्तकी अम्बपाली के मिलन-प्रांगण में पहुँचा तो उदयन ने खिलखिला कर हँसते हुए उसका स्वागत किया—"आओ जी कोशल-युवराज ! इधर वैशाली कैसे घूम पड़े।"

"आपसे भेंट करने—देवी अम्बपाली के दर्शन करने," कहते हुए विड्डभ ने समक्ष बैठे उस अप्सरि-रूप की ओर निहारा।

राजनर्तकी अम्बपाली ने सस्मित नेत्रों से विड्डभ का स्वागत किया। विड्डभ कई क्षरण तक उस अप्रतिम रूप की चन्द्रिका में आह्लादित होता रहा तभी उदयन ने अम्बपाली की ओर मुस्कराहट बिखेरते हुए कहा—"अच्छा, मुझसे भेंट करने, और देवी अम्बपाली के दर्शन करने अर्थात् हम दर्शनीय हैं ही नहीं ?"

सेवा-कार्यों में रत चतुर्दिक् बिखरी अनेक लावण्यमयी दासियों सहित अम्बपाली मुस्करा दी। विड्डभ—जनपद-कल्याणी अम्बपाली के उस प्रांगण में फैली हुई सुगन्धि की मादक सुवास से अर्धमूर्च्छित सा हो रहा था। वह उस पल देख रहा था—उस युग के विलास-वैभव की अतुल कमनीयता में परम सुन्दरी अम्बपाली को—उसके अप्रतिम अंग-सौष्ठव को जिस पर जन-जन अपना अपार प्रेमोन्माद लुटाते; जिसके पुष्प व पुष्पगुच्छों से उपासक प्रांगण पाट देते; जिसके चरणों में—

अनेक जनपदों सहित वैशाली से अतुल सम्पत्ति, धन, रत्न, स्वर्ण, अलंकार, आभूषण खिंचा चला आता।

और एक दृष्टि में ही उसने देखी सेविकाओं की वह पंक्ति—अर्ध-नग्न, रूप-यौवन की वे तन्द्रिल मुस्कान-छवियां जिनके शरीर के प्रकम्प मात्र में देहयष्ठि बल खा रही थी, वे अपनी स्वामिनी की ही भांति रूप की उदार गरिमा में ओत-प्रोत थीं। कोई मदिरा का स्वर्ण-पात्र हाथ में लिये उदयन की ओर निहार रही थी। कोई स्वर्ण-प्यालों को संभाल-संभाल कर रत्न-चौकी पर टिका रही थी। चार-छै इधर-उधर यों ही व्यस्तता का आडम्बर प्रदर्शित कर अपने यौवन-भार को उछाल-उछाल कर चल रही थीं। कई मोर-पंखों के बड़े-बड़े पंखे लिये उन्हें हिलाने-डुलाने के बहाने लिये आपस में ही कटाक्षों का आदान-प्रदान कर ज्यों नवागन्तुक का स्वागत अथवा परिहास कर रही थीं। विड्डभ को लगा वे उसकी खिल्ली उड़ा रही हैं। तभी उसने अपनी दृष्टि कौशाम्बी पति उदयन पर केन्द्रित कर ली।

उदयन के उस व्यंग्य पर अम्बपाली ने तुरन्त उत्तर दिया—"महाराज, यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रकृति वन्दनीय है। रूप प्रकृति है। वह दर्शनीय है। कमनीय नारी-छवि की उपासना की होड़ अपने मानव-विरचित-साम्राज्य की आस्थाओं से मत कीजिए देव! नारी-रूप-यौवन साम्राज्य की माप में आपके एक भी साम्राज्य नहीं टिक सकते।"

"मानता हूँ, मानता हूँ। जनपदकल्याणी अम्बपाली के कथन की महत्ता को भी और उनके रूप-साम्राज्य की गरिमा को भी। हम तुच्छ···आराधक··" कहते-कहते उदयन मदिरा की उत्तेजना में मखमल के बहुमूल्य तकिये पर पीठ का सहारा ले लुढ़क गया।

"पूज्य से पूजक का पद उच्च है देव!" अम्बपाली ने अपने नेत्रों की रक्तिमा को किंचित् उल्लसित करते हुए व्यक्त किया और तत्क्षण

विड्डभ को सम्बोधन कर बोली—"आपके दर्शन से आप्यायित हुई, युवराज !"

विड्डभ मौनस्थ—अम्बपाली की रूप-सुधा का पान करता रहा। अतिरेक में उसकी वाक्शक्ति विलीन हो रही थी। तभी अम्बपाली ने कौशाम्बी-नरेश को मदिरा की गफलत में डूबा देख विड्डभ से कहा—"युवराज ! नरेश ने एकान्त का अवसर ही नहीं दिया। कौशाम्बीपति के निर्देश पर विवश हो उन्हीं के समक्ष सत्कार कर रही हूँ, भद्र !"

"वैशाली की जनपदकल्याणी देवी अम्बपाली ने मुझे इतना अवसर प्रदान किया—इतना पर्याप्त है देवि ! मेरी अभिलाषा भी देवी के दर्शन मात्र की थी। वस्तुतः मुझे कौशाम्बी-नरेश से भी आवश्यक कार्य है, देवी अम्बपाली।"

"राजनीति के कार्य इस मदिर प्रांगण के बाहर युवराज !" कहते हुए उदयन आसन पर संभल कर बैठ गया।

"आप निश्चिन्त रहें महाराज ! यहां के सरस वातावरण में उस नीरसता का प्रलाप नहीं छेड़ूँगा।" कहकर विड्डभ हँस दिया।

तभी अम्बपाली के संकेत पर दो दासियों ने विड्डभ के निकट आ अपने नूपुरों के क्वणन से उसे रोमांचित कर दिया। दासियों ने अपनी मृणालसम सुगोल एवं थिरकती बाहों को विड्डभ पर आरोपित करते हुए मदिरा-पात्र की रत्न-चौकी आगे बढ़ा दी। तुरन्त एक दासी ने अंगूरी का सुवासित प्याला विड्डभ की ओर बढ़ा दिया। विड्डभ ने एक दृष्टि में, चित्रवत् उस प्रक्रिया को देख तब अम्बपाली के अलौकिक सौन्दर्य को निहार मदिरा-पात्र ओठों पर लगा लिया। अम्बपाली मुस्करा दी।

विड्डभ दासियों में उलझ गया और अम्बपाली उदयन की ओर आकृष्ट हो वार्तालाप प्रारम्भ करने का प्रयास करने लगी।

विड्डभ ने एक दृष्टि में देखा—विलासिता, ऐश्वर्य, काम, रति,

तृप्ति का अनन्य साम्राज्य, अणु-अणु में झंकृत यौवन-रूप की तरल संगीत ध्वनियाँ; चतुर्दिक् उठती मदिरा की सुगन्धि; यत्र-तत्र उमड़ती दासियों की अर्धनग्न अचेत चेतना, अपार धन के व्यय के अनन्तर जुटाई गई उस विलास प्रांगण की बहुमूल्य वस्तुएँ, स्वर्ण चौकियाँ; रत्न-जटित पीठिकायें; मदिरा-माध्वीक के स्वर्ण-पात्रों के विभिन्न प्रकार; बहुमूल्य बिछौने, मखमल रेशम के गद्दे, तकिये एवं वह भव्य प्रांगण जिसमें एक साथ सौ दो सौ व्यक्तियों के बैठने का स्थान था और जहां संध्या-समय दो-दो चारचार के समूहों में रस-लोलुप सामन्त-पुत्र, सेट्ठि-पुत्र वैशाली के अभिजात-वर्गीय विशिष्ट नागरिक द्यूत क्रीड़ा, सुवासित मदिरा-पान, केलि-क्रीड़ा रत होकर हर्षातिरेक से आप्लावित होते थे। वहीं उस रूप-साम्राज्य की श्रेष्ठतम सुन्दरी, कला की अधिष्ठात्री मूर्ति अम्बपाली वैशाली गण-तन्त्र से भी अधिक वैभवशाली साम्राज्य की एकाधिकारिणी हो समभाव से प्रेमलीला, अनुराग-लीला, आत्मार्पण सहित गहनतम वासनाओं की रोमांच लीलायें सम्पन्न करती थी। यही वह नारी-प्रतिभा का अजेय अभेद्य रूप है जिस पर बड़े-बड़े वैभवशाली सम्राट् विजित हो अपना सौभाग्य मानकर बलि हो जाते थे। यही अम्बपाली थी जिस पर मगधाधिपति बिम्बसार, कौशाम्बी-नरेश उदयन एवं वैशाली गणतन्त्र के अष्टकुल के राजाओं की श्री और सर्वस्व एक भ्रू-विलोड़न पर न्यौछावर होते थे। यही इस काल के भारत की सर्वाधिक प्रतिष्ठित लावण्य की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा राजनर्तकी अम्बपाली थी जिसके कोषपति स्वर्ण-रत्नों की उपहार भेंटों को गिनकर नहीं तराजू से तौल-तौल कर रखते थे। जिसके इस प्रासाद में अनेक समृद्धिशाली राज्यों की अतुल सम्पदा भरी पड़ी थी। जिसका कोष प्रतिपल उतना ही बढ़ता जा रहा था जितना उसका रूप-यौवन क्षण-क्षण क्षीण होकर भी निखरता चला आता था।

और विड्डभ विचारता रहा—यह कौशाम्बीपति उदयन—उसकी

कला पर—जैसा सुना है अम्बपाली समर्पित है। यही वह व्यक्ति है जिसकी चाहना वह अन्तर्मन से, सम्भवतः कभी-कभी करती हो अन्यथा रूप, यौवन और वासना की अगाध धारा में न जाने कितने आते, रुकते और बहे चले जाते हैं। तब उसने अपनी स्थिति को आंका—कोशल के युवराज पद के आधार पर कुछ दिवस, कुछ सन्ध्या, वासना और विलास के अतिरेक में व्यतीत हो सकती है—किन्तु—किन्तु यों नहीं, राजशक्ति प्राप्तकर कोशलपति होकर जब वह इस वैभवशालिनी नारी के समक्ष आवेगा तो उसका स्थान आज से विशिष्ट होगा। तभी वह उस स्थिति में भी अकुला गया और उदयन की ओर देखकर ध्यान करने लगा—इस अचेतावस्था में कोशल-आक्रमण की चर्चा उतनी ही हास्यास्पद होगी जितनी अम्बपाली के समक्ष मनुष्य की रति की आध्यात्मिक विवेचना।

अतः विड्डभ ने उदयन से प्रश्न किया—"महाराज ! अपने प्रवास-स्थान पर भेंट करने का कोई समय निर्धारित करें।"

"हः हः हः, मेरा–मेरा प्रवास—देवी अम्बपाली का अन्तर्प्रांगण अथवा कौशाम्बी का राजप्रासाद। तो विड्डभ कौशाम्बी कब आ रहे हो ?" कहकर उदयन गिद्ध दृष्टि से अम्बपाली पर आश्रित हो गया।

विड्डभ चौंका। तो इस स्त्रैण शासक से वैशाली में रहते हुए भी भेंट सम्भव नहीं। उसमें कोशल राज-सत्ता का अहंकार जगा किन्तु फेनक के उफान की भाँति दब गया। वह निष्कासित राजकुमार था—वह तड़प गया। यदि वह स्थिति इस क्षण यहां प्रकट हो जावे तो–तो क्या उसका वह सत्कार अम्बपाली करेगी—जिस आतिथ्य को वैभव की प्रवंचना में ही वह प्रत्येक को प्रसाद रूप में बाँटती रहती है।

विलम्ब तक सुरापान के अनन्तर उदयन एवं अम्बपाली से विदा हो विड्डभ उस विलास-कक्ष से चला आया।

× × ×

"किन्तु यह सम्भव नहीं विड्डभ ! अपने पिता के प्रति विद्रोह का झंडा अजातशत्रु ने भी उठाया और अब उसी का अनुकरण तुम करने जा रहे हो। किसी भी अवस्था में वत्स जनपद तुम्हारा सहयोग नहीं कर सकता। मेरी मित्रता अथवा शत्रुता प्रसेनजित से है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्रसेनजित के पुत्र को कुमार्ग पर जाते समय मैं उसका सहयोगी बनूँ। तुम अपने पिता से क्षमायाचना कर अपने पद को पुनः प्राप्त करो। इसमें मैं प्रत्येक रूप में तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। वस्तुतः वत्स कोशल पर आक्रमण भी क्यों करे ?" उदयन ने विड्डभ से कहा।

कौशाम्बीपति उदयन ही नील-पद्म प्रासाद में अतिथि रूप में प्रवासी है—यह ज्ञात कर विड्डभ दूसरे दिवस उससे मिलने गया। किन्तु उदयन से अपने प्रस्ताव पर वैसा उत्तर पाकर उसने उसकी आन्तरिक चोट की पीड़ा को उभारने का प्रयत्न किया—"रानी कलिंग-सेना जो रूप-लावण्य में केवल अम्बपाली की प्रतिद्वन्द्विता स्वीकार कर सकती है—की अप्राप्ति के अनन्तर भी आप कोशल-नरेश के प्रति सहिष्णु बने रहना चाहते हैं।"

"विड्डभ लड़कों की स्थिति में हो, उसी प्रकार की बातें करो। इस प्रकार की उच्छृंखल वार्ता करते तुम्हें लज्जा नहीं आती। इसी उद्दण्डता के कारण प्रसेनजित ने तुम्हें अपदस्थ किया। अपने से बड़ों के प्रति ऐसे अभद्र व्यवहार के आधार पर ही कोशल के शासक बनने का स्वप्न लिये घूमते हो। कल मेरे ही समक्ष अम्बपाली के यहाँ सुरापान करते तुम्हें लज्जा का आभास भी नहीं हुआ। किन्तु तुमसे वह सब सम्भव है। जब तुम अपने पिता का अनादर कर सकते हो तो कुछ भी कर सकते हो....।" उत्तेजना में उदयन ने विड्डभ को फटकार दिया।

प्रथम तो अपराधी की भाँति—बैठा बैठा विड्डभ वह सब सुनता रहा तत्पश्चात् अनायास वहाँ से उठा और चल दिया।

२४

"बाजिरे ! साकेत में महाराज से छिप कर रहते तीन दिवस हो गये । विड्डभ का यहाँ भी पता नहीं । मैंने कहा था, न—यह खोज व्यर्थ ही है । चलो श्रावस्ती लौट चलें ।"

"पुनः बाजिरे ! मुझे राजकुमारी बाजिरा कहकर पुकारने में यदि तुम्हारा मान घटता है तो एक सैनिक के सम्पर्क में उससे अधिक मेरे स्वत्व की अवहेलना होती है, समझे ।"

"क्या, यह स्नेहपूर्ण सम्बोधन तुम्हें अखरता है, राजकुमारी ।"

"क्या इसका अधिकार तुम्हें प्राप्त है ?"

"अधिकार तुम्हीं से तो प्राप्त होगा ।"

"वह मरीचिका त्याग दो सैनिक ! मैं अपनी अंग-रक्षा के हेतु सदैव तुम्हें चुनती हूँ इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि तुम प्रति क्षण प्रणय-भिक्षा के बेसुरे राग अलापा करो," कोशल की राजकुमारी बाजिरा ने किंचित् क्रोध का अभिनय करते हुए कहा ।

"मैं अंग की नहीं अन्तरङ्ग की रक्षा···।"

"सावधान कारायण—एक बार पिता जी से मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा करा दिया है । इस बार तलवार तुम्हारे गले के पार हो ही जावेगी—समझे !"

"अच्छा है । उस बार तो मैं भी डर गया था । अब नहीं डरता । समझूँगा मुक्ति मिली ।"

"तो तुम-सा मूर्ख दूसरा नहीं होगा । केवल उद्दण्ड-वार्ता के कारण प्राण गँवा कर बलिदान का आनन्द लूटना चाहते हो," कहते-कहते बाजिरा ने अट्टहास कर वातावरण को गुँजा दिया ।

"तब, मेरी मुक्ति का मार्ग तुम्हीं बता दो, राजकुमारी !"

"हाँ, बताऊँगी । इस बार कोई अवसर आने दो और पिता जी को

श्रावस्ती पहुँच लेने दो। अभी तो माँ के निर्देश पर मैं स्वयं ही अपराध कर रही हूँ। पिता जी से छिपकर साकेत में हूँ—यदि वे सुन लें तो मेरे प्रति कैसी दुर्भावना उत्पन्न होगी उनके मन में," कहते-कहते बाजिरा किंचित् खिन्न हो उठी।

बाजिरा को यों साकेत में ऐकान्तिक रखकर उप-सेनाध्यक्ष कारायण अपने सैनिकों को पूरे दिन विडुभ की खोज में भेज देता था। अनेक बार उस रूप-कलिका के मदिर किन्तु अधखिले यौवन को देखकर उसके मन में दुर्वृत्तियाँ जागरूक हो अपना कार्य करतीं किन्तु अपराध के प्रतिफल से वह भयातुर भी बना रहता।

बाजिरा की स्थिति भी विचित्र थी। सदैव—कारायण के उद्दण्डता-पूर्ण व्यवहार से उत्तेजित होकर भी उसके सम्पर्क में उसे कुछ भला लगता। वैसी अनिच्छा में भी वह सन्तोष पा लेती।

शक्तिमती एवं स्वयं की आर्द्रता में वह भाई की खोज में जब चलने को प्रस्तुत हुई तो शक्तिमती ने मुस्करा कर कहा—"कारायण को साथ लेती जाओ।"

माँ की मुस्कान को बिना देखे, बाजिरा ने सहमति प्रकट की—"हाँ, माँ! मेरे साथ कारायण व अन्य कुछ सैनिक जा रहे हैं।"

महाराज साकेत में हैं। एक अवसर पर किसी प्रकार प्राणभिक्षा प्राप्त हुई थी। अतः कारायण बाजिरा के साथ जाते डर रहा था किन्तु बाजिरा के अनुरोध पर ही वह पुनः साथ हो लिया।

और जब बाजिरा का निश्छल अबोध रूप वह निकट देखता तो आवेग न रोक पाता। उसकी स्वयं की आयु भी तो अभी उसी परिधि में घुमेड़ें ले रही थी जिसके अन्दर रह कर भी मन इतना ऊपर—इतना दूर उड़ जाना चाहता है कि लोक की सीमा के परे हो जाय!

और साकेत में एक पान्थशाला में बाजिरा सहित कारायण टिके रहे। अन्य सैनिक अपने-अपने अश्वों को पान्थशाला से संलग्न अश्वशाला में छोड़ कर छद्म-वेश में विडुभ को दिन भर ढूँढते। वस्तुतः शक्तिमती

को किसी ने सूचना दी थी कि विड्डभ साकेत में ही है।

पान्थशाला में कारायण ने पर्याप्त स्थान ले रक्खा था। प्रात:काल ही श्रावस्ती को प्रस्थान करने का निश्चय कर रात्रि में सभी विश्राम कर रहे थे। बाजिरा अपने कक्ष में एकान्त-निद्रा के सुख में निश्चिन्त थी। निकटवर्ती अन्य कक्षों में अन्य सैनिक सो रहे थे किन्तु कारायण का मन जाग रहा था। उसका हृद्-चाप तीव्रतर होता चला जा रहा था। वह अनिद्रा में निद्रा की शान्ति को कुचलना चाहता था।

प्रणय-अनुराग की उस अपरिपक्व तीव्रता में अनियमन की बीभत्स कराह उसके मन को पीस रही थी। तभी वह उच्छृंखलता की सीमा को छूकर उत्पात का सृजन करना चाहता था।

वह अपने पर्यङ्क से उठ कर बाजिरा के एकान्त कक्ष की ओर एक दो पग बढ़ा ही था कि पीछे से गूँजते स्वर से काँप गया—'कारायण—कारायण''''।"

स्वर पहचान कर वह स्थिर हुआ और घूम पड़ा। "कौन ? विड्डभ'''।"

"कारायण—तुम कैसे ? बाजिरा यहां साकेत कैसे आई ? बाजिरा कहाँ है ?" आदि अनेक प्रश्नों सहित विड्डभ ने कारायण को आतंकित कर दिया।

"बाजिरा ! उस समक्ष के कक्ष में निद्रा-निमग्न है। हम लोग तो निरन्तर—सम्राज्ञी शक्तिमती के आदेश पर आप ही की खोज करते घूम रहे हैं," कारायण ने अपने को सर्वथा व्यवस्थित करते हुए व्यक्त किया। उसे प्रतीत हुआ जैसे अनर्थ के वे क्षण अच्छा हुआ टल गये।

तभी विड्डभ ने कड़क कर कहा—"किन्तु मेरी खोज में बाजिरा का क्या प्रयोजन ?" कहते-कहते वह बाजिरा की ओर बढ़ गया।

"कारायण पीछे हो लिया।"

"वास्तव में तो राजकुमारी ही आपके हेतु अत्यधिक उद्विग्न थी। रक्षार्थ मुझे भी अन्य सैनिकों सहित आना पड़ा।" कहते-कहते कारायण

ने आगे बढ़ कर बाजिरा के कक्ष का द्वार खोल दिया।

विडुभ ने तुरन्त उलट कर कारायण से प्रश्न किया—"कितने सैनिक तुम्हारे साथ हैं—कारायण ?"

"पचास···।"

"कल महाराज, कलिंगसेना सहित श्रावस्ती को प्रस्थान कर रहे हैं। यह तुम्हें ज्ञात है ?"

"नहीं।"

"तुम्हें कोशल के सेनापति के पद पर आसीन करूँ तो कुछ कर सकोगे ?"

"आज्ञा करें—युवराज !"

"महाराज के अंगरक्षकों पर आक्रमण कर सकते हो ?"

कारायण ने एक क्षण विचार किया। तब विडुभ की आकृति में कुछ पढ़ा और दृढ़ हो कर बोला—"कदापि नहीं।"

उग्र-स्वर में विडुभ चिल्ला पड़ा—"कदापि नहीं। हः, तो जानते हो यों बाजिरा को साथ लाकर तुम्हें क्या दंड प्राप्त होगा ?"

"कैसा दंड ? मैं निश्चिन्त हूँ राजकुमार ! अभय हूँ। राजकुमारी स्वेच्छा से आई हैं। राजकुमारी सम्राज्ञी शक्तिमती के निर्देश पर आई हैं। मैं राजकुमारी के आग्रह पर आया हूँ।···और आपने अपना घृणित मन्तव्य अनायास व्यक्त करके मुझे जिस प्रकार सतर्क कर दिया है, उससे मैं आपको इसी क्षण बन्दी घोषित करता हूँ। सावधान ! राजकुमार ?" कहते हुए कारायण ने दो-तीन दस्तक दीं। निमिषमात्र में सैनिकों ने विड्डभ को घेर लिया।

विडुभ उस अप्रत्याशित विपन्नावस्था में अत्यधिक आन्दोलित हो गया और अपनी शक्तिभर स्वर की तीव्रता में पुकार उठा—"बाजिरा !"

अत्यन्त विस्मय में बाजिरा घबड़ाती हुई जागते हुए समक्ष आई। विडुभ को देख कर वह चकित हो रही थी तभी अनायास उसने प्रश्न

किया—"क्या हुआ, कारायण ?"

"यही कि राजकुमार विडुभ मेरे आदेश पर बन्दी हैं ।"

"परन्तु—क्यों ? ऐसा क्या अनहोना हो गया, इस स्थान पर ? कारायण—भइया को तुरन्त मुक्त करो," कहते-कहते बाजिरा आगे बढ़ कर विडुभ से लिपट गई । उसके अश्रुविगलित नेत्र जलधार बहा चले ।

कारायण के आदेश पर सैनिक विडुभ से पृथक् हो गये । निकले खड्ग म्यानों के अन्दर लौट गये ।

हृदय का उफान जिह्वा तक आकर थम गया । इस क्षण विडुभ ने जीवन में प्रथम बार बुद्धि-बल का प्रयोग किया । उसे ध्यान आया—आचार्य का आदेश—कारायण से स्वार्थ-सिद्धि की बात । वह मौन बना रहा । तभी अनायास वह बोला—"कारायण—मुझे क्षमा करना । तुम जानते हो मेरी मनःस्थिति कैसी भयावह हो रही है ?"

"किन्तु—भविष्य के लिए सचेत करता हूँ राजकुमार ! कारायण आपका अनुचर है अपितु उससे कभी ऐसे किसी कार्य की आशा न कीजियेगा जो कोशल के हित के विपरीत हो ।"

कथन की उपेक्षा में विड्डभ बाजिरा को थपथपाता रहा । तभी कण्ठावरोध में बाजिरा ने कहा—"अब मेरे साथ चलो । माँ ने बुलाया है । देखते नहीं तुम्हारी खोज में मैं निकली हूँ ।"

"तुम क्यों आईं ?"

"भाई को खोजने मैं न आती तो कौन आता ? पिता जी तो स्वयं यहीं हैं···," कहते हुए बाजिरा भाई से और अधिक लिपट गई ।

"किन्तु, बाजिरा तुम श्रावस्ती जाओ । माँ को सन्तोष देना । मैं अभी श्रावस्ती नहीं चल सकता ।"

"तुम्हें—यह कैसे ज्ञात हुआ कि हम यहाँ हैं ? कारायण और सैनिक तो तुम्हें साकेत में ढूँढते-ढूँढते थक गये ।"

"मैं अभी-अभी वैशाली से लौटा हूँ। मैं तो इस पान्थशाला में विश्राम हेतु आया था। तभी कारायण के एक सैनिक ने—जो बाहर चतुश्शाल में बैठा मैरेय उड़ा रहा है—कहा, 'तुम, कारायण व अन्य सैनिक यहाँ हैं।'"

"तो तुम्हें अब श्रावस्ती चलना होगा," बाजिरा ने विडुभ से पृथक् हो हाथ पकड़ कर अनुरोध भरे स्वर में झकझोरते हुए कहा।

"श्रावस्ती आऊँगा—किन्तु, अभी नहीं। अच्छा, कारायण—बाजिरा विश्राम करो। अब मैं जाऊँगा," कहकर विडुभ चलने को उद्यत हुआ।

बाजिरा का रुदन भी उसे न रोक सका और उस रात्रि उसने उस पान्थशाला में विश्राम भी नहीं किया।

२५

साकेत से लौटकर मल्लिका एवं बंधुल कुछ दिवस श्रावस्ती में रहे। दोनों पति-पत्नी प्रतिदिन जाकर जैतवन में एकत्र अपार जन-समूह को देखते, तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध के दर्शन करते एवं विनत-भाव से उपदेश सुनकर लौटते।

परमानुगता मल्लिका पर करुणामूर्ति भगवान् बुद्ध के उपदेशों का विशेष प्रभाव होता। वह प्रतिदिन के व्यवहारों में भी उन सदुपदेशों को मूर्तित करती चली जाती। बंधुल पत्नी को देखकर कृतकृत्य होता। मल्लिका की धार्मिक-प्रभावना में उसे पवित्रता की अन्तर्ज्योति प्रकट होती प्रतीत होती।

अन्ततः श्रावस्ती प्रवास के अनन्तर बन्धुल मल्लिका सहित काशी पहुँचा। काशी में सामन्त-पद प्राप्त कर उसने जिस प्रकार कुशल शासक का परिचय दिया था उससे काशी के जन-जन में वह सर्वप्रिय होकर परम श्रद्धा का पात्र हो रहा था।

अस्तु, इस बार काशी आगमन पर सर्वप्रथम उसे ज्ञात हुआ काशी के नागरिकों में एक विशेष वृद्धि हुई है। एक नवीन बार-विलासिनी ने काशी के रसज्ञ-समाज में प्रवेश पाकर विशेष धन-सम्पत्ति बटोरना आरम्भ किया है। बंधुल ने सूचना को उपेक्षापूर्वक सुना और प्रसंग समाप्त कर दिया।

इसके कुछ समय पश्चात् काशी के बाह्य प्रान्तों में एक नये आतंक का सूत्रपात हुआ। ज्ञात हुआ कि कोई भयंकर दस्यु सीमा-प्रान्तों में उत्पात मचा रहा है। धन-जन को हानि पहुँचा रहा है। जनता भयातुर एवं त्रस्त हो रही है।

काशी के सामन्त मल्ल-बंधुल ने दस्यु के दुर्विनीत कार्यों की समाप्त के हेतु अपनी चेष्टायें प्रारम्भ कीं। अनेक बार सैनिक-टोलियाँ सीमान्त

में जा-जाकर दस्यु-संघर्ष में संलग्न हुईं किन्तु उनका कोई निश्चित फल न निकला। दस्यु की भयावह गतिविधियाँ बढ़ती चली गईं। स्थान-स्थान पर लूटमार, हत्यायें, निरीह ग्रामीणों को बन्दी बनाने के समाचार सर्वत्र प्रसारित होते रहे।

वह सब बंधुल के लिए एक ललकार थी। वह बंधुल के हेतु एक उत्तेजना थी। उस सब में बंधुल का रक्त खौल रहा था। अन्ततः बंधुल स्वयं सीमा-प्रदेशों की ओर गया किन्तु बंधुल भी विफल हो लौट आया। अमर्यादित दस्यु बंधुल के हाथ भी न लगा।

× × ×

"आप जब सीमा-प्रान्त गये थे तब पीछे यहाँ विड्डभ आया था। आपको पूछ कर लौट गया," नायक सोमदेव ने सामन्त बंधुल के आते ही सूचना दी।

"विड्डभ काशी में···," कह कर बंधुल ने अपने वर्म, धनुष-तूणीर, खड्ग ढीले करने प्रारम्भ किये। बंधुल के मस्तक पर चिन्ता-रेखायें खिंच रही थीं। दस्यु को पकड़ने की योजनायें प्रतिक्षण उसके मस्तिष्क को घेर रही थीं। एवं इस क्षण विड्डभ के आगमन का समाचार ज्ञात कर उसने ध्यान किया—"श्रावस्ती से निष्कासित होने के अनन्तर काशी आने में विड्डभ ने निश्चित ही कुछ कुत्सित योजनायें बनाई होंगी"

तभी विश्राम काल में बंधुल ने मल्लिका को सूचना दी—"मल्लिके! श्रावस्ती से अपदस्थ होकर विड्डभ काशी आया है। वह निश्चित ही कुछ दुर्वृत्तियाँ साथ लाया होगा।"

"तो, आपको क्या चिन्ता?" मल्लिका ने स्नेह से पति के बालों पर हाथ फेरते हुए कहा।

"यह दस्यु-अनाचार भी प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। मेरी सारी चेष्टायें—जीवन में प्रथम बार—असफल होती जाती हैं। मुझे बड़ी चिन्ता है, प्रिये!"

"वह स्वाभाविक है, नाथ! आपने तो सदैव वीरतापूर्वक युद्ध-क्षेत्रों

में शत्रु के समक्ष उससे विजय-श्री छीनी है। यह है—दस्यु का चौर-कर्म—उसमें आपको असफलता मिलना कोई आश्चर्य नहीं।"

"तुम ठीक कहती हो। दस्यु के समक्ष आने पर मैं अवश्य उसके बल को देखूंगा। किन्तु छल के समक्ष मैं पूर्व से ही नत-मस्तक हूँ।" कहते-कहते बंधुल निद्रा-निमग्न हो गया। मल्लिका विलम्ब तक पति के मस्तक को अपनी गोद में लेकर सहलाती रही।

कितने सुखी थे, पति-पत्नी!

× × ×

सामन्त मल्ल-बंधुल अपनी राज-सभा में उच्चासन पर बैठा था। अनेक शासनाधिकारी एवं सैन्याधिकारी चतुर्दिक् बैठे वार्तालाप में संलग्न थे। वार्तालाप के मुख्य विषय शासनसम्बन्धी नीति-निर्धारण के थे। तभी एक शासनाधिकारी ने कहा—"देव! कोशल के युवराज विड्डभ आजकल काशी में कहीं निवास कर रहे हैं।"

"पता लगाओ विड्डभ कहाँ प्रवास कर रहे हैं?"

"वे नित्य ही काशी की नवीन वारविलासिनी—सामावती के यहाँ आते-जाते हैं।"

"ओः," कहकर बंधुल मौन हो रहा। वह सोचता रहा—ये उद्धत राजकुमार अपनी कुल-मर्यादा सब समाप्त कर इस प्रकार निम्नस्तर पर उतर आते हैं। किन्तु इस विड्डभ में जो दूषित रक्त प्रवाहित हो रहा है, निश्चित यह उसी का कुफल है। साथ ही, प्रथम बार बंधुल के हृदय में उस विलासिनी सामावती के सम्बन्ध में भी कुछ आकर्षण जाग्रत हुआ। सुना है, वह अत्यन्त रूपवती है। कहीं बाहर से आकर काशी में वास कर रही है। कौन है—यह?

इसी मन के आन्दोलन में वह शासनाधिकारियों के बीच घिरा बैठा रहा, तभी एक सैनिक ने आकर सूचना दी—"दस्यु शैलेन्द्र ने गत-रात्रि दो ग्रामों पर भयंकर आक्रमण किये हैं। वह अकेला ही उत्पात करने गया था।"

"सोमदेव ! उन ग्रामों में जाकर पूरा विवरण लाओ," कहते हुए बंधुल ने अन्य अधिकारियों को सम्बोधित कर कहा—"अधिकारियो ! किसी प्रकार सामूहिक अथवा वैयक्तिक प्रयत्नों द्वारा इस दस्यु-त्रास का नाश होना ही चाहिये। विवरणों से जैसा ज्ञात होता है—शैलेन्द्र का कोई दल नहीं। वह अकेले ही इतने उत्पात कर रहा है। एक व्यक्ति इतने अनाचार करे यह हमारे शासन के लिए लज्जास्पद है।"

× × ×

"मल्लिका ! कोशल का अपदस्थ युवराज विड्डभ आजकल वार-विलासिनी सामावती के यहाँ प्रवास करता है।"

"ऐसी प्रवृत्ति के पुरुषों से और क्या आशा की जा सकती थी ?"

"उसमें—प्रसेनजित सहित जो दासी-रक्त प्रवाहित हो रहा है—उसकी निम्नता ही...."

"यह तो ठीक ही है किन्तु आप मगध के अजातशत्रु को क्या कहेंगे ?"

"मल्लिका ! तुमने उदाहरण उचित नहीं दिया। मगध-विग्रह में अनेक राजनीतिक एवं धार्मिक कूटनीतियाँ कार्यरत हैं जिन्होंने अजातशत्रु को वैसा करने को बाध्य किया है। सर्वाधिक—अजातशत्रु की माँ चेलना उसकी उत्तरदायी है।"

"यहाँ भी विड्डभ की माँ शक्तिमती विड्डभ के दुष्कर्मों की उत्तरदायी है।"

"यह ठीक है—अनेक अवसरों पर जहाँ एक ओर माँ महापुरुषों का सृजन करती है वहीं दूसरी ओर उसके अत्यधिक ममत्व से सन्तान को दुर्वृत्तियों के हेतु भी प्रेरणा प्राप्त होती है।"

"किन्तु आप विड्डभ-प्रसंग पर इतने चिन्तातुर क्यों हो उठे हैं, देव !"

"मल्लिका ! यह राजशक्ति बड़ी दुष्ट होती है। विड्डभ निश्चित ही काशी में कुछ विग्रह खड़े करेगा। यदि न्याय-पूर्वक मैं उनका दमन करूँगा तो सम्भव है कोशल-नरेश अर्थ का अनर्थ विचार डालें। अन्ततः

पुत्र का मोह ! और यदि मैं सरलता का उपयोग करूँगा तो मेरे शासन की जर्जरता प्रकट होगी। यह विड्डभ मुझ से भी किस प्रकार कुढ़ा हुआ है, तुम्हें ज्ञात है।"

"वाह ! आप रहे सेनापति के सेनापति ही। न्याय-संगत किसी भी कार्य को करने के पूर्व अथवा अनन्तर तर्क-वितर्क कैसा और भय कैसा ? सत्य और न्याय पर आरूढ़ होकर आप प्रसेनजित की राज-शक्ति से डरेंगे —यह कैसा कुविचार है—नाथ !"

बंधुल के सराहनायुक्त नेत्र मल्लिका पर केन्द्रित हो गये। मल्लिका गर्वित-सी पति को आश्वस्त कर पुन: बोली—"काशी के सामन्त ! जाइये, न्याययुक्त शासन की दृढ़ता सहित इसे धारण कीजिये," कहकर मल्लिका ने पति के भाल पर राज-मुकुट सुशोभित कर दिया।

इसी समय दौवारिक ने आकर सूचना दी—"श्रावस्ती से राजाज्ञा सहित एक सैनिक आया है। आपकी प्रतीक्षा में है।"

बंधुल दौवारिक से सूचना पा तत्काल सैनिक से भेंट करने के हेतु बाह्य प्रांगण की ओर चला गया।

२६

"बाजिरा ! आज महाराज साकेत से श्रावस्ती को प्रस्थान कर रहे हैं। क्यों न हम, अभी साकेत में ही ठहरें ? महाराज के जाने के अनन्तर हम इस पान्थशाला को छोड़कर प्रासाद में ही निवास करेंगे। और फिर जिस कार्य के हेतु हम आये थे वह पूर्ण भी हो गया है। विड्डभ मिल गया। अब वह साथ नहीं जा सकता था तो हम क्या करते ?" कारायण ने आकुल दृष्टि से बाजिरा के सद्यःरूप की स्निग्धता को हृदयंगम करते हुए कहा।

"किन्तु पिता जी के पहुँचने पर हमारी अनुपस्थिति से जो बवंडर खड़ा होगा, उसका शमन कौन करेगा बुद्धिराज ? अपनी अलस-मुस्कराहट में उप-सेनापति कारायण के बलिष्ठ कन्धों एवं गौर वर्ण में निखरी आकृति में झांकते हुए कोशल-राजकुमारी बाजिरा ने उत्तर दिया।

"महाराज के पहुँचने के साथ ही हमारा एक सैनिक श्रावस्ती पहुँच कर सूचना देगा कि हम लोग साकेत पहुँच गये हैं। प्रासाद में ठहरे हैं।"

"योजना तो पूर्ण है। किन्तु व्यर्थ पिताजी से इतना दुराव कर मिथ्याचरण करने से लाभ ?"

"साकेत की यह सुषमा, सरयू के निर्मल, स्निग्ध जल में क्रीड़ा का अमित सुख, नौका-विहार, प्रातः संध्या अश्वों पर चढ़कर प्राकृतिक दृश्यों की वह मनहर झाँकी, प्रासाद का शान्त एकान्त सुख—क्या तुम्हें यह कुछ भी आकर्षित नहीं करेगा ?" तरुण कारायण ने अनुरागित प्रदीप्ति में बाजिरा को उत्साहित करने का प्रयास किया।

बाजिरा ने अपने सुविशाल नेत्रों को कारायण की आकृति पर

केन्द्रित किया · · · तत्पश्चात् दृष्टि को शून्य में टिका कर एक पल कुछ विचार करती रही—अन्तर्मन के उद्रेक को किंचित् सम्भाल कर—मुस्कान को बरबस रोक कर रोष का अभिनय करते हुए बाजिरा ने कहा—"अभिप्राय स्पष्ट करो कारायण! उस सबसे क्या होगा ?"

किन्तु रोष का वह अभिनय फूट गया। वह अपने को अधिक व्यवस्थित न कर सकी और स्मित की उदार चेतना में उसके हृदय की गति तीव्र हो गई।

कारायण अपने प्रयोग में सफलता का आभास पा पुनः कह उठा—"इस सस्नेह रोष में भी कितनी उद्विग्नता भर आती है बाजिरा !"

बाजिरा में जैसे मचल उठने की, बिगड़ उठने की प्रकृति है। वह क्षण भर में उदार होकर मुस्करा जाती और दूसरे क्षण अनुदार चेष्टा में सक्रोध बिगड़ उठती—"फिर वही, प्रलाप, कारायण !"

और कारायण शनैः-शनैः बाजिरा को समझ गया था। अतः बाजिरा के उस क्षणिक रोष में भी अब वह उत्साह का अनुभव करता। बाजिरा को कुछ काल साकेत में रखकर वह क्या चाहता था—भली प्रकार जानता था। उसने ध्यान किया सरयू-तट पर स्नेह-नौका में पेंगें मारने से अच्छा अवसर उसे कदापि न मिलेगा। अतः वह अपनी बात पर टिक गया—"बाजिरा! तुम यदि साकेत में रहकर किंचित् भी कष्ट का अनुभव करो, किंचित् भी यदि तुम्हारा मन ऊबे तो · · · तो,"

"तो—क्या करना। तुम्हें शूली पर टांग देना। यही कहना चाहते हो।"

"ऐसा भी कर देना।"

"किन्तु रहूँ मैं साकेत में, क्यों ?"

"जब तक जी चाहे।"

"अभी चल दूँ, तो।"

अत्यधिक उदास मुद्रा में कारायण ने कहा—"चल दो · · ·।"

और बाजिरा हँस दी।

× × ×

सरयू के उस अथाह जल में कारायण एवं बाजिरा की प्रणय-नौका नित्य लहरें लेती। जल-क्रीड़ा में अमित सुख पा बाजिरा स्वच्छन्दता में अपने तरुण-गात की स्निग्ध आभा कारायण पर आरोपित करती। कारायण रोमांच में—सीमायें पार करने की चेष्टा करके आगे बढ़ता तो हाथों की मदिर वर्जना से कोशल-राजकुमारी बाजिरा उसे दूर हटा देती।

तब वे नौका छोड़कर—छपाका मारते—जल में पैठ जाते। विलम्ब तक तैरते रहते। सरयू के जल में की सूर्य अबाध रश्मियां लहरों सहित तैर-तैर कर बाजिरा व कारायण से लिपटतीं-छूटतीं।

और जल से निकलकर लज्जावती बाजिरा अपने यौवन-भार को संभालते हुए निर्जनता को खोजती किन्तु सरयू का वह विस्तार, वहाँ ओट कहाँ ?

तब बाजिरा कारायण को लेकर कोशल-राजमहालय के एकान्त कक्ष में सरस वार्ता में संलग्न हो जाती। किन्तु उस ओट में भी वर्जना का अंकुश सदैव सजग रखकर बाजिरा अनुराग में पगी-पगी अतिरेक में डूब जाती। प्रतीत होता, उससे आगे की अछूती सीमाओं में बाजिरा से अधिक भय कारायण में विद्यमान था।

किन्तु बाजिरा-कारायण की वह प्रारम्भिक प्रणय-लीला अल्प-काल में ही समाप्त हो गई। जहां एक ओर कारायण के दूत ने प्रसेनजित को सूचना दी कि बाजिरा साकेत-राज-प्रासाद में है वहीं किसी ने कोशल-नरेश को कारायण के साहस के प्रति सचेत भी किया।

बाजिरा ने पिता के रोष का वृत्तान्त सुन, अत्यन्त भय-त्रस्त हो, श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया।

२७

शैलेन्द्र डाकू से समस्त काशी प्रान्त थर्रा उठा। शैलेन्द्र के अनाचारों, अत्याचारों, बीभत्स हत्याकाण्डों, धन-जन के विनाश से दुःखी हो जनता ने शासन को दोष देना प्रारम्भ किया। बन्धुल इन सबसे उद्विग्न था। उसका शौर्य, पराक्रम, कीर्ति सब नष्ट हो रही थी।

पति को दुःखी देख मल्लिका भी क्लेश का अनुभव करती किन्तु पति को निरन्तर सन्तोष देती रही। उसने ध्यान किया—"इतने प्रबल योद्धा सम्भवतः शासन की बागडोर संभालने में उतने सफल नहीं अथवा इस विशेष प्रसंग पर उनकी असफलता का कारण कुछ विचित्र सा ही है।"

उधर विड्डभ इधर-उधर दिखाई पड़कर अन्तर्धान हो जाता इससे बन्धुल और भी उद्विग्न था। उसका ध्यान था इस अज्ञातावस्था में ही विड्डभ उसके विरुद्ध किसी न किसी षड्यन्त्र का सृजन कर रहा है।

श्रावस्ती से जो राजाज्ञा आई थी उसमें भी येन-केन प्रकारेण दस्यु-दमन की ओर संकेत सहित विड्डभ को काशी प्रान्त से निष्कासित करने का निर्देष था अतः बंधुल विड्डभ एवं शैलेन्द्र दोनों की ही खोज में संलग्न हो गया।

× × ×

रूप और यौवन के अतिरेक में जन-जन को विमोहित करने वाली वार-विलासिनी जीवन में प्रथम बार प्रणय-विरह के उद्वेग में आबद्ध हो गई। काशी के रसज्ञ-समाज के आकर्षण की केन्द्रस्थली सामावती और उसका वैभव-सम्पन्न विलास-कक्ष शून्य अन्तरिक्ष सा उदास प्रतीक्षा के क्षण गिनने लगा। प्रणय के आवेश में सामावती ने अपने अनन्य उपासकों; अनगिन स्नेहियों, अनेक सेट्ठियों एवं विशिष्ट नागरिकों को तिरस्कृत कर अपने प्रवास से एक-एक करके बाहर निकाल दिया। लोगों

ने वहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। किन्तु सामावती ने इतना धन संचित कर लिया था कि उसे उस सब की चिन्ता न थी।

चिन्ता थी तो केवल उस व्यक्ति की जो आज चार दिवस से उसके यहां नहीं आया था। वह आतुर प्रतीक्षा में अकुला कर रोने लगी अन्यथा वार-विलासिनी नारी को किसका सोच, किसके हेतु रुदन; किन्तु सामावती में उत्पन्न उस विचित्र परिवर्तन को जो भी सुन पाता विस्मित होता।

केवल एक चर्चा थी—एक विशेष व्यक्ति ने जब से उसके यहाँ आना आरम्भ किया है तभी से सामावती ने अपने से विराग ले लिया है। उपासकों के ठट्ट के ठट्ट उसने अपमानित कर लौटा दिये। वे बहुमूल्य उपहार उसने अपने हाथों उठा-उठाकर फेंकने प्रारम्भ कर दिये जिनको बड़े चाव से कभी वह हाथ में लेकर प्रेमालाप करती और मदिरा की विमुग्ध चेतना में स्वयं डूब कर समक्ष को डुबा डालती।

इस विचित्रता से भी अधिक विचित्र कथा उसके काशी-अवतरण की थी। अनायास कहीं से वह काशी में आई। उसके अनिंद्य-रूप एवं यौवन की प्रशंसा अल्पकाल में ही सर्वत्र फैल गई और रस-पिपासु स्नेहियों ने कभी यह भी जानने की चेष्टा न की कि वह कौन है? क्या है? कहाँ से एकाएक उसका काशी में उद्भव हुआ?

सामावती को स्वयं ही अपने इतिहास पर आश्चर्य होता। वह क्या थी? क्या हो गई? कहाँ थी? कहाँ आगई? अब रोम-रोम में विद्ध मदिरा, मादकता, वासना, अतिरेक का परमानन्द पाने के अनन्तर इस प्रणय-जन्यविरह से आक्रान्त हो प्रतिपल किसी की प्रतीक्षा करती है? और वह भी कौन है? वह विचित्र पुरुष अपने कठोर कर्म सहित कितना करुण है? कितना आकर्षक? कैसे उसने उसके अन्तराल में प्रवेश पाकर उसे झकझोर डाला है? जैसे उसने उसके जीवन की दिशायें ही मोड़ दी हों।

× × ×

सामावती, प्रतीक्षा में अलस-उदासी लिये पर्यंक पर पलक मूँदे दाहिने पार्श्व को मुँह करके लेटी थी। वह स्वर्ण-रत्न-जटित कलात्मक पर्यंक अपने में रूप और यौवन की मादकता का अनुभव कर उल्लसित हो रहा था किन्तु वह रूप स्वयं में मुरझाया पड़ा था। समक्ष ही अनेक स्वर्ण पीठिकायें रक्खी हुई थीं। बीच में चार-पाँच चौकियां रक्खी हुई थीं जिनपर मदिरा के स्वर्ण-पात्र, सामावती के मन की रिक्तता की ही भाँति रिक्त पड़े थे। प्रतीक्षा में उनका भी रंग सामावती की ही भाँति, पीत-श्यामल हो रहा था।

स्वामिनी को उस अवस्था में देख उस विलास-कक्ष की अनेक दासियाँ उदास आकृति लिये इधर-उधर बैठी थीं या डोल-फिर रही थीं। ऐश्वर्य, विलास, वासना, क्रीड़ा, लीला का वह वैभव-विलास उस काल सुनसान पड़ा रुदन का सा उपक्रम कर रहा था।

तभी आहट हुई। सामावती, पर्यङ्क पर चौंक कर सीधी हो गई। उसका मन खिल उठा, उसकी आकृति में पुनः मादक रक्तिमा दौड़ गई। उसकी भंगिमा में खिल-खिलाहट पुनः नाच उठी। उसके पैर थिरक उठे और वह पलक मारते उठ बैठी।

प्रतीत हुआ, जैसे उस उदासी की घटायें कहीं विलीन हो गईं। सर्वत्र उत्साह भर आया। दासियाँ प्रसन्न हो उठीं। सम्पूर्ण विलास-कक्ष पुनः किसी हरित डाल सा झूमने लगा जैसे मलय-पवन ने चतुर्दिक् प्राण फूँक दिये।

निमिष मात्र में एक तरुण-योद्धा अपनी खड्ग हिलाता, खिलखिलाता सामावती के समक्ष आ खड़ा हुआ। वह पर्यंक से उठी और उससे लिपट गई। तरुण विलम्ब तक सामावती के बालों पर हाथ फेरता रहा। उसे थपथपाता रहा। व्यवस्था होने पर सामावती ने मचलते हुए कहा—"यों तरसा-तड़पा कर चले जाया करोगे?"

"फिर वही बे-सिर-पैर की बातें। मैंने कह दिया है, मेरे जाने-आने पर बन्धन लगाने की बात की और मैं चला···," कहकर जैसे

तरुण ने जाने का सा उपक्रम किया।

सामावती उससे इठलाते हुए बोली—"मत जाओ। मत जाना—मेरे जीवनधन ! मैं तुम्हारे बिना जीवित ही मृत हूँ। तुम कुछ करो। कहीं रहो। बस यों नयनों की चाह मिटती रहे, पर्याप्त है। अब तक के जीवन के इस सरस एवं वासनामय वातावरण में भी मन जो कराहता रहा है, जो टीस इसमें भरी है…जो अतृप्ति अन्तर से फुफकार रही है उसके लिये प्यार दो, प्रणय दो, स्नेह का विरहपूर्ण प्रसाद दो—सब स्वीकार करूँगी। अपना रूप—अपनी काया का कुँदन सा यौवन, अपनी कला का रत्न-भाँडार तुम पर लुटा दूँगी, किन्तु तुमसे विलग न रहूँगी, मेरे निकट आओ मेरे सर्वस्व।"

तरुण उपेक्षा की हंसी हंसता वह सब सुनता रहा। सामावती को दुलराता रहा।

दासियों ने माध्वीक के स्वर्ण-पात्र चौकियों पर लाकर व्यवस्थित कर दिये और सुरापान का वातावरण उल्लसित हो उठा। पात्र पर पात्र रिक्त होते गये। सामावती और तरुण एक दूसरे में उलझते चले गये।

× × ×

इस बार तरुण कई दिवस तक सामावती के यहाँ ही बना रहा। केलिरत सामावती तरुण में झूम-झूम गई। मदिरा में आकंठ तैरते तरुण ने तरलता और रक्तिमा को चूम-चूम कर अनेक दिवस-रात्रि, उस विलास-कक्ष में आनन्दातिरेक सहित व्यतीत किये।

अनायास एक संध्या तरुण ने उस मादकता को झकझोर कर अलग फेंकते हुए कहा—"सामा ! मैं चला। कब आऊँगा, मैं स्वयं नहीं जानता। कहो अभी लौट आऊँ। सम्भव है दो-चार-दस दिवस में लौटूँ। या कभी लौटूँ ही नहीं।"

पूर्णार्पण की गहन उद्दीप्ति में सामा के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। वह निर्वाक् तरुण को देखते रहकर अपने अश्रु विगलित नेत्रों को झीने उत्तरीय से सुखा लेती तब पुनः अबाध अश्रु प्रकट होते चले आते।

तरुण पुनः बोला—"यों मेरे पथ को कंटकाकीर्ण मत बनाओ। इन आँसुओं से मेरी दुर्धर्षता मत धोओ। मुझे जाने दो! मैं एक पल नहीं रुक सकता।"

कहते-कहते तरुण उसी भाँति खड्ग हिलाते वहाँ से ओझल हो गया।

× × ×

"स्वागत! युवराज, पधारिये, पधारिये," कहते हुए काशी के सामन्त बन्धुल ने विड्डभ का स्वागत किया।

एक वक्र-दृष्टि विड्डभ ने बन्धुल, तदनन्तर सामन्त के वैभव पर केन्द्रित की। काशी का उस राज-प्रासाद का संथागार इस अनुचर के उपभोग में—सोचते हुए विड्डभ अपनी दृष्टि को इधर-उधर फेरता रहा। बन्धुल सतर्क भाव से विड्डभ की गतिविधि की परीक्षा करता रहा। विड्डभ नग्न खड्ग हिलाता उस प्राँगण भर में इधर से उधर झूम रहा था। प्रहरी ड्योढ़ियों पर लगे सशंक दृष्टि से—भाले उठाए—उस ओर ही देख रहे थे।

अन्धकार घिर आया था। संथागार के दीप-गुच्छ उस बृहत् सभा-भवन को आलोकित कर रहे थे। बन्धुल विड्डभ की उस अनियन्त्रित दशा एवं रात्रि के उस प्रहर में उसके आगमन की विचित्रता में पूर्ण सतर्क हो, कटि में झूमती अपनी खड्ग का स्मरण कर एक स्थान पर खड़े होकर उसे देखता रहा। तभी इधर-उधर हिल डुलकर विड्डभ स्वतः एक स्वर्ण-पीठिका पर बैठ गया। बन्धुल ने भी निकटवर्ती स्वर्ण-पीठिका पर बैठकर वार्ता प्रारम्भ की—"युवराज का आगमन कहाँ से हो रहा है?"

"काशी सामन्त! युवराज सम्बोधन से मेरा अपमान करना चाहते हो। जैसे तुम्हें यह ज्ञात ही नहीं कि कोशल का मैं एक पदच्युत एवं निष्कासित ही नहीं अपमानित व्यक्ति हूँ," कहते हुए विड्डभ ने यत्र-तत्र दृष्टि फेंकी। उसे प्रतीत हुआ बन्धुल ही नहीं प्रहरी-सैनिक भी उसकी ओर सशंक दृष्टि से देख रहे हैं।

"किन्तु हमारे समक्ष तो आपकी मर्यादा सर्वथा पूर्ववत् है। हम तो कोशलराज्य के एक अनुचर हैं और आपके भी," बन्धुल ने पूर्णतः व्यावहारिक विनम्रता सहित व्यक्त किया।

"पिता जी का मस्तिष्क विकृत करके अब इस प्रकार की वार्ता करना अशोभनीय है, मल्ल-बन्धुल।"

"यह राजकुमार का भ्रम है। मैं उस प्रकार का चाटुकार नहीं।"

"मैं इस समय विवाद-वार्ता करने नहीं आया हूँ, सामन्त!"

"तब, आगमन का मन्तव्य स्पष्ट करें, श्रीमान्! मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

"हः...हः...हः...।"

बंधुल ने अब ज्ञात किया कि विड्डभ मदिरा के आवेग में पूर्णतः गर्त है! अतः बन्धुल मौन रहा।

विड्डभ ने पुनः प्रकट किया—"काशी-सामन्त! मुझे धन की आवश्यकता है। क्या तुम कुछ द्रव्य मुझे दे सकते हो?"

"राज-कोष, मैं बिना कोशल-नरेश की अनुमति के नहीं दे सकता।"

"सावधान! बंधुल, मैं धन लेकर जाऊँगा," कहते हुए अनायास विड्डभ खड्ग लेकर बंधुल की ओर लपका।

पूर्व से ही सतर्क बंधुल ने पलक मारते ही उस अप्रत्याशित प्रहार का कौशल से सामना किया। उसकी तलवार भी बाहर लपलपा आई थी। बंधुल ने प्रतिघात की उत्तेजना में तलवार को दाहिने से घुमाकर सामने करते हुए कहा—"उद्धत वीर! मैं समझता था कि तुम चोरी से वार करोगे।"

"तो मृत्यु के लिए तत्पर हो जाओ कोशल सेनापति! तुम्हारे समक्ष शैलेन्द्र दस्यु, तुम्हारे रक्त के लिए छटपटा रहा है।"

"ओ···समझा, तो तुम हो वह। अब मुझसे—बंधुल से अपने शौर्य का उद्घोष कर रहे हो। लो—सैनिकों के लिए तत्पर हो जाओ," और दूसरे ही हाथ में अचानक विड्डभ की खड्ग लगभग सौ गज दूर फेंकते

हुए बंधुल ने हाथ की दस्तक दी—"सैनिको ! बन्दी कर लो इस राजद्रोही कोशल के युवराज रूप में शैलेन्द्र डाकू को।" "युवराज ! मैं विवश हूँ दण्डनीति के हेतु तुम्हें बाध्य करने में मुझे भी खेद है। तुम अपनी ही प्रजा पर अपने हाथों इतना अत्याचार कर रहे हो, यह पूर्व से ज्ञात होता तो अब तक जनता त्रास से मुक्त हो चुकी होती···।"

सैनिकों से घिरा विड्डभ अत्यन्त दयनीय स्थिति में निर्वाक् खड़ा रह गया।

"नाथ ! ये जिस स्थिति में हैं अधिक श्रेय हैं। आप इन्हें मुक्त कर दीजिये," कहते हुए एक ओर से मल्लिका आकर अपने पति के समक्ष खड़ी हो गई। उसने विड्डभ की ओर एक बार देखा भी नहीं।

"यह अनुचित होगा, प्रिये ! शासन-सत्ता इसकी अनुमति नहीं देती। मै विवश हूँ।"

"आज नहीं तो कल इन्हें शुद्ध-बुद्धि प्राप्त होगी। आप इन्हें क्षमा प्रदान करें," कहते हुए मल्लिका की तेजस्विता और निखर आई।

"सैनिको ! इनको ससम्मान प्रासाद के बाहर छोड़ आओ," व्यक्त कर बंधुल उपेक्षा-भाव-सहित—"मल्लिका, चलो···" कहते हुए मल्लिका को लेकर अन्तःपुर की ओर चला गया।

अपमान की तीव्र विभीषिका में रिक्त हाथों विड्डभ काशी राज-महालय के बाहर आया। मल्लिका के दर्शन से जो उद्विग्नता उसमें प्रकट हो पाई थी वह उसकी दया-करुणा के समक्ष हिमवत् द्रवित व शीतल हो गई। मदिरा का उद्रेक विलीन हो गया। बंधुल के हाथों पराजय की तीव्र ज्वलन में दहकता हृदय लिये वह सामावती के निवास की ओर बढ़ गया।

"सामा !···," की चीत्कार सहित उसने सामा-वेश्या के शयन-कक्ष में प्रवेश किया। सामा ने देखा—उसके समक्ष उस आत्म-विस्मृति में मानवरूपी एक दानव अंगारे-सी लाल आँखें निकाले खड़ा है। उसने

बिचारा—अनुमानतः सुरा की अधिकता में शैलेन्द्र की वैसी अवस्था हो रही है। शैलेन्द्र ने पुनः एक चीत्कार प्रकट की "सामा !···मैं दस्यु शैलेन्द्र हूँ····।"

"मैं जानती हूँ, मेरे आराध्य !"

"तब भी तुम मुझे प्यार करती हो।"

"तुम दस्यु हो, इसी अभिज्ञता में तुम पर अपने जीवन का अपार स्नेह उँडेलती हूँ।"

"तुम मूर्खा हो।"

"मैं नहीं मानती।"

"अच्छा सो जाओ," कहते हुए विड्डभ ने सामा की गोद में सर रख निद्रा लाने का प्रयत्न किया। सामा ने विलम्ब तक विड्डभ को व्यवस्थित किया, उसका सर दाबा, उसे स्नेहातिरेक में पुचकारती रही। तब मदिरा की अवशता में वह सो गया।

× × ×

एक प्रहर रात्रि शेष थी। विड्डभ की निद्रा भंग हुई। पर्यङ्क पर निकट ही सामा अपने अनिंद्य रूप एवं अपरिमित यौवन के उल्लास में अपनी मांसलता की उद्दीप्ति सहित अचेत सो रही थी। भवन की अन्य सेविकायें भी यत्र-तत्र सोई हुई थीं। विड्डभ उठ बैठा। उसने अपने को व्यवस्थित किया। अपनी कमर टटोली। विचारा—'ओ !····खड्ग तो बंधुल ने फेंक दी ! वह किटकिटा उठा······ऐसा अपमान, बंधुल द्वारा, मल्लिका····ओह !···मल्लिका को भी ज्ञात हुआ होगा। और उस अपमान एवं खेद के आक्रोश में उसने सामा की गर्दन दबा दी। सामा ने चीत्कार सहित अपने नेत्र खोले और प्रहार से अचेत हो गई।

विड्डभ ने तुरन्त सामा के वक्षभाग, कंठ भाग, कलाइयां, कटि टटोली। हीरक, मुक्ता, पन्ना के बहुमूल्य आभूषण एवं मेखलायें झटक-झटक कर उतारीं, कटि में बंधी कोष की ताली निकाली, अपनी शक्तिभर जो कुछ भी उठाकर वह ले जा सका लेकर, स्नेह में ओत-प्रोत सामा को मृतक जान वहीं छोड़कर चला गया।

२८

आचार्य अजित अपने आश्रम में मृग-चर्म पर बैठे किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे । उनके लोहित शरीर से अग्नि-शिखायें सी प्रकट हो रही थीं । आकृति में अत्यधिक आवेग था । कुटिल नेत्र चंचल हो रहे थे । भृकुटियाँ पल-पल में हिलती-डुलती थीं । मस्तक पर अनेक चिन्ता-रेखायें बन-मिट रही थीं । इतने ही में एक शिष्य ने आकर सूचना दी—"आचार्य ! अश्व-रथ पर एक राज-महिषी आई हैं । आप को पूछ रही हैं ।"

आचार्य अजित केसम्बल के भाव किंचित् परिवर्तित हुए । उन्होंने तुरन्त शिष्य को आदेश दिया—"उन देवी को इधर ही ले आओ ।"

× × ×

"इस विडुभ ने सब सत्यानाश कर दिया । मेरे सारे निर्देशों को उस मूर्ख ने अपनी झोली में पटक कर उसका मुँह बन्द कर दिया है और अब यत्र-तत्र भटकता फिर रहा है ।

"महाराज ! आप ही उसका उद्धार कीजिये ! उसकी मूर्खता को अब उसकी सफलता में परिणत कर दीजिये । मेरे हृदय की धधकती ज्वाला को शान्त कीजिये । मेरी उपेक्षा और अपमान का मुझे प्रतीकार मिलना ही चाहिये ।"

"शक्तिमती ! अब मैं कुछ नहीं कर सकता । सब व्यर्थ हो गया । तुम्हारी असावधानी से कारायण बन्दी-गृह में पड़ा है । विडुभ का भी कुछ पता नहीं । मैं अब क्या कर सकता हूँ ?"

"महाराज ! विडुभ बाजिरा से काशी की ओर जाने को कह गया था । यदि उचित समझें तो मैं किसी दूत को भेज कर विडुभ को श्रावस्ती बुलाने का प्रयत्न करूँ ।"

"वह करना होगा । कारायण को किसी प्रकार मुक्त कराना होगा । वह अब भली प्रकार प्रसेनजित पर क्रुद्ध होगा । उससे अधिक कार्य-साधन सम्भव है ।"

"वह मैं कर लूंगी ।"

"शेष मैं ठीक करूँगा । मैं नहीं चाहता था किन्तु तुम सबके लिए मुझे वह भी करना होगा । प्रसेनजित से सम्बन्ध स्थापित कर कुछ और भी करना होगा । यह बंधुल काशी में क्या कर रहा है ?"

"पूज्यपाद ! वह काशी का सामन्त है ।"

"ओह !···अच्छा तो शक्तिमती ! सब व्यवस्था ठीक करो । अब तक जो हुआ सो हुआ; अब सतर्कतापूर्वक कार्य करना । सब सिद्ध होगा ।"

पदच्युत सम्राज्ञी शक्तिमती बारम्बार आचार्य को विनत प्रणाम कर लौट गई ।

× × ×

प्रेयसी सामा का सर्वस्व नाश कर काशी की सीमा पर पहुँचते ही विडुभ को श्रावस्ती के दूत ने संदेश दिया—"महाराज आचार्य अजित-केसम्बल ने तुरन्त श्रावस्ती बुलाया है ।"

विड्डभ ने अपने अश्व की दिशायें श्रावस्ती की ओर मोड़ दीं ।

मार्ग भर विड्डभ अपनी उद्दण्डताओं एवं मूर्खता पर पश्चात्ताप करता चला गया । अपने उद्धत स्वभाव के कारण स्थान-स्थान पर उसे अपमान एवं असफलता का सामना करना पड़ता है । अब वह अत्यधिक निराश हो रहा था । श्रावस्ती का राजसिंहासन अब उसे स्वप्न की वस्तु प्रतीत होने लगा था । और···मल्लिका वह प्रसंग ही अब निर्धूम अग्नि सी अनुभूति प्रदान कर रहा था जिसमें अत्यधिक धधक थी किन्तु अन्त···वह भी निर्धूम था—अस्तित्व-विहीन । उसमें विरहाग्नि के धूम्र की सी लपटें भी सम्भव नहीं थीं । और बंधुल—वह दुर्भेद्य है—अजेय । किन्तु आचार्य ने श्रावस्ती क्यों बुलाया है ? वे कुछ नया रंग बना रहे

होंगे । इन कूटनीतिज्ञों को भी सर्वथा अपच ही जो बना रहता है। अपनी उस बौद्धिक पाचन-क्रिया में ये क्या-क्या भस्म करते रहते हैं ?

× × ×

"कोशल नरेश ! आपको तो आजकल जैतवन से ही अवकाश नहीं मिलता...।"

"आज्ञा करें आचार्य !" कहते हुए प्रसेनजित ने आचार्य अजित-केसम्बल के समक्ष पड़े कुशासन पर स्थान ग्रहण किया ।

"कोशल के समस्त तरुण यदि यों ही बौद्ध-भिक्षु बनते चले गये तो मगध-कोशल के सम्भावित युद्ध में क्या भिक्षु-सेना युद्ध के लिए भेजोगे कोशल-नरेश !"

"पूज्यपाद ! आप आचार्यों में अपने से इतर जनों के प्रति इतनी अनास्था देख कर मुझे बड़ा खेद होता है ।"

"क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? हम तो विद्वेषी हैं ही," कहते हुए आचार्य अजितकेसम्बल ने अपने ज्वलित नेत्रों से प्रसेनजित को देखा ।

"आचार्यपाद ! तथागत महाश्रमण भगवान्···।"

"ठीक है—ठीक है—मैंने इस समय तुम्हें धार्मिक प्रवचन के हेतु नहीं बुलाया है ।"

"आदेश व्यक्त करें आचार्य !"

"कोशल पर युद्ध के बादल मंडरा रहे हैं ।"

"हाँ, देव···।"

"तब···।"

"आचार्य से कुछ सामयिक निर्देश पाने की आशा करता हूँ ।"

"क्या बंधुल का सेनापति-कार्य कुछ रुचा नहीं नरेश···?"

"ऐसा तो नहीं ।"

"तब उस कार्य से हटा कर उसे काशी के सामन्त बनाने की आवश्यकता ?"

"आचार्य ! सेनापति-पद का भार—बंधुल का—अभी गया कहाँ है ? आवश्यकता प्रतीत होने पर···।"

"उचित ही है ! मेरा विचार है, मगध आक्रमण के पूर्व सीमान्त के उपद्रव शान्त होने चाहिएँ। तुम्हारे पास बंधुल से अधिक उपयुक्त व्यक्ति इस कार्य के हेतु दूसरा नहीं। कारायण था, उसे तुमने बन्दी-गृह में डाल रक्खा है।

"आचार्य ! उसके गुरुतर अपराध···।"

"मुझे ज्ञात हैं—उसके नहीं। शक्तिमती के निर्देश पर वह कार्य करता रहा—यह अपराध ऐसा नहीं कि उसके से उपयोगी सेनाध्यक्ष को यों···।"

"किन्तु अब तो वह मुक्त हो चुका है। सम्भवतः आपको सूचना नहीं। आज ही वह बन्दी-गृह से निकल गया है।"

"ओह। कैसे ?"

"सारा कांड रहस्यात्मक है।"

"कुछ भी हो; क्षमादान की घोषणा कर इस संक्रान्तिकाल में उसे शान्त करना ही अभीष्ट होगा।"

"मैं वैसा करूँगा।"

"और बंधुल को तुरन्त सीमा पर भेज देना होगा।"

"उचित ही है, देव !"

"इस बंधुल के सम्बन्ध में कैसी धारणा रखते हैं, कोशल-नरेश !"

"आचार्यपाद ! वह एक अद्वितीय योद्धा है। कोशल का सेनापति है और मेरा मित्र भी।"

"कुछ और भी," कहकर आचार्य ने एक तीव्र भेदक दृष्टि कोशल-नरेश पर लक्षित की।

प्रसेनजित ने भी आचार्य को आंका और मन्द स्वर में व्यक्त किया—"उसकी कीर्ति अत्यधिक बढ़ रही है।"

"जो कभी भी हानिकर सिद्ध हो सकती है।"

प्रसेनजित ने निरुत्तर हो दृष्टि शून्य में केन्द्रित कर ली।

आचार्य ने पुनः व्यक्त किया—"किन्तु अभी प्रतीक्षा करनी होगी। कोशल को अभी वैसे योद्धाओं की आवश्यकता है। वैसे···चलो छोड़ो।"

आचार्य के कहने, रुकने और फिर कहने पर प्रसेनजित कुछ समझ कर भी नासमझ बना रहा।

"अब आज्ञा दें गुरुवर्य।"

"इस सम्भावित युद्ध···।"

"इसमें क्या रक्खा है देव! मगध को मुँह की खानी पड़ेगी।"

"तुम्हारा सैन्य बल?"

"पर्याप्त से अधिक है आचार्य!"

"कोशल का कल्याण हो।"

प्रसेनजित आचार्य के चरणों में वन्दना कर चला गया।

आचार्य अजितकेसम्बल सफलता पर गर्वित हो विलम्ब तक अन्तर्मन में प्रसन्नता का अनुभव कर आसन पर बैठे रहे।

२६

राजाज्ञा प्राप्त कर बन्धुल ने मल्लिका सहित श्रावस्ती को प्रस्थान किया। आगे-आगे बन्धुल एवं मल्लिका के अश्व वायु-वेग से बढ़ रहे थे। उनके पीछे कोशल-सैनिकों का एक दल रक्षार्थ साथ ही जा रहा था। राज्य-व्यवस्थानुसार सैनिक-समूह साथ था अन्यथा बन्धुल को आत्म-रक्षार्थ अपने खड्ग एवं धनुष-तूणीर के अतिरिक्त किसी वस्तु की आवश्यकता न थी।

श्रावस्ती के मार्ग में एक स्थल पर एक धवल अश्व पर एक तरुण आरोही किसी प्रतीक्षा में खड़ा था। इस समूह के निकट पहुँचते ही उस युवक ने अत्यन्त कोमल स्वर में प्रश्न किया—"क्या आप मुझे श्रावस्ती का मार्ग बता सकते हैं ?"

"युवक, तुम ठीक मार्ग पर ही हो। श्रावस्ती को यही मार्ग जाता है। हम भी श्रावस्ती जा रहे हैं—तुम हमारे साथ चल सकते हो," बन्धुल ने उत्तर दिया।

"अत्यन्त कृतज्ञ हुआ," कहते हुए युवक ने अपने अश्व को बराबर में लगा लिया।

तरुण को देख कर बन्धुल एवं मल्लिका को कुछ कौतूहल उत्पन्न हुआ। युवक की अवस्था लगभग चौबीस-पच्चीस वर्ष की होगी। उसकी आकृति का स्वर्ण वर्ण, उन्नत नासिका, सुविशाल नयन-द्वय एवं कोमलांग पर धारण किया हुआ शिरस्त्राण एवं वेश से विचित्र आभा प्रस्फुरित हो रही थी। उसका अश्व निरन्तर वेगसहित सबके साथ दौड़ रहा था। उसकी भाव-भंगिमा में क्षीण उदासी की रेखाओं सहित उत्साह भी पर्याप्त प्रकट हो रहा था। तरुण थोड़ी-थोड़ी देर में मल्लिका को एवं मल्लिका संशय में उसकी ओर देख लेती थी।

तभी बन्धुल ने मार्ग के समय को सरल बनाने के हेतु युवक से

वार्ता प्रारम्भ की—"युवक ! कहाँ से आगमन हो रहा है ?"

"काशी से—"

"श्रावस्ती किसी कार्यवश जाना हो रहा है ?"

इस प्रश्न पर तरुण ने प्रथम तो एक क्षण के लिए मौन धारण किया। उसकी आकृति में एक उत्तेजना एवं नेत्रों में विचित्र सी तीक्ष्णता दर्शित हुई किन्तु निरुत्तर रहना अनुपयुक्त मान तरुण ने उत्तर दिया—"मैं अपने एक साथी की खोज में श्रावस्ती जा रहा हूँ।"

तरुण का कोमल कंठ-स्वर सुनकर बन्धुल एवं मल्लिका का कौतूहल किंचित् बढ़ता जा रहा था। बन्धुल ने एक मुस्कान सहित मल्लिका की ओर देखा। मल्लिका दौड़ते हुए अश्व सहित बड़ी सुन्दर, बड़ी भली, बड़ी भोली लग रही थी। वह भी मुस्करा दी।

बन्धुल ने आगे प्रश्न किया—"वह साथी श्रावस्ती में निवास करता है ?"

"मैंने आपसे कहा न, उसकी खोज में जा रहा हूँ। मुझे ज्ञात हुआ है कि वह उस ओर ही गया है।"

"तरुण ! तुम्हारा कोमल-कंठ-स्वर, तुम्हारे कोमलांग, लावण्यमय आकृति, कृत्रिम वेश देखकर संशय होता है—तुम कोई स्त्री तो नहीं ?" बंधुल ने अनायास व्यक्त किया।

तरुण इस कथन से चौंका। उसकी आकृति का रंग फीका पड़ गया किन्तु वैसे ही तेवर में उसने उत्तर दिया—"मैं इस अप्रत्याशित एवं अनधिकृत प्रश्न का उत्तर न दूँ तो ?"

"तुमसे यह प्रश्न काशी का सामन्त बन्धुल मल्ल कर रहा है। तरुण! तुम्हें ज्ञात होना चाहिए, सर्वत्र युद्ध का उत्तेजित वातावरण है। तुम पर विदेशी गुप्तचर होने की शंका कोई भी करे—इसमें कुछ अस्वाभाविक न होगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारा वेश भी कोशल अथवा काशी का नहीं। तुम्हारे वेश में वत्स एवं कौशाम्बी की झलक है। किन्तु यों, मेरे समक्ष निर्भय होकर अपना परिचय दे सकते हो," बन्धुल ने तरुण

की आकृति में क्षण-क्षण पर परिवर्तित भावों को पढ़ते हुए व्यक्त किया। तरुण की भृकुटियां चपला सी चंचल हो ऊपर-नीचे तैर रही थीं। नेत्रों में मुस्कान भर आई थी। पतले ओठ कुछ कहने को फड़फड़ा रहे थे।

तभी युवक ने कथन की गम्भीरता को समझा। उसने मन्द स्वर में कहा—"मैं कौशाम्बी नरेश उदयन की पूर्व-पत्नी मागन्धी हूँ . . ."

कथन के साथ ही मल्लिका एवं बन्धुल के मुँह से एक साथ निकला—"रानी मागन्धी . . .।"

किन्तु तुरन्त ही बन्धुल ने अधिक संशयसहित कहा—"जैसा मुझे स्मरण है—महाराज उदयन की सम्राज्ञी मागन्धी की घटनावश प्रासाद में जलकर मृत्यु हो गई थी।"

"वह सब रहस्यमय स्थिति में है—काशी-सामन्त!" कहते-कहते मागन्धी ने अपने भाल पर कसा शिरस्त्राण बायें हाथ से नीचे उतार लिया। क्षणमात्र में एक नारी के लहलहाते कुन्तल केश वायु में तैरने लगे। नारी रूप का लावण्य स्पष्ट हो आया।

"यदि आप रानी मागन्धी ही हैं तो मैं अपना अभिवादन व्यक्त करती हूँ," कहते हुए मल्लिका ने अपनी ग्रीवा नत कर ली।

अब तक मागन्धी मल्ल के दाहिने पार्श्व में चल रही थी अब वह मल्लिका की ओर उसके बायें पार्श्व की ओर चलने लगी।

"मेरा वह स्वरूप अब विनष्ट हो चुका है," कहते-कहते मागन्धी के नेत्रों में अश्रु छलक आये।

मल्लिका एवं बन्धुल ने तब आगे कोई प्रश्न नहीं किये। अत्यन्त उदास मौन सहित मार्ग कटने लगा।

× × ×

"श्रावस्ती में आप मेरे पास ही ठहरियेगा," श्रावस्ती के बाह्य गोपुर में प्रवेश करते-करते मल्लिका ने मागन्धी से कहा।

"किन्तु मुझे किसी की खोज करनी है," मागन्धी ने अनिच्छा प्रकट करते हुए व्यक्त किया।

"वह कर लीजियेगा। यदि आप चाहेंगी तो मैं कुछ सहायता कर सकूँगी," मल्लिका ने उत्तर दिया।

मागन्धी मल्लिका के पास ठहर गई। कोशलनरेश प्रसेनजित के आदेश पर बन्धुल को तुरन्त ही सीमा-प्रान्त के उपद्रवों को शान्त करने के हेतु प्रयाण करना पड़ा।

विलास एवं इन्द्रियासक्ति से आक्रान्त प्रसेनजित अब वृद्ध हो चला था। उसके राजमहालय में कितने राज्यों की कुमारियाँ परिणीता पत्नियों के रूप में विद्यमान थीं। उसके राजनीतिक परिणय सदैव होते रहे। यही नहीं, राज-महिषियों की पंक्ति में निम्न-कुलोत्पन्ना सुन्दर स्त्रियाँ भी थीं। उसकी पट्ट-राज-महिषी एक माली कन्या थी। शाक्यों की पवित्र आस्था ने उसे शक्तिमती के रूप में एक दासी-कन्या भी संभलवा दी।

शक्तिमती का पुत्र विड्डभ इस दूषित रक्त-मिश्रण का मूर्तित प्रमाण था।

इसके अतिरिक्त प्रसेनजित में साम्राज्य-विस्तार का वह पूर्व-रूप तो समाप्त हो गया था किन्तु साम्राज्य-रक्षार्थ वह इधर अधिक सशंक हो गया था। राज-लिप्सा में वह इतना ओत-प्रोत था कि अपने अनन्य मित्र, कोशल के परम स्वामि-भक्त एवं राजभक्त के रूप में बंधुल के प्रति भी वह शंकित हो रहा था। बंधुल की प्रतिपल प्रसारित होती हुई धवल-कीर्ति से वह घबड़ा रहा था। आचार्य अजितकेसम्बल की भेदक एवं कूटनीतिक दृष्टि ने वह सब कुछ आंक कर उस ओर संकेत भी किया। प्रसेनजित के मन में वह बात गहनतम होकर प्रवेश कर गई।

आचार्य तो कहते-कहते रुक गये थे किन्तु प्रसेनजित ने उस संकेत को कार्य-रूप में परिणत करने का मन्तव्य दृढ़ कर लिया। उसने अपने विश्वस्त अनुचरों को आदेश दिया कि वे सीमान्त जाकर बंधुल की हत्या कर डालें।

× × ×

साकेत से लौटकर कारायण अपने बन्दी होने के प्रसंग को लेकर प्रसेनजित पर अत्यधिक क्रुद्ध था। बाजिरा के प्रति स्नेह-अनुराग सहित

जब शक्तिमती की योजना के अनुसार वह बन्दी-गृह के द्वार के बाहर आया तो उसके हृदय में दो विचार तैर रहे थे—बाजिरा की प्राप्ति एवं कोशल-नरेश से उचित प्रतीकार।

तदनन्तर, क्षमा-दान से वह प्रसेनजित के प्रति कुछ उदार हो गया हो—वैसी बात नहीं थी। इस अवसर से उसे लाभ उठाना है—यही ध्यान कर वह कोशल में प्राप्त पद पर कार्य करता रहा।

इधर शक्तिमती के उपकार से वह अत्यधिक अनुगृहीत हो रहा था। 'विड्डभ को सहायता देकर यदि कोशल का उसे नरेश बना दिया जाय तो क्या हानि ?' इधर वह विचारने लगा था। इससे उसे प्रत्यक्ष तीन लाभ दीख रहे थे—कोशल के प्रधान सेनापति पद की प्राप्ति, उस नव-विकसित रूप-यौवन-कलिका बाजिरा की प्राप्ति एवं प्रसेनजित से बदला। किन्तु वह यह भी ध्यान कर रहा था, अपने मामा बंधुल के रहते वैसा सब सम्भव नहीं है। इस पर भी बंधुल-मल्ल के प्रति किसी द्वेष की भावना उसके मन में किंचित् भी न थी।

अन्तर्मन की इसी विचार-स्थिति में अनायास शक्तिमती ने उसके प्रवास-कक्ष में प्रवेश कर अपने अनुग्रह की अस्पष्ट चर्चा करते हुए कहा—"कारायण ! प्रधान सेनापति बंधुल की हत्या की योजना बनी है—तुम्हें कुछ ज्ञात है ?"

"सम्राज्ञी ! इस सम्बन्ध में मुझे कुछ ज्ञात नहीं। किन्तु क्या कोशल-नरेश प्रसेनजित की नैतिकता का इतना पतन भी सम्भव है ?" कारायण ने सरोष प्रकट किया।

"नायक विनय के तत्त्वावधान में यह कुकृत्य पूर्ण होगा···।"

"नायक विनय—वह मेरा विश्वस्त व्यक्ति है ! मैं अभी देखता हूँ···।"

"देखोगे क्या ? नायक तो बंधुल के साथ ही सीमा पर गया है।"

"तब, अन्य व्यक्ति राजाज्ञा लेकर सीमा पर जा रहा है। उस राजाज्ञा पर बंधुल को श्रावस्ती प्रस्थान करना होगा और एक गुप्त

निर्देश जो नायक विनय को प्रेषित किया जा रहा है उसके आधार पर मार्ग में प्रपंच से बंधुल का वध किया जावेगा," शक्तिमती ने पूर्ण गम्भीरतासहित कारायण को उत्तेजित कर कहा।

"कोशल-नरेश की ऐसी नीच योजना," कहते हुए कारायण अपने दाँत किटकिटाता हुआ उठ खड़ा हुआ।

समक्ष ही एक प्रस्तर-पीठिका पर बैठी शक्तिमती ने कहा—"बैठो, कारायण—इस उत्तेजना से तो कार्य नहीं सिद्ध होगा न। क्या करना है? इस पर विचार करना होगा। राजाज्ञा लेकर कौन जा रहा है, इसका पता तुम्हें लगाना होगा। उससे वह गुप्त निर्देश छल अथवा बल से हस्तगत करना होगा। कोशल नरेश की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है। मगध आक्रमण किसी भी क्षण सम्भावित है। ऐसे में बंधुल ऐसे वीर सेनापति की हत्या कराकर कोशल की सैनिक-शक्ति को कितना बड़ा धक्का लगेगा; यह सोचने की शक्ति भी अब कोशल के राजा में शेष नहीं है।"

शक्तिमती कहती गई—"फिर, कारायण! एक अन्य बात भी है। जिसकी मुझे विशेष चिन्ता है। यदि कोशल पर मगध विजयी हो गया तो न विड्डभ को ही कोशल की सत्ता प्राप्त हो सकेगी न तुम को ही सेनापति पद की प्राप्ति।"

'और बाजिरा—पता नहीं मिले या नहीं—' कारायण ने अपनी ओर से ध्यान किया।

अस्तु, कारायण ने तत्परता सहित कहा—"सम्राज्ञी! इसका प्रबन्ध मैं करता हूँ।"

× × ×

"मल्लिका! देखो, यह है वह गुप्त निर्देश जो सीमान्त को राजाज्ञा सहित कोशल महाराज ने बन्धुल सेनापति की हत्या करने के हेतु भेजना चाहा था," शक्तिमती ने मल्लिका के निवास पर आकर मल्लिका से प्रकट किया।

अत्यन्त उपेक्षा सहित मल्लिका ने उत्तर दिया—"तो इससे जिसका जो भला सम्भव हो, वह उससे लाभ उठा ले। यदि इतना प्रबल दुर्भाग्य मेरा जाग गया है तो रानी! यह सूचना मुझे देकर जो अनुकम्पा कर रही हो उससे भी क्या होगा?"

"किन्तु उसका शमन तो मैंने कर दिया है न, मल्लिका! देखो, यह है वह निर्देश जो उस व्यक्ति से लिया गया है। अब, सेनापति अभय हैं।"

"वे सभय कभी नहीं रहते रानी!" कहकर उस निर्देश-पत्र को बिना देखे ही मल्लिका ने उसे शक्तिमती को लौटा दिया।

किन्तु शक्तिमती के अधिक अनुरोध पर मल्लिका ने निर्देश को आद्योपान्त पढ़ा। वह रोमांचित हो उठी। उसने उद्रेक में अपने पलक मूँद लिये और निर्देश वैसे ही हाथों से लपेट कर शान्तिपूर्वक शक्तिमती को लौटा दिया।

"मल्लिका! इनका परिचय नहीं दिया तुमने," मागन्धी—जो निकट ही बैठी थी—की ओर संकेत करते हुए शक्तिमती ने कहा।

मल्लिका ने उस सुषुप्ति-जागरण में उद्विग्नता दाबकर आकृति में सजीवता लाते हुए कहा—"ये हैं कौशाम्बी की भूतपूर्व सम्राज्ञी मागन्धी और मागन्धी ये हैं कोशल की भूतपूर्व सम्राज्ञी शक्तिमती।"

दो महाजनपदों की राज-महिषियों ने एक दूसरे को देखा, अपनी परिस्थिति का अवलोकन किया, आर्द्रता का करुण प्रभाव दोनों की आकृति-रेखाओं में भर आया, समवेदना में दोनों एक दूसरे के प्रति अधिक आकृष्ट हुईं और दोनों ने एक दूसरे को अभिवादन किया।

मल्लिका इस वातावरण से दूर कल्पना-लोक में अपने पति की सरस-सरल-सुमूर्ति को उतारती रही। वे जिस के हेतु, जिस राजा के हेतु, मेरा ध्यान छोड़, मुझे यहाँ छोड़, अपने प्राणों का मोह छोड़, धनुष-तूणीर कसे खड्ग के वार करते हुए गाजर-मूली की भाँति दुर्दान्त वीरों को काँट-छाँट रहे होंगे ··· उफ् ··· ऐसा अपघात, वैसी अज्ञातावस्था

में, वैसी अचेत स्थितियों में कपट से उनका कोई वध कर देता—काँप कर मल्लिका ने अपने हाथों अपने कान बन्द कर लिये—पलक मूँद लिये। पति का ध्यान कर वह अत्यधिक आन्दोलित हो उठी। तब भी उसके मन में किसी के प्रति किंचित् भी रोष न था, प्रसेनजित के प्रति भी नहीं।

किन्हीं कारणों से वशीभूत हो यदि शक्तिमती ने उस निर्देश को हस्तगत कर उसके प्राणपति के जीवन की रक्षा की है तो वह उसकी अत्यधिक अनुगृहीत है, अत्यन्त कृतज्ञ। और उस कृतज्ञता ज्ञापन में वह अनायास शक्तिमती से लिपट गई।

शक्तिमती ने मल्लिका की उस पल की उद्विग्नता को समझा और वह उसे विलम्ब तक थपथपाती रही। कुछ व्यवस्थित देखकर शक्ति-मती ने मल्लिका से कहा—"विडूडभ को कोशल का राज-सिंहासन प्राप्त हो, इसके हेतु मैं बन्धुल से सहायता लूँगी मल्लिका!"

इस अनुकम्पा के मूल में शक्तिमती की सरल आशा को मल्लिका ने समझा। वह विशेष कुछ न कहकर इतना ही कह गई—"रानी, समय आने पर युवराज को स्वतः कोशल-सिंहासन प्राप्त होगा। आप इतनी चिन्तातुर न हों।"

शक्तिमती के नेत्रों में अश्रुसहित एक ज्वलन प्रकट हुई और आवेश में वह कह गई—"अपने अपमान का बदला मैं निरीह दया से नहीं, शक्ति से लूँगी।"

नारी की इस अहम्मन्यता में जैसे मागन्धी ने अपनी स्वीकारोक्ति सन्नद्ध कर दी किन्तु मल्लिका ने स्पष्टतः कहा—"हम कोमल नारियों को सरलता, करुणा एवं दया की प्रतिमूर्ति बनने में जो सुख, जो आनन्द जो सन्तोष, जो शान्ति प्राप्त होनी सम्भव है वह शक्ति के रौद्र-रूप में कदापि नहीं। हम अपनी नारीत्व की शक्ति को पुरुषों के द्रोह में क्यों नष्ट करें? शुद्धाचरण से उन पर विजय प्राप्त कर उनकी स्नेह-भाजन क्यों न बनें?"

"उनके अत्याचारों को सहन करके ही हम पद-पद पर तिरस्कार, अपमान एवं दुःख प्राप्त करती हैं। हम ······"

"कभी नहीं। हम अपने अहंकारों की गूँज में अपनी स्थिति और उसकी सीमायें पार कर जाती हैं। हम विचार ही नहीं कर पातीं कि सम्भावित अत्याचार की पूर्वस्थिति में हमें कैसा आचरण करना अभीष्ट है जिससे उस विपन्नावस्था का अवसर ही न आवे। मिथ्याचरण से ही हम नारियों की अधोगति हुई है," मल्लिका ने शक्तिमती की बात काटते हुए व्यक्त किया।

"उसमें पुरुष का दुराचरण सहयोगी रहता है," शक्तिमती ने मागन्धी की ओर देखते हुए कहा। मागन्धी पूर्णतः मौन भाव से वार्ता सुन रही थी।

"यदि हम शुद्धाचरण करेंगी तो हमें उसी में पुरुष का सहयोग प्राप्त होगा—होता है," शक्तिमती को मल्लिका ने उत्तर दिया।

"पुरुषों के शुद्धाचरण का प्रमाण अभी-अभी देख चुकी हो मल्लिका देवी! वह यह रहा," कहते हुए शक्तिमती ने वह गुप्त निर्देश-पत्र पुनः दिखलाया।

"किन्तु रानी! तुम अपने अधिकारों की प्राप्ति, महाराज प्रसेनजित से विनम्र हो, प्रसन्न करके भी कर सकती थी। इस शक्ति की अहम्मन्यता में जो विरोध, जो विग्रह तुम पति का विद्रोह कर प्रकट कर रही हो उससे उत्पन्न भयंकर हानि की ओर किंचित् ध्यान नहीं दे पाईं।"

"उस अपमान के अनन्तर भी तुम्हारा अभिप्राय है, नारी पुरुष के समक्ष गिड़गिड़ाती ही रहती······।"

"स्नेह-व्यवहारों में गिड़गिड़ाहट का क्या प्रश्न है, सम्राज्ञी! क्या स्नेह में कभी रोष सम्भव नहीं और फिर उस रोष का क्या कभी शमन नहीं होता?"

"मल्लिका! तुम उस खड्ग-धारी वीर की पत्नी हो। उससे पूछना खड्ग के वार के समक्ष प्यार की पुकार कुछ काम देगी?"

"वे ही क्यों ? सभी चाहें तो शत्रुता पर प्यार से ही विजय प्राप्त कर सकते हैं······ ।"

"अब बन्धुल के लौट आने पर उसको ऐसा उपदेश करोगी, न !"

"वे मुझसे अधिक समर्थ, सशक्त एवं शुद्ध-बुद्धि हैं। वे तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध एवं सर्वजित् भगवान् महावीर के अनन्य उपासक हैं। वे सत्य, प्रेम एवं अहिंसा के बल एवं उसकी मर्यादा को भली प्रकार जानते हैं। उनका वीरत्व निरीह अथवा असहाय प्राणियों के घात में नहीं, सदैव अपने से सबल के अत्याचारों के नाश में प्रयुक्त होता है।"

"तो क्या हम सबल के अत्याचारों में नहीं पिस रही हैं ? मेरी स्थिति देखो, मेरा क्या दोष है ?" शक्तिमती ने पूर्ववत् उत्तेजना में कहा।

"किन्तु वहाँ प्रेममय व्यवहार से विजय की पूर्णाशा सदा सर्वदा विद्यमान रही है, यह क्यों भूलती चली आई, कोशल की सम्राज्ञी !"

"अब कोशल-अधिपति के अपने प्रति इस विश्वासघातपूर्ण आचरण पर तुम क्या करोगी, मल्लिका ?"

"क्षमा, दया, करुणा और हम समर्थों के पास दूसरा उपाय नहीं। अन्यथा, मैं कहती हूँ, वे अकेले कोशल-विजय की क्षमता रखते हैं। किन्तु नहीं, हमारा ऐसा विचार भी हिंसात्मक है। कोशल-नरेश उनके सहपाठी एवं परममित्र हैं। वे भी यदि उनके इस आचरण को सुनेंगे तो उपेक्षापूर्वक टाल देंगे," कहते हुए मल्लिका गर्व से हर्षित हो उठी।

शक्तिमती को अपना यह प्रयोग विफल होता प्रतीत हुआ। उसने ध्यान किया कि अभी बन्धुल की हत्या का गुप्त निर्देश-पत्र उसके अधिकार में है। यदि बन्धुल से कोई हित सम्भव नहीं, तो क्यों न वह निर्देश-पत्र किसी दूसरे वाहक द्वारा नायक विनय के पास भेज दिया जावे। इस कुत्सित मनोविचार को लेकर उसने मल्लिका से जाने की अनुमति ली और चली गई।

३१

"तुम महामूर्ख हो। तुम चले जाओ मेरे सामने से। तुम निरे पशु हो जो पिटकर भी वहीं का वहीं घूमता है। वहाँ, वैशाली में तो बड़ी बुद्धि जागृत हुई। मुझसे विदा होकर उस सर्वपत्नी अम्बपाली के प्रेमालाप सुनते रहे। अपनी कूट-बुद्धि के प्रयोग करते रहे। वत्स नरेश को मूर्खतापूर्ण योजनायें सुनाते रहे। वहाँ साकेत में कारायण से उलझे। पता नहीं, काशी में क्या-क्या कर्म करके आये हो? तुम्हारी यह माँ अपमान की ज्वाला में जल रही है। तुम्हें कुछ नहीं चाहिए। तुम्हें कोशल-राजसत्ता भी नहीं चाहिए। तुम उस योग्य लेशमात्र भी नहीं। तुम्हें वह चाहिए—पर-पत्नी मल्लिका। तुम केवल उसके लिए ही समस्त कोशल का नाश करते घूम रहे हो ....." की गर्जना सहित आचार्य ने अपने मन का सब कुछ निकाल डाला।

विड्डभ एवं शक्तिमती निरीह पशुवत् मौन बैठे रहे। कारायण खड्ग ले विड्डभ के सामने दौड़ पड़ा। "फिर कहिये आचार्य! आपने क्या कहा? क्या देवी मल्लिका ... के प्रति ... यदि ऐसा ... ऐसा है तो मैं अभी इस पामर का वध करके अपने को शान्त करूँगा।"

"कारायण! सावधान! यह मेरा आश्रम है। तुम्हारे आवेश की कोई आवश्यकता नहीं। विड्डभ अपने किये का स्वयं फल भोगेगा।"

"यह अनुचित है आचार्य! मातुल बन्धुल की पत्नी देवी मल्लिका मेरी मातेश्वरी से भी बढ़कर हैं। इस प्रसंग पर आप मुझे सन्तोष दीजिए अन्यथा अनर्थ हो जावेगा पूज्यपाद!" कहते हुए कारायण अपनी भैरव-आकृति में दांत किटकिटाता विड्डभ के समक्ष और तन कर खड़ा हो गया।

इस विषम स्थिति की कल्पना किसी ने भी न की थी। बहाव में

आचार्य भी उबल पड़े थे। अब किस प्रकार कारायण को शान्त किया जावे ? विड्डभ उस समय निहत्था था। अन्यथा तलवार के हाथ चलने प्रारम्भ हो गए होते। शक्तिमती की मनःस्थिति सर्वाधिक चिन्त्य थी। तभी सिंह-गर्जना में कारायण ने पुनः प्रकट किया—"महाराज ! स्पष्ट कीजिये। बताइये, मल्लिका देवी का नाम इस अधम के साथ आपने कैसे व्यक्त किया ?" कुछ रुककर—"आचार्यपाद ! इस मौन से मेरा धैर्य टूटता जा रहा है।"

"कारायण ! शान्त होओ। मैं बताती हूँ," कहते हुए शक्तिमती ने खड़े होकर कारायण को शान्त करने की निरर्थक चेष्टा की।

कारायण बिगड़ता ही चला गया—"आचार्य ! आप बोलिये ! मैं इस स्त्री की बात कदापि नहीं सुन सकता। यह पुत्र-मोह में सब कुछ कह सकती है, कर सकती है। यह अपने पति की हत्या के प्रयत्नों में भी पीछे नहीं हटेगी !"

"कारायण ! शान्त होओ। सत्यता यह है कि मल्लिका देवी की बन्धुल सेनापति से परिणय होने के पूर्व विड्डभ से कुछ विवाह-वार्ता चली थी किन्तु कोशल नरेश ने उस प्रस्ताव को स्वयं ही अस्वीकार कर दिया था। परन्तु विड्डभ अब भी उस ग्रन्थि को हृदय में बांधे हुए है," आचार्य अजित ने कारायण को शान्त करने का प्रयास करते हुए कहा।

"किन्तु...अब . . . अब यदि उस ओर ध्यान भी किया या देखा भी तो खाल खींच लूंगा, आंखें निकाल लूंगा, समझे।" कारायण विड्डभ को सम्बोधित कर कहता हुआ आश्रम से चला गया।

विलम्ब तक वहाँ निस्तब्धता छाई रही। कारायण की सिंह-गर्जना से आश्रम के जो अन्य वासी उस ओर बढ़ आये थे, शान्त उदासी देखकर यथास्थान लौट गये। विड्डभ एवं शक्तिमती भूमि पर बैठे कुशासन पर गड़े जा रहे थे। आचार्य की गति विचित्र थी। शक्ति के रौरव-घोष के समक्ष उनकी कूटनीति भी उस क्षण आर्तनाद कर उठी थी।

कुछ काल के अनन्तर आचार्य ने अपना मुख खोला—"यह अच्छा नहीं हुआ।"

"इसका भाग्य ही खोटा है, आचार्य श्री!" शक्तिमती ने अवरुद्ध कंठ से प्रकट किया। प्रतीत हो रहा था जैसे शक्तिमती रुदन की सी स्थिति में है।

विड्डभ को जैसे सर्प-विष सा चढ़ता चला आ रहा था! यही स्पष्ट न था कि वह उस स्थिति में मृत है या जीवित बैठा है। वह निर्निमेष, भूमि की ओर दृष्टि गड़ाये बैठा का बैठा रह गया था।

शक्तिमती के कथन के अनन्तर वहाँ पुनः निस्तब्धता घिर आई। तभी आचार्य ने प्रश्न किया—"शक्तिमती कुछ ज्ञात है—बन्धुल के लिए राजाज्ञा भेज दी गई?"

"हाँ।"

"यदि कारायण ने यह सब प्रसंग बन्धुल के समक्ष उपस्थित किया तो बड़ा अनर्थ होगा।"

तभी शक्तिमती ने वह गुप्त निर्देश-पत्र आचार्य के सामने बढ़ा दिया जिसे बन्धुल की हत्या के हेतु प्रसेनजित ने भेजने की व्यवस्था की थी। अत्यन्त कौतूहल सहित आचार्य अजितकेसम्बल ने उस निर्देश-पत्र को पढ़ा। उनकी आँखें चमक गईं और अनायास मुँह से निकल गया—"ओफ! प्रसेनजित इतना अधिक बढ़ गये। किन्तु यह तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ, शक्तिमती?" शक्तिमती ने वह कथा कह सुनाई कि किस प्रकार वह निर्देश-पत्र कारायण की सहायता से प्राप्त किया गया था।

आचार्य पुनः उबल पड़े—"तुम सब चले जाओ मेरे सामने से। तुम सब वज्रमूर्ख हो। इस निर्देश-पत्र को लेकर किस योग्यता का परिचय दिया गया—मैं नहीं समझ सकता। अहा! अब तक मार्ग का एक बड़ा संकट समाप्त हो गया होता।······कैसा अनर्थ······कैसे मूर्खों का समागम······।"

"किन्तु, पूज्यपाद ! इसका उपयोग तो हम किसी समय भी कर सकते हैं," शक्तिमती ने कहा।

आचार्य की आँखें चमक गईं—"शक्तिमती तुम ठीक कहती हो। इसका उपयोग···"

तभी अनायास विद्युत की भाँति चमकते हुए कारायण ने प्रवेश किया और शीघ्रता में वह निर्देश-पत्र शक्तिमती के हाथ से छीन लिया—"मैं इसी हेतु दुबारा आया था। जैसा आप लोग अभी कह रहे थे—इसका उपयोग किसी समय किया जा सकता है, यही ध्यान कर मैं मल्लिकादेवी के निवास-स्थान से वायुगति से आ रहा हूँ। राज-लिप्सा इतनी कुत्सित है, इसका प्रमाण अब मेरे पास रहेगा। प्रणाम ! आचार्य।" कहकर कारायण उसी तीव्रता से लौट गया।

प्रतीत हुआ—आचार्य, शक्तिमती एवं विड्डभ जिस भूमि पर बैठे थे वही कहीं खिसक गई। आचार्य ने अत्यधिक क्रोधावेश में चीत्कार कर कहा—"विड्डभ को क्या पक्षाघात का प्रकोप हो गया है जो यह काष्ठवत् यों बैठा सब कुछ देख-सुन रहा है। हः हः हः ये कोशल के भावी अधिपति हैं।"

विड्डभ सोच रहा था—कैसी कुघड़ी में तलवार छूटी कि इस क्षण तक हाथ ही नहीं आई। उस समय रह-रहकर बन्धुल पर उसे क्रोध आ रहा था। उस दासी पर क्रोध आ रहा था जिसकी पुत्री—उसकी माँ उसके निकट बैठी थी। माँ पर क्रोध आ रहा था जिसके कारण वह संसार में इतने निम्नस्तर पर समझा गया। अपने पिता—कोशलपति प्रसेनजित पर क्रोध आ रहा था जिन्होंने उसे उस स्थिति में पहुँचाया कि कारायण जैसा एक साधारण अनुचर इतना अपमान करके सामने सामने चला जावे—उसे क्रोध कारायण पर, मल्लिका पर, अपने आप पर-न जाने किस-किस पर आ रहा था। साथ ही उसे इस क्षण अत्यधिक पश्चात्ताप हो रहा था। कितनी दया उमड़ रही थी उसके हृदय में उस

कोमल नारी के प्रति जिसका सब कुछ अपहरण कर उसे मार कर वह आया था। उसने ध्यान किया, यह सब उसी पाप का प्रतिफल है। उसी के कारण उसकी श्री, उसकी मर्यादा का यों अपहरण हुआ है। एवं सर्वाधिक उत्तेजना उसे उस काल आचार्य के प्रति उत्पन्न हो रही थी। वह ध्यान कर रहा था—कैसा प्रलाप कर रहे हैं ये कज्जल-मुख, कज्जल-गात्र, कज्जल-हृदय, आचार्य महाराज-जी चाह रहा है इन्हीं हाथों अभी दम घोंट दूं। जैसे मैं इनका कोई दासानुदास हूँ। और कुछ भी सही—यह मेरी माँ है। कितना अपमान सहन कर रही है, यह। कितना प्रताड़ित कर रहा है यह आचार्य। और उसने विचारा तुरन्त उठकर चला जावे। परन्तु आचार्य भी पता नहीं उसके अथवा अपने किसी भले के लिए ही वह सब कूटजाल रच रहे हैं। वह क्या करे? उसका मस्तिष्क फटा जा रहा था। प्रतीत हो रहा था उसे मूर्छा आ रही है। वह बैठा-बैठा वहीं भूमि में समाया जा रहा है। जैसे रक्तचाप मन्द नहीं, रुद्ध हो रहा है।

वहीं आश्रम में सूचना आई मगध ने कोशल पर आक्रमण कर दिया। देखते-देखते आचार्य के आश्रम में सुनाई पड़ा कोशल के रण-वाद्य बज उठे हैं।

"शक्तिमती, अब तुम जाओ। विड्डभ एक निष्कासित व्यक्ति है। इसे मेरे आश्रम में ही छोड़ जाओ। किन्तु नहीं। यह भी उपयुक्त नहीं। कारायण विड्डभ को यहाँ देख गया है। चलो कोई चिन्ता मत करो। मैं विड्डभ की व्यवस्था कर दूँगा। तुम निश्चिन्त रहो। परन्तु शक्तिमती! भाग्य तुम्हारा साथ देने को तत्पर नहीं। तथापि अन्त तक प्रयत्न करते ही रहना होगा।"

शक्तिमती रुदन-सहित आचार्य को प्रणाम कर आश्रम से चली आई।

३२

राजाज्ञा प्राप्त कर बंधुल ने तुरन्त श्रावस्ती की ओर प्रस्थान किया। श्रावस्ती पहुँचते-पहुँचते उसे ज्ञात हुआ कि रणभेरी बज चुकी है। मगध ने काशी प्रान्त पर आक्रमण कर कुछ प्रदेश अधिकार में कर लिये हैं।

श्रावस्ती पहुँचकर उसने देखा, राजधानी में सैनिक चहल-पहल पूर्ण गति पर है। वह तुरन्त राजमहालय पहुँचा और उसने प्रसेनजित से भेंट की। उसको देखकर प्रसेनजित हतप्रभ रह गया। सीमान्त से लौटने पर बन्धुल को जिस स्वागत की आशा थी वह प्रसेनजित से न पाकर उसका मन बड़ा खिन्न हुआ।

"तो तुम आ गये बन्धुल ! मगध-कोशल युद्ध प्रारम्भ हो गया है। जाओ सेना-सहित कूच करो," इतने से उसे सन्तोष नहीं हुआ। सीमान्त में जो पराक्रम उसने प्रदर्शित किया था, उस आधार पर उसका प्रफुल्लित हृदय अपने राजा से कुछ और सुनना चाहता था।

दूसरी ओर प्रसेनजित ध्यान कर रहा था—गुप्त-निर्देश के अनन्तर भी यह बचकर कैसे चला आया ? इस पर भी स्वार्थ—युद्ध में भी उसकी आवश्यकता यथेष्ट थी। अतः सेनासहित कूच का निर्देश कर प्रसेनजित ने सन्तोष की सांस ली।

युद्ध में जाने से पूर्व बंधुल अपनी पत्नी मल्लिका से मिलने गया। मागंधी अभी वहीं थी। कारायण भी तैयार होकर युद्धक्षेत्र को प्रस्थान कर रहा था और मातुल बंधुल को आया जान वह उनसे भेंट करने उनके निवासस्थान पर गया। उसका हृदय श्रावस्ती के वातावरण से धधक रहा था।

बन्धुल को युद्ध के हेतु प्रयाण करता देख वह श्रद्धा से नत-मस्तक हो गया। उसने ध्यान किया—षड्यन्त्र से अनभिज्ञ वीर अब भी प्राणों का मोह त्याग राष्ट्र-हेतु सामरिक प्रयाण के लिए तत्पर है।

किन्तु उसके मन में जो ज्वालामुखी भभक रहा था उसका मुंह खुलने वाला था। वह बन्धुल को युद्ध में जाने से रोकना चाहता था। वह उस समय प्रसेनजित की दुर्विनीति को स्पष्ट करना चाहता था। तभी उसने कहा—"मातुल ! आप कोशल को छोड़ दीजिये। श्रावस्ती छोड़ दीजिये। परन्तु अब कोशल के हेतु मत लड़िये। युद्ध-प्रयाण मत कीजिये।"

"कारायण ! तुम क्या कह रहे हो ?"

"मैं, ठीक कह रहा हूँ, महासेनापति !" कहते-कहते उसने मल्लिका को देखा।

"कारायण ! अब आगे कुछ मत कहना," मल्लिका ने कारायण को टोकते हुए कहा।

"नहीं—मल्लिका देवी, मैं वह सब···।"

"नहीं कारायण ! क्या इस विषम काल में तुम कर्त्तव्य से विमुख होगे ? क्या तुम इन्हें कर्तव्य से विमुख करना चाहोगे ? वे सारे झंझट घर के हैं। इस समय प्रश्न राष्ट्र का है, देश का है। बाह्य आक्रमण से अपने को बचाने का है, अपने देश को बचाने का है। इस समय तुम इन्हें जाने दो। कुछ मत कहो।"

कारायण मौन हो गया किन्तु बन्धुल की उत्सुकता उतने के पश्चात् कहां रुक सकती थी ? उसने मल्लिका से कहा—"जिसके हेतु तुम कारायण को रोक रही थीं, अब तुम स्वयं ही व्यक्त करो।"

विवश मल्लिका ने पति की हत्या के हेतु भेजे जाने वाला निर्देश-पत्र अपने वक्षस्थल से निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिया।

बन्धुल ने वह पढ़ा। उसके नेत्रों से क्रोध की ज्वालायें फूट निकलीं। मुँह से अनायास निकला—"ओ ! तुम प्रसेनजित···तुम और अब भी कोशल के राजसिंहासन पर अवस्थित हो। किन्तु नहीं·· मैं प्रतिशोध नहीं लूंगा। मैं यह व्यक्त भी न करूँगा कि मैं सब कुछ जानता हूँ। मैं इसके अनन्तर युद्ध के लिए प्रयाण न करूँ—यह भी न होगा। मैं कोशल

के लिए लड़ूँगा। अवश्य लड़ूँगा। मैं जाऊँगा। कारायण ! मैं जाऊँगा। मल्लिका ! मैं अवश्य जाऊँगा। मैं मगध को परास्त करके लौटूँगा।"

कारायण ने बन्धुल के चरण चूम लिये। मल्लिका अपने पति से लिपट गई—"नाथ ! आप अवश्य जाइए।"

इसके उपरान्त मल्लिका ने कारायण को सम्बोधित कर कहा—"कारायण ! तुम भी जा रहे हो। प्रश्न कोशल का है। प्रश्न प्रसेनजित का नहीं। प्रश्न राज्य का है, राजा का नहीं। वहाँ अपनी शक्ति भर कोशल के हेतु लड़ोगे न—कारायण !"

"हाँ, देवी," कहकर कारायण ने मल्लिका के पैर छू लिये।

दूर खड़ी मागंधी यह सब देख-सुन रही थी।

दोनों के देखते-देखते, वे दोनों वीर वहाँ से विदा हुए। बन्धुल अत्यधिक, पूर्व से भी अधिक, प्रफुल्लित था। कारायण अत्यधिक गर्वित था।

मल्लिका—उनको कर्तव्य-पथ पर उन्मुख देख पुलकातिरेक में अश्रु-विगलित नेत्रों सहित अन्तर्मन में उनकी वन्दना करती रही। बन्धुल और कारायण के जाते समय रोली के जो रोचने उनके भाल पर उसने लगाये थे उनकी लाली उसकी उँगलियों पर अभी भी चमक रही थी। उसने उन्हें चूम लिया।

मागंधी, मल्लिका के पैरों पर लोट गई। 'ऐसा चरित्र'—जैसे मागन्धी में मल्लिका किसी दिव्य शक्ति की प्रदीप्ति भरती चली जा रही हो।

३३

अजातशत्रु एवं मगध-सेनापति बंधुल-मल्ल के पराक्रम से पूर्णतः अवगत थे। अतः कोशल पर सैनिक अभियान के पूर्व ही उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति को दो भागों में बांटा था। उन्होंने निश्चय किया कि जिधर बंधुल लड़ रहा हो उस ओर उसे अटकाये रक्खा जावे और दूसरे भाग को दूसरी ओर से श्रावस्ती तक भेजा जावे।

युद्ध भी दो स्थलों पर बंटा हुआ था। एक ओर काशी के बाह्य क्षेत्र में, दूसरी ओर श्रावस्ती एवं कोशल की सीमा के पार।

रक्त-पिपासु भूमि असंख्य सैनिकों के शोणित-पान के अनन्तर भी ज्वाला-सी धधकती रही! काशी की आय के प्रश्न को लेकर छिड़े इस युद्ध में मगध-कोशल दोनों ही राज्यों की विशाल सामरिक शक्ति युद्धरत थी।

बंधुल के नेतृत्व में कोशल सेना ने मगध सेना में त्राहि-त्राहि मचा रक्खी थी। बंधुल सभी मोर्चों को संभाले हुए था।

वत्स, अवन्ति, वैशाली आदि लगभग सभी जनपद मगध-कोशल युद्ध में दूर की आँच ताप रहे थे। सभी तटस्थ-उदासी प्रदर्शित करते हुए भी उत्सुक थे। मगध का पक्ष अन्याय एवं कोशल का पक्ष न्याय-संगत है यह धारणा प्रत्येक की थी। बिम्बसार एवं रानी कोशल देवी के प्रति प्रत्येक की सहानुभूति जागृत थी।

युद्ध के पूर्व अन्य जनपद तो नहीं—हाँ, वत्स के सम्बन्ध में अनुमान था कि वह किसी न किसी ओर से अवश्य ही युद्ध करेगा किन्तु वह भी तटस्थ रहा।

× × ×

मगध-कोशल युद्ध गति पर था। तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध

के समक्ष लिये हुए सेवा के व्रत को कार्य रूप में परिणत करने का उससे उपयुक्त अवसर दूसरा न था, यह ध्यान कर मल्लिका ने आहत सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा का कार्य प्रारम्भ किया।

सहायिका मागंधी को लेकर मल्लिका आहत-परिचर्या में संलग्न हो गई।

पति के पराक्रम के समाचार ज्ञात करके वह फूली न समाती। रणक्षेत्र में बंधुल यह ज्ञात करके कि मल्लिका अथक परिश्रम से सेवा-कार्य कर रही है, द्विगुणित उत्साह से समर में जूझता था।

× × ×

युद्ध में घायल हो प्रसेनजित मल्लिका की कुटी में पड़ा था। मल्लिका अहर्निश उसकी परिचर्या में लगी हुई थी। तीसरे दिवस जब प्रसेनजित की मूर्च्छा टूटी तो उसने इधर-उधर सिर हिला कर मन्द स्वर में प्रश्न किया—"मैं कहाँ हूँ ? अजातशत्रु···मेरे हाथ से छूट गया···।"

"महाराज मल्लिका की सेवा-कुटी में हैं। अभी आप अत्यधिक अशक्त हैं। विश्राम करें। आप···।" मल्लिका ने करुण-नेत्रों से कोशल-नरेश प्रसेनजित को देखते हुए कहा।

"ओ···मल्लिका! तुम मेरी इतनी शुश्रूषा कर रही हो। तुमने ऐसा क्यों किया ? मैं कितना पापिष्ठ हूँ ? मैं तुम्हारा सुहाग-सिन्दूर मिटा देने को तत्पर हो गया। मैं अपने अनन्य मित्र, कोशल के परम भक्त मल्ल बंधुल के प्रति अशुद्ध मन रखता था। मैं—तथागत भगवान् बुद्ध का अनन्य उपासक होकर भी ऐसा अधम कृत्य करने को उद्यत हुआ। मैं अक्षम्य हूँ···।"

करुणामयी मल्लिका ने गद्‌गद हो सरलतापूर्वक कहा—"आप हमारे महाराज हैं। अब अतीत के प्रति क्षोभ करने से क्या लाभ राजन्! समुज्ज्वल भविष्य को भगवान् के आदर्शों पर समर्पित कर दीजिये। अपने आप को शुद्ध-बुद्धि बनाइये राजन्! इस राज-लिप्सा को

त्याग कर महाराज बिम्बसार का पथानुसरण कीजिये कोशल-नरेश ! आप अधिक दुर्बल हैं । आप शान्तिपूर्वक लेटे रहिये । मेरे मन में कोई ग्लानि नहीं, कोई क्षोभ नहीं । उनके निर्मल हृदय में भी आप यथावत् वैसे ही हैं जैसे अब से वर्षों पूर्व तक्षशिला में थे...," कहते-कहते मल्लिका का हृदय भर आया ।

प्रसेनजित के नेत्रों में अश्रु छलछला आये ।

"मुझे क्षमा करो बंधुल ! मुझे क्षमा कर दो मल्लिका—मैं अपना शेष जीवन बुद्ध-शरण में समर्पित कर दूँगा, क्षमाशीला मल्लिका !"

इसी समय अनेक सैनिकों सहित श्रावस्ती से एक पालकी मल्लिका की पर्ण-कुटी के निकट आकर लगी ।

अनेक प्रकार से आश्वस्त कर मल्लिका ने कोशल-नरेश प्रसेनजित को पालकी पर लिटाया ।

पालकी में प्रसेनजित को लेकर सैनिकों सहित राज-सेवक श्रावस्ती की ओर बढ़ गये ।

× × ×

"घेर लो । यही वह कुटी है । इसी में कोशल का अधिपति प्रसेनजित पड़ा है," अश्वारोहियों में से एक ने आगे बढ़कर कहा ।

कोलाहल सुनकर सरल-सौम्य मुद्रा में करुणामयी मल्लिका ने धवल-श्वेत वस्त्रों से वेष्टित हो—कुटी के बाहर आ कर कहा—"सावधान सैनिको ! यह रोगी-परिचर्या स्थान है । यहाँ कोलाहल करना सर्वथा अशोभनीय है । आप अविलम्ब यह स्थान त्याग दें ।"

"मगधाधिपति महाराज अजातशत्रु की जय" का उद्घोष गगन में गूँज गया ।

तभी अपने अश्व को आगे बढ़ाते हुए अजातशत्रु मल्लिका के समक्ष आ अभिवादन कर अश्व से उतर पड़ा । पहले उसने अपने सैनिकों को पूर्णतः शान्त रहने का आदेश दिया, तब विनम्र हो मल्लिका से बोला—

"देवि ! हमें क्षमा करें। हमें अपने गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि कोशल-नरेश प्रसेनजित इसी स्थान पर हैं···।"

"तो तुम्हीं हो मगध के शासक अजातशत्रु ! इतना सौम्य, सरल, सुन्दर एवं आकर्षक स्वरूप प्राप्त कर युद्ध की विभीषिका में कैसे घिर रहे हो राजपुरुष ! असंख्य सैनिकों का जीवन समाप्त कर अनगिनत सुहागिनों के सिन्दूर मिटा कर, न जाने कितनी माताओं के लाड़लों को पितृ-विहीन कर, माताओं को पुत्र-विहीन कर, उस शोणित-नद को प्रवाहित करने के अनन्तर रक्तिमा में कहीं शुभ्रता के दर्शन हुए अथवा नहीं मगध-सम्राट् !" ज्योतिर्मयी मल्लिका ने विनत खड़े अजातशत्रु से व्यक्त किया।

"मैं श्रद्धावनत अजातशत्रु देवी का परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ," अजातशत्रु ने मल्लिका के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो अत्यन्त विनीत मुद्रा में कहा।

"जन-जन में सत्य, करुणा, दया, क्षमा, अहिंसा की अभिलाषिणी, तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध की परमानुगता, कोशल-महासेनापति की पत्नी मल्लिका हूँ, मगध-नरेश !"

"देवि ! आपके दर्शन कर शान्ति एवं अहिंसा के प्रति जो प्रभावना मेरे हृदय में इस क्षण जागृत हुई है उसका अनुभव इसके पूर्व मैंने कदापि नहीं किया। सचमुच, करुणामयि देवि ! युद्ध की बीभत्सता, नर-हत्या हिंसा को देखकर मेरा हृदय मुझे धिक्कारने लगा है। अब मैं कभी युद्ध न करूँगा। अब मैं भविष्य में कभी कोशल पर आक्रमण न करूँगा। आपकी पावन-मूर्ति को मैं जीवन में कभी नहीं भूलूँगा," अजातशत्रु ने भक्तिपूर्वक व्यक्त किया।

"मेरा कर्म सफल हुआ मगधपति ! कोशल-नरेश प्रसेनजित अभी-अभी श्रावस्ती की ओर ले जाये जा रहे हैं। वे अत्यन्त कृश व क्षीण हैं।"

,,अब मैं उस ओर से उदासीन हूँ देवि !" कहते हुए अजातशत्रु ने

सैनिकों को लौट चलने का आदेश दिया और स्वयं भी अश्व पर सवार हो मन्दगति से आगे बढ़ गया।

× × ×

मगध-कोशल का अनिर्णीत-युद्ध समाप्त हो गया। सेनायें अपने-अपने प्रदेशों को लौट चलीं। बंधुल भी राजधानी लौट आया। हार्दिक क्षमा-याचना सहित प्रसेनजित ने अनेक प्रकार से बंधुल को आश्वस्त करने की चेष्टा की।

परन्तु बंधुल ने कुछ काल के लिए अपने कार्यों से अवकाश ले लिया।

इतने के अनन्तर भी परिस्थितियाँ सब यथावत् बनी रहीं। मगध को काशी की आय अभी प्राप्त न हो सकी। मगधसत्ता प्राप्ति के अनन्तर अजातशत्रु ने प्रथम बार सामरिक अभियान कर युद्ध की विभीषिकाओं का वह नग्न-ताण्डव देखा था। उसकी माता चेलना भगवान् सर्वजित् महावीर की पुजारिणी थी। पिता बिम्बसार भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध के परम उपासक थे। इसके अतिरिक्त भी मगध महालय एवं मगध साम्राज्य के जिस वातावरण में अजातशत्रु पला-बढ़ा था वह पूर्णतः शान्ति एवं अहिंसा में आस्थावान् था। उस पर देवी मल्लिका के शान्तिदायक दर्शन कर और अधिक प्रभावना अजातशत्रु के हृदय में शान्ति, अहिंसा एवं क्षमाशीलता के प्रति जागरूक थी किन्तु परिस्थितियों एवं कुमन्त्रणाओं से वशीभूत हो अब तक अजातशत्रु हिंसात्मक, उच्छृंखल एवं उद्धत बना हुआ था। अब भी रानी चेलना की महत्त्वाकांक्षाओं को सन्तोष प्राप्त न हुआ था। जब-जब भी कोशल के पुनः अभियान का प्रश्न उपस्थित होता अजातशत्रु उससे विमुख हो जाता। परन्तु रानी चेलना ने उसे काशी की आय-प्राप्ति के हेतु पुनः कोशल से युद्ध करने के लिए विवशता प्रदान की।

दूसरी ओर कोशल में विड्डभ अशान्त विद्रोह लिये सजग था। अब भी वह निष्कासन अवस्था में भटकता फिर रहा था। शत्रु रूप में बन्धुल और अब कारायण भी जीवितावस्था में विड्डभ के रक्त में उत्तेजना प्रदान कर रहे थे। शक्तिमती निराश आशा लिये आकुल अवशत्ता सहित निरन्तर प्रयत्नशील थी कि किसी प्रकार वह प्रतिशोध लेकर अपने अपमानित हृदय को सन्तोष एवं पुत्र को राजसत्ता प्राप्त करा सके। आचार्य अजित केसम्बल के अब तक के सारे क्रिया-कलाप विफल हो

गए थे। उनका ध्यान था, उनकी कूटनीति कुपात्रों के हाथ में पड़कर कुण्ठित हो रही है।

कारायण में बाजिरा-प्राप्ति की आशा शेष थी। सेनापति पद का अब वह विशेष इच्छुक न था। प्रसेनजित के बन्धुल-हत्या-षड्यन्त्र से वह अत्यधिक विक्षुब्ध हो चुका था।

विडड्भ का मल्लिका के प्रति एकांगी प्रेम अभी विनष्ट नहीं हुआ था।

मागन्धी को भी अभी उस व्यक्ति-विशेष की खोज थी जिसके हेतु वह मल्लिका के साथ काशी से श्रावस्ती तक आई थी किन्तु अब मल्लिका के साहचर्य में रहकर; मल्लिका के करुणा, क्षमा, दया, शील, विवेक, शान्ति एवं निश्छल चरित्र के पुनीत दर्शन कर उसके हृदय का सारा कलुष समाप्त हो रहा था। उसमें प्रतिशोध की भावना विलीन हो रही थी।

× × ×

देवदत्त से इधर रानी चेलना अत्यधिक क्रुद्ध हो गई थी। रानी चेलना के मतानुसार देवदत्त ही समस्त उपद्रवों की जड़ था, साथ ही उसकी समस्त कुमन्त्रणायें अब तक विफल होती चली आई थीं। अजातशत्रु को मगध की राजसत्ता प्राप्त हो, इसमें रानी चेलना की ही मूल-चेतना को श्रेय प्राप्त था।

इधर देवदत्त ने तथागत भगवान् बुद्ध के प्रति जितने भी अनाचार किये थे उनके फलस्वरूप वह क्षयग्रस्त हुआ और एक दिवस जब वह अस्वस्थावस्था में भगवान् बुद्ध की ओर जा रहा था जेतवन में जलपान के हेतु एक जलाशय में उतरा और वहीं धँस कर विलीन हो गया।

× × ×

मगध महाराज्य का संथागार व्यवस्थित था। सिंहासन पर अजातशत्रु अवस्थित था। महामात्य एवं अन्य विशिष्टजन अजातशत्रु सहित किसी गूढ़ मन्त्रणा में व्यस्त थे।

इसी समय दौवारिक ने सूचना दी—"महाराज ! कोशल युवराज विड्डभ का आगमन हुआ है।"

समस्त संथागार में कौतूहल तैर गया। महामात्य ने अट्टहास करते हुए कहा—"कोशल का युवराज कैसा ? वह पदच्युत दासी-पुत्र विड्डभ होगा।"

मुस्कराते हुए अजातशत्रु ने कहा—"महामात्य अब शान्त होइये। विड्डभ के समक्ष कोई अपमानजनक वार्ता प्रकट न हो। सम्भवत: वह अपनी ही कुछ योजना लेकर आया होगा। वह भी तो मगध की ही भाँति कोशल में भी परिवर्तन चाहता है।"

"दौवारिक, आगन्तुक को यहाँ ले आओ।"

अल्पकाल में ही दौवारिक सहित विड्डभ ने मगध के भव्य संथागार में प्रवेश किया। मगधपति ने आदरसहित उसे स्वर्ण-पीठिका पर बैठाया।

"कहिये राजकुमार !" अजातशत्रु ने स्नेह प्रदर्शित करते हुए कुशल-वार्ता प्रारम्भ की।

"एकान्त चाहता हूँ, मगधपति !"

तभी राजसभा विसर्जित कर अजातशत्रु विड्डभ सहित अतिथि-शाला की ओर बढ़ गया।

× × ×

"आप कोशल पर आक्रमण कीजिए। मेरी योजना के आधार पर श्रावस्ती की अन्तरंग-सेना यथासमय आपका सहयोग करेगी।"

"और बन्धुल······।"

"उसका अन्त बल से नहीं, सर्वथा छल से ही सम्भव है," विड्डभ ने आकृति में प्रकट अशान्ति को चेष्टा कर मिटाते हुए कहा।

"तब··· ।"

"श्रावस्ती में अपने विश्वस्त पाँच सैनिकों को इस हेतु निर्धारित करके चला हूँ—मगधपति !"

"कोशल-राजकुमार आप निश्चिन्त रहें, कोशल राजसत्ता आपके लिए सुरक्षित है। मगध केवल काशी प्रान्त पर अधिकार चाहता है।"

"तथास्तु, अब मुझे प्रस्थान की अनुमति दें।"

"मगध का आतिथ्य स्वीकार करें, राजकुमार!"

"फिर कभी। इस संक्रान्तिकाल में एक-एक क्षण बहुमूल्य है मगध नरेश!"

× × ×

"आचार्य! मगध ने कोशल पर आक्रमण की पुनः घोषणा की है।"

"तो मैं क्या करूं?"

"मुझे कुछ निर्देश कीजिये।"

"मैं सब निर्देश कर चुका। सब पूरे हो गये। अब मुझे कष्ट न दो। जाओ यहाँ से।"

"आचार्यपाद! आप रोष न करें। इस अवसर पर स्थितियां सर्वथा अनुकूल हैं। मैं मगधपति अजातशत्रु से भेंट करके लौटा हूँ," विड्डभ ने उल्लास-भरे स्वर में प्रकट किया।

आचार्य अजित के नेत्र भी इस समाचार को सुनकर प्रदीप्त हो गये। अपने तापक्रम को किंचित् कम करते हुए किन्तु कर्कश स्वर में वे बोले—"मगध अब क्या स्वप्न देख रहा है? वत्स-कोशल सन्धि के अनुसार कौशाम्बी की सेनाएँ कोशल में आना प्रारम्भ हो गई हैं। कौशाम्बी एवं श्रावस्ती की सामरिक-शक्ति दुर्भेद्य है, कोशल के भावी शासक!"

'कोशल के भावी शासक' में निहित आचार्य के व्यंग्य को विड्डभ ने समझा। कौशाम्बी-श्रावस्ती सन्धि पर वह अनायास चौंक पड़ा और उत्तेजित होते हुए कह गया—"तब मैं कौशाम्बी की सेना से युद्ध करूंगा।"

"हः हः हः ये कौशाम्बी सेना से युद्ध कर उसे परास्त करेंगे ? किस शक्ति पर उछल रहे हैं, राजकुमार ?"

"पूज्यपाद ! आप इन व्यंग्यों से अब मुझे निरुत्साहित नहीं कर सकते। प्रतिशोध की अग्नि में मैं जल रहा हूँ।"

"दीर्घकाल से मैंने भी सुन रक्खा है, वत्स ! किन्तु अब वत्सराज एवं कोशलराज के समक्ष मगध राजकुमार एवं कोशल राजकुमार सर के बल चलेंगे तब भी कुछ नहीं कर सकेंगे।"

"तब आप अपने इस वत्स का कौशल देखियेगा, गुरुवर्य !"

"सम्भव है। भगवान् शुद्ध-बुद्धि के दर्शन करते जाना।"

'भगवान् शुद्ध-बुद्धि के दर्शन' में अन्तर्निहित तत्कालीन धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता का प्रदर्शन कर कज्जलरूप आचार्य अजित केसम्बल ने अपने ताम्रवर्ण नेत्रों को मूँद कर विड्डभ को नमस्कार कर लिया। विड्डभ उठ कर चला गया।

× × ×

युद्ध-समाप्ति के पश्चात् बन्धुल एवं मल्लिका ने शान्त जीवन व्यतीत किया। वे एक-दूसरे में मग्न परमानन्दित थे।

मागन्धी की जीवन-चर्या ही परिवर्तित हो गई। वह मल्लिका की संगति में बुद्ध की परम भक्त हो गई। बुद्ध के प्रति उसका वैयक्तिक रोष अब सर्वथा विलीन हो गया था। वह अपने अतीत पर अब जब भी ध्यान करती तो पश्चात्ताप के आँसू बहा लेती।

इधर कोशल-नरेश प्रसेनजित ने बन्धुल को बुलाने के हेतु अनेक दूत भेजे किन्तु उदास बन्धुल नहीं गया। तभी उसे सूचनायें मिलीं—मगध पुनः कोशल पर आक्रमण करने वाला है। इस बार वत्सराज उदयन ने कोशल को सहायता प्रदान की है। विड्डभ ने कोशल के विरुद्ध लड़ने की घोषणा की है, इत्यादि !

किन्तु बन्धुल सर्वथा उपेक्षित भाव सहित उन समाचारों को सुनता

और शान्त हो रहता ! एक दिवस कारायण ने जब चर्चा छेड़ी तो बन्धुल ने कहा—"नहीं कारायण ! इतने हतोत्साह की क्या बात है ? तुम युद्ध में भाग लो । कोशल को विजय-श्री निश्चित प्राप्त होगी ।"

'अजातशत्रु पुनः युद्ध करेगा'—यह सुनकर मल्लिका ने साश्चर्य कहा—"क्या राज्याधिकार इतना मिथ्याचरण भी कर सकता है ? अजातशत्रु के मुख से किये गये वे वचन···"

"प्रिये ! राजनीति के समक्ष अन्य समस्त नीतियां, सद्भावनाएँ-सद्वृत्तियां हेय हो जाती हैं ।"

"तब तो मानव-कल्याण के लिए यह राजनीति अत्यन्त घातक है, नाथ ! इसका तो अन्त ही श्रेयस्कर है ।"

"जब तक साम्राज्य-व्यवस्था एवं समाज-व्यवस्था स्थापित है, राजनीति उससे पृथक् नहीं की जा सकती ।"

'तब राजनीति का संचालन केवल हिंसा, अनाचार, दुर्व्यक्तियों से ही सम्भव है ? उसकी कोई और व्यवस्था नहीं ? क्या सत्य, अहिंसा न्याय, सदाचरण से राजनीति का संचालन सम्भव नहीं ?

"वह सम्भव है, किन्तु अभी समय नहीं । हो सकता है—भारत में तुम्हारा वैसा स्वप्न कभी पूरा हो ।"

"भगवान् बुद्ध एवं भगवान् महावीर के समय में जब वह सम्भव नहीं, तब कब सम्भव होगा ?"

"परम वीतराग भगवान् महावीर ने तो राजनीति का क्षेत्र अपनाया ही नहीं । उनसे प्रकट धार्मिक प्रभावना में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की एकता से कर्मों का नाश होकर जीवात्मा को मोक्ष की प्राप्ति होती है । मानव सुकर्म में प्रवृत्त होकर आत्मा का कल्याण करता है । तथागत महाश्रमण ही भगवान् बुद्ध कल्याण के हेतु सत्य-अहिंसा मार्ग का दिग्दर्शन करा रहे हैं । उन्होंने शान्ति स्थापनार्थ राज्यों—अधिपतियों में विद्यमान विग्रह, कलह, द्वेष, अशान्ति को निर्मूल करने के हेतु उन्हें सदुपदेशों द्वारा सुमार्ग पर चलाने के निरन्तर

प्रयास किये हैं। अनेक स्थानों पर कलह एवं युद्धों को रोका है। वस्तुतः भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध के मूलभूत सिद्धान्त समान ही हैं। किन्तु इन राज-लोलुप सत्ताधारी सामन्तों एवं नरेशों को शुद्ध-बुद्धि प्राप्त करने में अभी सहस्रों वर्ष लगेंगे। सम्भव है, कभी वह दिन आवे जब इन दो महापुरुषों के मार्ग पर चलकर विश्व में अहिंसा का साम्राज्य हो। विश्वमैत्री के आधार पर वैसी ही राजनीति को स्थान प्राप्त हो जैसा स्वप्न तुम देख रही हो।"

"नाथ ! आपमें यह उदासीनता कैसी विराज रही है ? क्या अपने देश पर आये संकट-काल में आप अपना कर्त्तव्य नहीं निभायेंगे ?"

"किनके समक्ष कर्तव्य निभाने को कह रही हो, मल्लिका !"

"आपकी ग्लानि सकारण है नाथ ! फिर भी जन-कल्याण के व्रती यह नहीं देखते कि उनके कार्यों का कोई मूल्यांकन कर रहा है अथवा नहीं। आप रण में अवश्य जावें—ऐसा मेरा विनीत अनुरोध है।"

"निःसन्देह मैं अपने कर्तव्य का निर्वाह करूँगा किन्तु तुम जानती हो हृदय में अब वह उमंगें नहीं हैं।"

"आप युद्धस्थल पर जायेंगे, यह सुनकर कितनी प्रसन्नता हो रही है देव ! मेरे हृदय में।"

३५

मगध-कोशल युद्ध की रणभेरी बज उठी। कोशल सेना के साथ वत्स सेना ने अभियान किया। बन्धुल एवं कारायण सैन्य-संचालन कर रहे थे। इस बार मगध सेना की दुर्गति देख अजातशत्रु अत्यधिक त्रस्त हो उठा। परन्तु युद्ध जिस भयंकर स्थिति में था, उसमें नाश अथवा विजय के मध्य का कोई मार्ग सम्भव न था।

बन्धुल उसी शौर्य, उसी पराक्रम, उसी उत्साह से कोशल विजय की हुँकार भर रहा था।

मल्लिका का सेवा-कार्य पुनः अविराम गति पर चल रहा था। दिवा-निशा संलग्न रहकर मल्लिका एवं मागन्धी कोशल की अन्य स्वयं-सेविकाओं एव स्वयंसेवकों को लेकर आहतों की सेवा-परिचर्या कर रही थीं।

मल्लिका की कुटी के निकट ही रण-वाद्य सुनाई पड़ते थे। उद्घोष, चीत्कार, हाहाकार से वातावरण आन्दोलित था। तभी संध्या से एक प्रहर पूर्व एक दिवस एक अश्व मल्लिका की कुटी के द्वार पर आकर रुक गया। उस पर एक आहत व्यक्ति ऊर्ध्व मुँह किये हाथ-पैर शिथिलता-पूर्वक लटकाये, अश्व की पीठ से चिपका, अस्त्र-शस्त्रों में कसा कराह रहा था।

मल्लिका एवं मागन्धी सेवकों सहित शीघ्रता में अश्व के निकट आईं। सरलतापूर्वक अश्वारोही को उतार कर शैया पर लिटाया गया।

अनायास मल्लिका के मुँह से निकल पड़ा—"ओ! विड्डभ ?"

एक साथ ही मागंधी के मुँह से निकला—"ओ! शैलेन्द्र!"

मल्लिका ने उलटकर मागंधी को देखा। मागंधी के नेत्रों से रोष एवं आवेश की ज्वालायें फूट रही थीं।

तुरन्त सभी विड्डभ की परिचर्या में लग गये।

× × ×

मल्लिका मागंधी के मुख से वह प्रसंग सुनकर काँप गई जब मागंधी ने कौशाम्बी से भागकर काशी में सामावती के रूप में वार-विलासिनी का जीवन व्यतीत किया था। वहीं इसी विड्डभ के छद्म वेश में शैलेन्द्र दस्यु के रूप में उससे व शैलेन्द्र से स्नेह-सम्बन्ध स्थापित होने के अनन्तर विड्डभ उसका गला घोट कर उसका सर्वस्व हरण कर भाग आया। तभी से वह उसकी खोज में थी।

मल्लिका ने वह सब सुनकर कान बन्द कर लिये। पलक मूँद लिये। किंचित् स्वस्थ होकर मल्लिका ने प्रश्न किया—"मागंधी ! अब""।"

"मुझे आपकी छत्र-छाया में अब न कोई खेद है, न क्लेश, न मन में प्रतिरोध की ही लेशमात्र भावना।"

"अनुकरणीय है मागंधी ! तुम्हारा यह मानस-परिवर्तन।"

× × ×

"मल्लिका अब मैं स्वस्थ हो चला हूँ।"

"मेरा परिश्रम सफल हुआ राजकुमार !" मल्लिका बोली।

विड्डभ अनेक बार सोचता रहा—मल्लिका ने कितनी शुश्रूषा की है। कितने स्नेह से मेरे बालों को सहलाती रहती है ? कितना अनुराग भरा रहता है उसके इन सुन्दर नयनों में ? कितनी मुस्कराहट खिली रहती है उसके इन ओठों में ? कितना मदिर है उसका रूप ? कैसा मनहर है उसका अंग-सौष्ठव ? कितनी उद्दीप्ति है उसके साहचर्य में ? कितना रोमांच होता है उसके स्पर्श से ? यह क्या है ? क्या मेरा सौभाग्य जाग गया है ? क्या मेरे मन की चीत्कार मल्लिका ने सुन ली है ?

इधर वह पूर्ण स्वस्थ हो गया था। अपनी इन भ्रामक अन्तर्वृत्तियों से वशीभूत हो वह अपने व्यवहार में कभी-कभी उच्छृङ्खलता का प्रदर्शन

भी कर देता। कभी दृष्टि गड़ाये वह मल्लिका को निहारा करता। मल्लिका उस ओर से पूर्ण उदासीन थी। उस ओर उसका ध्यान भी न था।

तभी एक स्थिति पर विड्डभ ने मल्लिका से कहा—"इतनी कृपा से क्या समझूँ मल्लिका! क्या तुम्हारे हृदय में अभी भी कहीं स्थान पा सकता हूँ मेरी आकुल आशा? तुम्हारे अभाव में कैसा सूनापन भर आया है मेरे जीवन में?"

मल्लिका ने पूर्णतः सरल व शान्त भाव से विड्डभ को लज्जित करते हुए कहा—"राजकुमार! अब इन दुर्वृत्तियों को छोड़ दो। तुम्हारी इतनी सेवा की गई इसका यह अनर्थ न लगाओ कि तुमने अपनी दुर्वृत्तियों का समावेश मुझमें कर दिया है। मैं वही मल्लिका हूँ, बन्धुल-मल्ल की परिणीता जिसने एक से अधिक बार तुम्हारे जीवन की रक्षा की है। यदि अतीत निकृष्टतम रहा है तो वर्तमान एवं भविष्य को संभालो! तुम्हारी सामावती—देखो! वह खड़ी झाँक रही है।"

मल्लिका ने अनुभव किया उसके कथन की प्रतिध्वनि विड्डभ के मर्म पर हो रही है। सामावती को देखते ही प्रतीत हुआ जैसे विड्डभ फेनक सा घुलता चला जा रहा है। वस्तुतः सामावती जीवित उसके समक्ष खड़ी है, यह देखते ही विड्डभ की दशा हिमखण्ड की सी हो रही थी जो सामावती के नेत्रों की अग्नि ज्वाल से गला जा रहा था। निर्वाक् विड्डभ केवल शून्य में विजड़ित हो प्रस्तर सा होकर रह गया।

"यदि किंचित् मानवीय नैतिकता शेष हो तो इसे अपनाओ राजकुमार!" मल्लिका ने विड्डभ को धिक्कारते हुए कहा।

विड्डभ मौन बना रहा।

"नहीं दयामयि! अब मैं आपकी छत्र-छाया में ही जीवन व्यतीत कर दूँगी। अब मुझे संघ-शरण में जाना है। राजाओं के भोग-विलास मैं पर्याप्त भोग चुकी। मैंने तो शैलेन्द्र डाकू को प्रेम किया था। वह मर गया और उसके साथ मेरा स्नेह-अनुराग भी," मागन्धी ने विराग-

भावना से ओत-प्रोत होकर प्रकट किया ।

"मैं अनिर्वचनीय लज्जा एवं खेद से त्रस्त हो रहा हूँ, मल्लिका देवी। आप मुझे चाहे जितना तिरस्कृत कीजिये, प्रताड़ित कीजिये, धिक्कारिये कम है। मुझे सब स्वीकार है। आज आपने मेरे जीवन की गतियाँ ही मोड़ दी हैं, करुणा की मूर्तिमती देवी ! मैं हार्दिक क्षमा-याचना करता हूँ।" कहते हुए मल्लिका के समक्ष, विड्डभ घुटनों के बल हाथ जोड़कर बैठ गया।

"राजकुमार ! उठिये। क्षमा तो वास्तव में आपको सामावती से ही माँगनी चाहिए।"

वातावरण में निस्तब्धता छा गई। विड्डभ घूमकर उसी अवस्था में, निर्वाक् सामावती की ओर हो गया। विड्डभ, सामावती एवं मल्लिका तीनों ही मौन थे।

"क्षमा करें सामावती···" विड्डभ ने मौन भंग किया।

"कोशल के राजकुमार ! अब न मैं काशी की वारविलासिनी सामावती हूँ; न कौशाम्बी-नरेश उदयन की सम्राज्ञी मागंधी ; न ही आप शैलेन्द्र डाकू। उन अतीत की कटु-स्मृतियों को भूल जाइये। मैं अब एक अकिंचन ब्रह्मचारिणी हूँ। हो सके तो आप भी अत्र सुकर्मों में प्रवृत्त होइये।"

"मल्लिका देवी ! मुझे अनायास स्मरण हो रहा है मुझे अभी एक बीभत्स-कांड बचाना है। मुझे तुरन्त जाने की अनुमति दीजिये।" कहते हुए विड्डभ वायु-गति से भागा।

३६

"मातुल, सेनापति ! देखिये, सँभलिये, पीछे के आक्रमण को बचाइये ।" की चीत्कार सहित कारायण ने वेग से आगे बढ़कर उस कोशल-सैनिक पर एक पूरा खड्ग का हाथ रख दिया जो आगे संलग्न बन्धुल पर पीछे से आक्रमण कर रहा था !

तुरन्त बन्धुल घूमा । कोशल के दो अन्य सैनिक भी उसी स्थिति में थे । बन्धुल ने दोनों को ही तलवार के घाट उतार दिया ।

"यह कोई षड्यन्त्र था—सेनापति," कारायण ने अश्व को स्थिर करते-करते कहा ।

रणक्षेत्र में घनी दोपहरी छाई हुई थी । सर्वत्र चीत्कार, मारकाट, हाहाकार, हाथियों की चिंघाड़, अश्वों की हिनहिनाहट, रथों की चरमराहट से दिशायें दहल रही थीं ।

बन्धुल ने कारायण के कथन की अनुभूति में दूर सामने देखा—विड्डभ अश्व पर दूसरी ओर भागा जा रहा था ।

"कारायण ! वह देखो······।"

"हाँ···।" कहते हुए कारायण ने प्रत्यंचा खींचकर एक बाण छोड़ दिया ।

"बच गया······।" कहते हुए कारायण ने दूसरा बाण संभाला ।

"जाने दो, कारायण !"कहकर बन्धुल ने कारायण को रोक दिया ।

× × ×

मगध-कोशल युद्ध में कौशाम्बी की सेनाओं ने कोशल की अत्यधिक सहायता थी !

कारायण डट कर लड़ा ।

बन्धल अजातशत्रु को बाँधकर श्रावस्ती की ओर चल पड़ा ।

वृद्ध कोशल-नरेश प्रसेनजित बन्धुल पर न्योछावर होते हुए विजय-पताका फहराते श्रावस्ती की ओर बढ़े।

× × ×

आज श्रावस्ती का जन-जन उमंग-उल्लास में विजय-पताकाएँ घर-घर में फहरा रहा था। स्त्रियाँ प्रसन्नता में नाच उठीं। बालक हर्षित वातावरण देखकर किलकारियाँ भर उठे।

प्रत्येक जिह्वा पर बन्धुल का नाम था। विजय के अतिरेक में बन्धुल का नाम लेकर श्रावस्ती के नागरिकों के नेत्र चमक उठते थे।

× × ×

हँसते, खेलते, खिलखिलाते, झूमते, नाचते, गाते, मद्य के उद्रेक में डूबे सैनिक जत्थों ने श्रावस्ती के राजपथों में विजयोन्माद भर कर नगर-यात्रा की। शोभा-यात्रा में सबसे आगे एक समूह के सैनिक रण-भेरियों, पीतल के तूर्यों, नगाड़ों को बजाते हर्ष-ध्वनियां करते, जयघोष करते, आगे बढ़ रहे थे।

उनके पीछे एक हाथी पर स्वर्ण-सिंहासन रक्खा हुआ था जिस पर बन्धुल बैठा खिलखिला रहा था तथा नागरिकों के अभिवादन-नमस्कार का प्रत्युत्तर देता जाता था। उसके निकट ही मगधपति अजातशत्रु पराजय की लज्जा में विनत नेत्रों सहित बैठा था। उसके राजसी वेश एवं सुन्दर स्वस्थ व्यक्तित्व से विशिष्ट आभा प्रकट हो रही थी। इसके पीछे अश्वारोही सैनिकों की एक टोली थी जो हिलते-झूमते, जयघोष करते आगे बढ़ रहे थे। तदनन्तर एक गज पर कोशल-नरेश प्रसेनजित प्रसन्न मुद्रा में अपने अर्ध-श्वेत केशों सहित आकृति की तेजस्विता में विजयपताका फहराते नागरिकों के अभिवादन-प्रणाम का किंचित् मुस्कराकर, किंचित् ग्रीवा नत करके प्रत्युत्तर देते आगे बढ़ रहे थे।

प्रसेनजित के हाथी के पश्चात् कौशाम्बी सेनाधिपति एक हाथी पर वत्स ध्वजा फहराता आगे बढ़ रहा था। उसके अनन्तर कौशाम्बी-

सैन्य की मीलों लम्बी सैन्य टुकड़ियाँ पंक्तिबद्ध एक के अनन्तर दूसरी बढ़ती चली जा रही थीं। कौशाम्बी-सेना के गज, अश्व, रथ, पदाति सेना, अश्वारोही सेना की अद्वितीय शोभा वर्णनातीत थी।

इसके पश्चात् कोशल-सेना की लम्बी-लम्बी टुकड़ियां आगे बढ़ रही थीं। कारायण सहित विशिष्ट सेनाधिकारी गजों पर, अश्वों पर, रथों पर बैठे थे। हर्षोल्लास से सभी के मुख आनन्द वर्षा कर रहे थे।

श्रावस्ती के नागरिकों ने उस लम्बी शोभा-यात्रा को सम्पूर्ण दिवस देखा। स्थान-स्थान पर नागरिकों ने सैनिकों का स्वागत किया। अलिन्दों से नारियाँ पुष्प-वर्षा कर रही थीं। नर-नारियाँ स्थान-स्थान पर सैनिकों के चन्दन, रोली, अक्षत के रोचने लगाते, उन्हें उपहार देते, मिष्टान्न खिलाते।

संध्या के लगभग कोशल-नरेश प्रसेनजित ने अत्यधिक गर्व-सहित राजमहालय में प्रवेश किया। विजय-ध्वनियों, जयनादों के तुमुल घोष से आकाश गूँज गया।

'बन्धुल —सेनापति की जय','मल्ल-बन्धुल की जय', के आकाश-भेदी शब्दों से सैनिकों ने अपने सेनापति को ससम्मान हाथी पर से उतारा।

मगधपति अजातशत्रु बन्दीगृह भेज दिया गया। विड्डभ का कहीं पता न था।

× × ×

अपने पति की विजय से गर्वित मल्लिका ने भी पर्णकुटी से दल-बल सहित श्रावस्ती को प्रस्थान किया। मागंधी ने तथागत भगवान् बुद्ध की ओर प्रस्थान किया।

श्रावस्ती आकर मल्लिका ने देखा, सारा नगर उत्साह एवं हर्ष में डूबा हुआ है। सबके मुखों पर उसके पति की ही चर्चा है। स्थान-स्थान पर उसके पति का अभूतपूर्व स्वागत हो रहा है। वह गर्वोन्नित हो पति के दर्शन के हेतु राजमहालय की ओर गई।

प्रसेनजित का राज-प्रासाद विजयोन्माद में तैर रहा था । सैनिकों को राज-कोष से धन, रत्न एवं मुद्रायें लुटाई जा रही थीं । कोशल की विजय-पताकायें, तोरण, बन्दनवार, पुष्प-गुच्छों, आम्रवल्लरियों, वृक्षों की हरित डालों से प्रासाद का प्रत्येक कक्ष, प्रांगण, अलिन्द सजाया जा रहा था ।

कर्णभेदी विजय-वाद्यों से कोलाहल मचा हुआ था । राज-प्रासाद से श्रावस्ती के बाह्य गोपुरों के ऊपर बजते तूर्यों की ध्वनियों का जैसे एकीकरण हो गया था ।

समस्त श्रावस्ती में अद्वितीय ऐतिहासिक विजय-समारोह मनाया जा रहा था ।

× × ×

राज-प्रासाद के सामने से जब सैनिक-यात्रा जा रही थी तभी प्रासाद के अलिन्द पर अन्य राज-महिषियों से घिरी बाजिरा भी उस शोभा-यात्रा को देख रही थी । उसके अनिंद्य-रूप एवं अलसित यौवन की उन्मादिनी मोहक दृष्टि जब प्रथम बार अजातशत्रु पर पड़ी तभी प्रथम दृष्टि-निक्षेप में वह उस पर विमोहित हो गई । उसमें अनुराग के विचित्र प्रस्फुटन सहित सहानुभूति का मन-मानस में समावेश हो रहा था ।

'ऐसा कुमार-रूप, ऐसा व्यक्तित्व बन्दी-रूप में ।' ध्यान कर बाजिरा कम्पित हो उठी ।

उस विजयोल्लास, उस हर्ष, उन मंगल-वाद्यों में उसे तीक्ष्णता प्रतीत हुई । सर्वत्र जैसे उदासी भर आई हो । प्रथम-दृष्टि के उस प्रभाव से वह स्वयं अत्यधिक विस्मित थी ।

अस्तु, जब समस्त जन व्यस्त थे, बाजिरा उस व्यक्तिविशेष के, अपने मन-भावन के, मगधपति के पुनर्वार दर्शन करने के हेतु बन्दीगृह गई ।

बाजिरा का कुमारिल-मन-रूप-यौवन उस राजपुरुष को यों ऐकान्तिक देख रुदन कर उठा । सहानुभूति में उसके नेत्रों में मोती छलक आये ।

कोशल-राजकुमारी ने बन्दी-गृह का ताला खुलवाया। वह उस स्थान पर पहुँच कर खड़ी हो गई जहाँ अजातशत्रु अत्यधिक कृश एवं उदास-आकृति में बैठा था। अनायास उस निर्जनता में तरुण-स्वरूप की वह प्रदीप्ति देख कर, अजातशत्रु चौंका। वह कुछ क्षणों तक निर्निमेष कोशल-राजकुमारी के रत्नाभ स्वरूप, सुललित अंग-सौष्ठव, नेत्रों में झाँकती अनुराग-चेतना को देखता रहा।

तभी उस सरल नीरवता को भेद कर अजातशत्रु ने प्रश्न किया—"आप इस अप्सरि रूप में कौन हैं देवी! जो मेरे इस दुर्भाग्य पर परिहास करने अथवा सहानुभूति प्रकट करने पधारी हैं।"

"मैं बाजिरा हूँ—कोशल की राजकुमारी!"

"आप्यायित हुआ राजकुमारी! आपकी इस कृपा-कोर पर धन्यवाद व्यक्त करता हूँ कोशल-नन्दिनी!···विराजिये···," कहते हुए अजातशत्रु ने उस भूमि की ओर संकेत किया जहाँ वह बैठा था।

बन्दीगृह में एक विशाल साम्राज्य के नरेश की वैसी अवस्था देखकर कोशल-राजकुमारी का भावुक हृदय आर्द्रता से द्रवित हो उठा। किसी प्रकार अपने को संयत कर, अपरिचित-नवपरिचित से सूक्ष्म वार्ता करने के अभिप्राय से—"जाऊँगी···," कहकर बाजिरा ने पुनर्वार अजातशत्रु को भली प्रकार देखा और लौट आई।

× × ×

एक विचित्र अवस्था—बाजिरा-बन्दीगृह में छोड़ आई और एक विशेष छटपटाहट अपने साथ ले आई। अब बाजिरा को एक क्षण भी व्यतीत करना भार हो गया। राज-महालय के उस भरे-पूरे उल्लास में केवल उसका हृदय ही अजातशत्रु के हेतु कराह रहा था।

कोशल-कुमारी बाजिरा के लावण्य एवं सहानुभूति से वशीभूत हो अजातशत्रु अब क्षण-प्रतिक्षण उस रूप को अपने कल्पनालोक में उतारने

लगा। इस प्रकार उस एकान्त में भी दो का अनुभव कर अजातशत्रु का मन कुछ प्रसन्न, कुछ परिवर्तित हुआ।

× × ×

संध्या से कुछ पूर्व बाजिरा पुनः बन्दीगृह गई। द्वार की खटपट सुन अजातशत्रु पलक मूंदकर बैठ गया। अन्तर्मन ने जैसे कहा—'पुनः वही राजकुमारी तुम्हें आश्वस्त करने आई है।' और अजातशत्रु ने जब नेत्र खोले तो देखा कोशल-नन्दिनी बाजिरा हाथों में एक पुष्प-माल लिये खड़ी है।

अजातशत्रु कुछ कहे उसके पूर्व बाजिरा ने अनायास वह पुष्प-माला अजातशत्रु के कंठ-भाग में सुशोभित कर दी और अपने नत नेत्रों को भूमि पर केन्द्रित कर दिया।

"यह क्या राजकुमारी...?"

"हृदय-देव ! वार्तालाप में समय नष्ट न करें। इस बन्दीगृह से तुरन्त बाहर हो जावें। तत्पश्चात् कुछ और....।"

अचानक अजातशत्रु व बाजिरा स्तब्ध रह गये। कोशलपति प्रसेनजित सहित अनेक सैनिकों ने उस स्थान पर प्रवेश किया।

"महाराज ! इस प्रणय-लीला के दर्शन करें ," कारायण ने उच्चस्वर में गरजते हुए कहा। बाजिरा को देखकर कारायण के नेत्रों से रोष की अग्नि-वर्षा हो रही थी।

अजातशत्रु पुष्प-माला पहने गर्वित सा, शान्तभाव से खड़ा था। वह ध्यान कर रहा था—'मगध-कोशल युद्ध में इस क्षण विजय मेरी हुई है।'

कोशल नरेश-प्रसेनजित निर्वाक् खड़े रहे। अत्यन्त शालीनता में उन्होंने कहा—"मगधपति मेरे साथ आइये।...बाजिरा तुम भी।"

तत्काल ही कोशल-नरेश ने अजातशत्रु-बाजिरा परिणय की घोषणा की।

"महाराज ! इतने हर्ष, इतने आनन्द, इस विजय की प्रसन्नता एवं राजकुमारी के परिणय के शुभावसर पर रानी शक्तिमती एवं राजकुमार विड्डभ को पुनः उनके पद प्रदान कीजिये । युवराज विड्डभ को बुलाइए ।"

"मल्लिका ! तुम्हारा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार करता हूँ । बन्धुल एवं मल्लिका तुम्हारे उपकार-भार से कोशल महाजनपद उऋण नहीं हो सकता," कोशल-नरेश प्रसेनजित ने व्यक्त किया ।

समक्ष ही मल्लिका व बन्धुल स्वर्ण-पीठिकाओं पर बैठे थे । दम्पति एक दूसरे को देखकर मुस्करा दिये । उनके निकट ही अन्य स्वर्ण पीठिकाओं पर कोशल की राज-महिषियाँ, मगधपति अजातशत्रु एवं बाजिरा भी बैठे थे ।

तभी प्रसेनजित ने समक्ष खड़े प्रहरी को निर्देश दिया—"दौवारिक को बुलाओ ।"

दौवारिक के आने पर प्रसेनजित ने कहा—"राजाज्ञा-पत्र एवं लेखनी प्रस्तुत करो ।"

"मल्लिका ! निर्वासित युवराज विड्डभ के आने तक बाजिरा का विवाह स्थगित करता हूँ ।"

"उचित ही है कोशलपति !" बन्धुल ने उत्तर दिया ।

× × ×

अजातशत्रु ने बाजिरा सहित राजगृह को प्रस्थान किया ।

कारायण पिस कर रह गया ।

कोशल-नरेश प्रसेनजित ने विड्डभ को युवराज पदासीन तो कर दिया किन्तु राज-सत्ता तब भी हस्तान्तरित नहीं की । विड्डभ अब भी असन्तोष के उद्रेक में बौखला रहा था ।

और अब दो विद्रोही प्रथम बार मिल गये। कारायण एवं विड्डभ ने उस गहन निराशा की उद्धत-चेतना में कोशल-विग्रह की पुनः शपथ ली।

× × ×

अधिक व्यस्तता के अनन्तर विश्राम-हेतु कोशल-नरेश प्रसेनजित साकेत जाया करते थे। वहां कुछ दिवस या मास रुक कर चित्त अथवा शरीर की थकन को मिटा कर वे अनेक बार श्रावस्ती आये थे।

नव-पत्नी रानी कलिंगसेना के साथ अनेक मधु-रात्रि व्यतीत करके पिछली बार लौटने के अनन्तर इधर साकेत गये दीर्घ-अवधि समाप्त हो चुकी थी। अस्तु, मगध-कोशल युद्ध एवं राजकुमारी वाजिरा के परिणय के अनन्तर प्रसेनजित ने साकेत-प्रवास का निश्चय किया।

× × ×

कोशलपति प्रसेनजित साकेत के राजमहालय में बन्दी-स्थिति में हैं, यह सूचना बन्धुल को प्राप्त हो इसके पूर्व राजाज्ञा प्राप्त हुई कि विशेष मन्त्रणा-हेतु बन्धुल को महाराज ने साकेत बुलाया है।

बन्धुल ने अविलम्ब साकेत को प्रस्थान किया।

× × ×

आज मल्लिका अत्यधिक हर्षित थी। तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध को आज उसने निमन्त्रित किया था।

पति की अनुपस्थिति में भी उसने भगवान् के आतिथ्य की पूर्ण व्यवस्था सम्पन्न की।

महाश्रमण तथागत भगवान् बुद्ध सहित उनके शिष्य सारिपुत्त, मौग्गलायन एवं आनन्द भी भोजन करने के हेतु मल्लिका के यहां पधारे हुए थे।

आज उसके जीवन में हर्ष का, गर्व का, प्रतिष्ठा का ऐतिहासिक दिवस था। आज उसके यहां भगवान् बुद्ध पधारे थे। वह श्वेत वस्त्रों

में तुषारहारधवला-सी कुन्द के पुष्प-सी खिली-खिली अपने उन अभ्यागतों के आतिथ्य-सत्कार में संलग्न थी।

भगवान् सहित अन्य अतिथि आसनों पर विराजमान थे। मल्लिका भोजन परोस रही थी। एक शिष्य ने तथागत भगवान् बुद्ध को आकर सूचना दी—"विड्डभ ने कोशल-सत्ता हस्तगत करने की घोषणा की है। महाराज प्रसेनजित साकेत में बन्दी हैं।"

तत्क्षण एक सैनिक ने एक पत्र मल्लिका को लाकर दिया। मल्लिका ने उसे पढ़ा। उसके नेत्र मुँद गये। उसने उसे पुनः पढ़ा। वह धक् से रह गई। भोजन-सामग्री का पात्र हाथ से छूटते-छूटते संभल गया। उसके चतुर्दिक् अन्धकार की गहन-कालिमा छा गई।

किन्तु···किन्तु···वह व्यवस्थित हुई। स्वस्थचित्त होकर उसने अपने अभ्यागतों को भोजन परोसना प्रारम्भ किया। वह पत्र उसने अपने आँचल में छिपा लिया। उसे भगवान् बुद्ध प्रभृति अतिथियों का सत्कार भी तो करना था।

वह हृदय पर वज्र रख कर उन क्षणों को व्यतीत करती रही।

उसका आतिथ्य पूर्ण हुआ। सभी भोजन कर शान्त भाव से एक स्थान पर विराज गये।

आज मल्लिका के जीवन में विषाद का ऐतिहासिक दिवस था।

करुणामूर्ति तथागत महाश्रमण भगवान् बुद्ध मल्लिका की शान्ति व्यवस्था एवं सहनशीलता के प्रति कुछ कहें इसके हेतु उनके पास शान्त मौन के अतिरिक्त उस क्षण कुछ भी न था।

'साकेत जाते हुए मार्ग में बन्धुल की हत्या'—का पुनः स्मरण कर मल्लिका मूच्छित हो भूमि पर गिर पड़ी।

समाप्त